वागाम्भृणी

सम्पादिका

डॉ० प्रियंवदा वेदभारती

2006-2007

प्रकाशक :

गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ, नजीबाबाद (बिजनौर) उ०प्र०

01341-231344
09412824424
09719649218

नव्य-भव्य उपक्रम

यह अत्यन्त ही आनन्द का विषय है कि विगत दस वर्षों से भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में प्राणायाम और योगासन की दुन्दुभि बजाने वाले आयुर्वेद, अध्यात्म तथा राष्ट्रवाद की जागृति का उद्घोष करने वाले पूज्यपाद स्वामी रामदेव जी महाराज और उनके अभिन्न सहयोगी आचार्य बालकृष्ण जी वैदिक धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए 'पतञ्जलि योगपीठ' के माध्यम से **आस्था** चैनल पर 01 जुलाई, 2007 से देश भर के प्रख्यात विद्वानों के सहयोग से निम्नाङ्कित कार्यक्रम प्रसारित करा रहे हैं—

वेदविज्ञान— सायं 5.00 से 5.30,
योग और युवा— 5.30 से 6.00,
दर्शन बोध— 6.00 से 6.30,
मनुस्मृति मीमांसा— 6.30 से 7.00,
आयुर्वेद एवं जीवनदर्शन— रात्रि 9.00 से 9.30,
राष्ट्र चेतना— 9.30 से 10.00,
उपनिषद् सुधा— 10.00 से 10.30,
सोलह संस्कार— 10.30 से 11.00।

गुरुकुल परिवार की तरफ से मैं इस पवित्र और महत्तम कार्य के लिए पूज्य स्वामी जी तथा आचार्य जी को बधाई देती हूँ और आप लोगों के शतायु होने की प्रभु से प्रार्थना करती हूँ।

— **प्रियंवदा वेदभारती**

अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित आचार्या जी

अत्यधिक प्रसन्नता है कि हमारे गुरुकुल की आचार्या, ख्यातिलब्ध आर्यविदुषी डॉ. प्रियंवदा वेदभारती व्याकरणाचार्या, वेदनिरूक्ताचार्या (लब्ध स्वर्णपदक) को विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा अनेक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं। उनमें से कतिपय का उल्लेख इस प्रकार है—

1. श्री पं. लिङ्गराज अग्निहोत्री ट्रस्ट भुवनेश्वर (ओडिशा) द्वारा "शन्नो देवी राष्ट्रीय वेदवेदुषी पुरस्कार" से पुरस्कृत।
2. आर्यसमाज सान्ताक्रुज मुम्बई द्वारा 'माता श्रीमती लीलावती आर्य महिला पुरस्कार' से समलङ्कृत।
3. आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर (हरिद्वार) द्वारा 'माता प्रकाशवती रत्ना पुरस्कार' से सभाजित।
4. 'मानव सेवा-प्रतिष्ठान दिल्ली' द्वारा सम्मानित।
5. 'नारी-जागरण मञ्च नजीबाबाद' द्वारा **नारी रत्न** सम्मान प्राप्त।
6. उत्तराखण्ड लोक साहित्य एवं साहित्यिक मञ्च कोटद्वार द्वारा समादृत।

राजेन्द्र आर्य
मन्त्री-आर्यसमाज आदर्शनगर
नजीबाबाद

॥ ओ३म् ॥

स्वामी वेदमुनि परिव्राजक
अध्यक्ष–वैदिक संस्थान
नजीबाबाद (उ० प्र०)
कुलपिता
गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ

आशीर्वचन

गुरुकुल–आर्ष कन्या विद्यापीठ नजीबाबाद की स्थापना को एक दशाब्दी बीत गयी। विचार किया गया कि एक दशाब्दी की अवधि में गुरुकुल की क्या उपलब्धि रही, यह गुरुकुल के सहयोगियों तथा सामान्य जनता की जानकारी में आना चाहिए। एतदर्थ यह स्मारिका **'वागाम्भृणी'** नाम से प्रकाशित करने की योजना बनायी गयी।

वागाम्भृणी में गुरुकुल की उपलब्धि के रूप में गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों की रचनायें प्रकाशित करायी जा रही हैं, जिसके द्वारा गुरुकुल की जानकारी समस्त हितैषियों तक पहुँचाई जा सके। मैं तो गुरुकुल का हूँ, गुरुकुल के कुलपिता पद पर प्रतिष्ठित हूँ, अतः मैं तो गुरुकुल की उपलब्धियों से सर्वथा सन्तुष्ट हूँ। अन्य भद्रजनों को भी गुरुकुल की ज्ञातव्यता प्राप्त कर सन्तुष्टि हो इसके लिए यह प्रयास किया गया। उत्तरोत्तर गुरुकुल की उन्नति के लिए हृदय के अन्तस्तल से आशीर्वाद अर्पित करता हूँ और गुरुकुल की आचार्या डॉ० प्रियंवदा वेदभारती तथा उपाचार्या ऋतम्भरा शास्त्री के समर्पित व्यक्तित्वों का नितान्त वात्सल्यपूर्वक कुशल क्षेम चाहता हूँ।

शुभकाम :
वेदमुनि परिव्राजक

॥ ओ३म् ॥

डॉ० सत्यव्रत राजेश
पूर्व-आचार्य एवं अध्यक्ष
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
निवास- दयानन्द नगरी
ज्वालापुर (हरिद्वार)

दिनाङ्क- 24 नवम्बर 2006 ई.

स्वस्ति वाक्

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ अपनी एक स्मारिका निकाल रहा है। यह गुरुकुल कन्याओं के निर्माण का प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। आज वैदिक संस्कृति पर अप-संस्कृति के बादल मण्डरा रहे हैं। अन्धकार प्रकाश पर भारी पड़ता जा रहा है। यहाँ की आचार्या एवं ब्रह्मचारिणियाँ सुदूर भारत तक अपने ज्ञानमय उपदेश एवं वेदपाठ से वैदिक धर्म की दुन्दुभि बजा रही हैं। हमें इस संस्था पर गर्व है। इसने अल्प समय में ही जो कार्य किया है उसकी जितनी प्रशंसा की जाये, थोड़ी है। आचार्या प्रियंवदा, ऋतम्भरा, प्रधान दीपचन्द जी एवं सन्तोष जी आदि सब सदस्य गण इसकी प्रगति में अहर्निश तत्पर हैं।

मैं इस गुरुकुल एवं स्मारिका की सफलता के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ।

शुभैषी-

सत्यव्रत राजेश

ओ३म्

आचार्य एवं उप–कुलपति
Acharya & Pro. Vice-Chancellor

☎ : 0133–416207
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Hardwar
पो० ओ० गुरुकुल कांगड़ी P.O. Gurukula Kangri
जि० हरिद्वार-२४६४०४ Distt.-Hardwar-249404

पत्रांक ....

दिनांक ....

हार्दिकम्

हर्षातिरेकोद्भावकं वृत्तमिदं विद्यते यत् नजीबाबादस्य आर्षकन्या–गुरुकुल–विद्यापीठस्य आर्षपरम्परोल्लासकारिणी नवनवविषयोन्मेषधारिणी सारस्वत–पीयूषस्रोतःप्रवाहिणी, प्रत्यहं वेदपाठानुरतब्रह्मचारिणीप्रतिभोद्भूतवेदानुगतलेखप्रसारिणी, अन्वर्थकनामधारिणी "वागाम्भृणी" नामधेया पत्रिका प्रकाश्यते। यद्यपि सर्वासु संस्थासु समयानुसारं प्रवृत्त्यनुसारं च पत्रिकाप्रकाशनं भवत्येव तथापि पत्रिकेयं विशिष्टं स्थानमेष्यतीति मन्ये। यथा यां दैवीं वाचमुपास्य केचन धीधारिणो विद्यावतां मूर्ध्नि विराजन्ते, केचन वेदवाक्यानीश्वरवाक्यानि सन्तीति मन्वाना मुनिपुंगवतामुपयाताः, केचन परमर्षिपरिपाटिपाटवमासाद्यानुदिनमनुपालयन्तः सद्योऽनवद्यमृषित्वं प्रपेदिरे, केचन वेदांगषट्के नूनमप्रतिहतां मतिं वितन्वानाः वाग्रचनाचातुर्यं परिकल्प्य परिकल्प्य विलक्षणं वेदभाष्यं प्रचक्रिरे तथा तामेव दैवीमक्षय्यां सनातनीं वेदवाचं दिक्षु विदिक्षु प्रसारयितुं कृतसंकल्पा विद्यते पत्रिकेयं वागाम्भृणी। अहमस्याः तपस्वितालतापुष्पायमाणायाः पत्रिकायाः परिमलप्रसरणदक्षस्य सम्पादकमण्डलस्य सर्वतोभावेनात्मनाभ्युदयं कामये।

वेदप्रकाश शास्त्री
8/3/07
(वेदप्रकाश शास्त्री)

डॉ० महावीर
डी. लिट्
प्रोफेसर संस्कृत विभाग
अध्यक्ष, प्राच्य विद्या संकाय
सम्पादक, गुरुकुल पत्रिका (शोध)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
सदस्य, उत्तराञ्चल संस्कृत अकादमी

ओ३म्
'विद्ययाऽमृतमश्नुते'

आवास :-
'वेदालोक' 22 नन्द विहार
पो० गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार - 249404 उत्तरांचल
दूरभाष : 01334-228544 (नि०)

पत्रांक : ....

शुभाशंसा

धन्य हैं वे ब्रह्मवादिनी ब्रह्मचारिणियाँ जो गुरुकुल की पावन भूमि में ब्रह्मवेला में जागकर 'ओं प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे' का मधुर गान करती हुई अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करती हैं और आचार्याओं के चरणों में बैठकर वेदाध्ययन करती हुई अपने जीवन को सार्थक करती हैं।

युगप्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की अनुकम्पा से बालकों के गुरुकुलों के समान बालिकाओं को संस्कृत की विविध शाखाओं में पारंगत करने हेतु कन्या गुरुकुलों की स्थापना की गयी। इन गुरुकुलों की परम्परा में नजीबाबाद का कन्या गुरुकुल श्रेष्ठतम है। इस गुरुकुल की होनहार ब्रह्मचारिणियों द्वारा लिखित लेखों का संग्रह 'वागाम्भृणी' के नाम से प्रकाशित हो रहा है। इन लेखों में छात्राओं की योग्यता, तपस्या और साधना प्रतिबिम्बित हो रही है।

मैं पत्रिका एवं ब्रह्मचारिणियों के सर्वविध अभ्युदय की मंगल कामना करते हुए गुरुकुल की सुयोग्य आचार्या डॉ० प्रियंवदा जी को भी शुभकामनाएँ प्रेषित कर रहा हूँ।

मंगलाभिलाषी :

(प्रो० महावीर)
अध्यक्ष
प्राच्य विद्या संकाय

॥ ओ३म् ॥

डॉ० प्रशस्य मित्र शास्त्री
प्राध्यापक— संस्कृत विभाग
फीरोजगाँधी कालेज रायबरेली

निवास— बी- 29 आनन्दनगर,
रायबरेली (उ० प्र०)
दूरभाष : 0535-2205345

दिनाङ्क— 11 अप्रैल, 2007 ई.

संस्तवः

॥ अनुष्टुप्॥

आर्षं गुरुकुलं कन्याविद्यापीठमिदं शुभम्।
बिजनौरे जनपदे नजीबाबादसुस्थले ॥1॥

॥ स्रग्धरावृत्तम्॥

आर्षज्ञानप्रसारे मुनिजनदिशिते भ्रान्तिभीत्यादिमुक्ते
मार्गे नित्यं प्रयाते गुरुकुलमधुना कन्यकानां विशिष्टम्।
'प्रज्ञा' देव्याः सुशिष्या प्रियहितवदना 'मेधया' दीप्यमाना
कृत्वा संस्थापितं सा जयति बहुतरां श्रीदयानन्दभक्ता ॥2॥

॥ स्रग्धरावृत्तम्॥

'ध्यानी गोविन्दरामः' सकलहितपरः योऽस्ति तातः पुरोधा
माता देवी प्रशस्ता स्मरयति 'सरला' संज्ञया सिद्धजन्मा।
यस्याः साहाय्यकर्त्री परमसुखकरी श्लाघनीया स्वसा सा
नाम्ना 'ऋतम्भरेयं' जनयति रुचिरं मोदमस्मिन् कुलेऽपि॥ 3॥

॥ वंशस्थवृत्तम्॥

'प्रियंवदा' सा किल वेदभारती कृतश्रमा 'वेदमुनि' प्रसादिता
स्वयं समज्ञां श्रुतिवर्त्मनि श्रिता तनोति नित्यं जनताहिताय वै॥ 4॥

शिवैषी—

संस्कृत और संस्कृति के संवाहक

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

विश्व को भारत की अमूल्य देन हैं – संस्कृत भाषा और वैदिक वाङ्मय। केवल संस्कृत भाषा ही कहना पर्याप्त नहीं है, वैदिक संस्कृत में लिखे गये समग्र वैदिक वाङ्मय का परिगणन आवश्यक है। साथ ही लौकिक संस्कृत-साहित्य का क्षितिज भी बहुत विस्तृत है। यद्यपि वैदिक भाषा के गर्भ से ही लौकिक संस्कृत भाषा (पाणिनि आदि ऋषियों के शब्दों में 'भाषा') भी उद्‌भूत हुई है। पुनरपि विश्व की अनेक भाषाएँ तथा संस्कृतियाँ लौकिक संस्कृत की अपेक्षा वैदिक संस्कृत और वैदिक वाङ्मय में विवृत संस्कृति की अधिक ऋणी हैं। भारतीय ब्राह्मण या पण्डित अपने पूर्वजों की इस 'दाय' वेदों के अद्‌भुत महत्त्व से अपरिचित नहीं थे। तभी तो वे कण्टकाकीर्ण कलिकाल में अपने घोर तप से नष्ट होते जा रहे वैदिक साहित्य के मूल उत्स चारों वेद-संहिताओं को बचाने में सफल रहे। लगभग 20 हजार मन्त्रों को अष्ट विकृति पाठों द्वारा परम्परया सहस्रों वर्षों तक मूलरूप में शुद्धतम सुरक्षित रखना संसार के अनेक आचार्यों में से प्रमुख आश्चर्य हैं, ऐसी अवधारणा पाश्चात्त्य प्राच्यविदों की भी रही है।

महाभारत के बाद भारतीय इतिहास का वह सबसे काला अध्याय है जिस समय स्त्रियों तथा शूद्रों की बृहत्तर आबादी को वेदाधिकार से वंचित किया गया। इसकी अन्तिम परिणति पददलित भारतीयों की सहस्र वर्षों तक परतन्त्रता या पराधीनता की अवस्था में हुई। इतने लम्बे कालावधि तक भारतीयों की गुलामी के कारणों की गहरी और सटीक पड़ताल केवल ऋषि दयानन्द ने की है। भारत के राष्ट्रीय नवजागरण के पुरोधा ऋषि दयानन्द अकेले महानुभाव हैं जिन्होंने किसी विदेशी भाषा से परिचित हुए बिना पुनर्जागरण का शंख फूँका। भारतीय पुनर्जागरण का आधार योरोपीय भाषाएँ और उनका साहित्य है। इस विचार को पलीता लगाने में ऋषि दयानन्द पर्याप्त हैं। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि उन्नीसवीं शती में यदि अंग्रेजी भाषा और साहित्य से सर्वथा अपरिचित स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव नहीं हुआ होता तो निश्चय ही यह मान्यता अकाट्य हो जाती कि 'आधुनिक भारत में राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता की गूँज अंग्रेजी भाषा और साहित्य के कारण ही सम्भव हो सकी।'

स्वामी दयानन्द के समग्र विचारों का केन्द्र-बिन्दु **वेद** है। "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना और पढ़ाना सब आर्यों का परमधर्म है।" यह उद्‌घोष ऋषिवर ने किया। वेद का मर्म अधिगत हो सके, इसके लिए उन्होंने 14 भागों में 'वेदाङ्ग प्रकाश' की रचना की, जिसमें सौवर, निघण्टु और उणादि प्रकरण वैदिक साहित्य को समझाने की दृष्टि से ही सम्मिलित किये गये अन्यथा लौकिक संस्कृत भाषा के लिए सन्धि विषय, नामिक, सामासिक, स्त्रैणताद्धित और आख्यातिक आदि ही पर्याप्त होते। नामिक, आख्यातिक (सभी धातुओं के लेट्‌लकार भी) आदि में भी संस्कृत और वैदिक भाषा से सम्बद्ध सूत्रों तथा उदाहरणों को साथ-साथ सभी प्रकरणों में रखा, 'सिद्धान्त कौमुदी' के समान अन्त में ले जाकर उपेक्षित नहीं किया। उन्होंने बालकों तथा जन-सामान्य के लिए भी सरल-उपयुक्त और दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले वाक्यों की संस्कृत-रचना 'संस्कृतवाक्यप्रबोध' के रूप में की। अपने जीवन में काशी, मिर्जापुर, छलेसर, फर्रुखाबाद आदि स्थानों में संस्कृत पाठशालाएँ खोलीं। पण्डित भीमसेन,

ज्वालादत्त आदि सहयोगी पण्डितों को स्वयं संस्कृत पढ़ाया। सामान्यतः उन्हें अंग्रेज शासकों से कोई अपेक्षा नहीं थी पुनरपि उन्होंने गोरक्षा तथा संस्कृत भाषा की रक्षा और संवर्धन के लिए उनसे भी निवेदन किया, पत्र लिखे और लोगों से हस्ताक्षर कराकर स्मरण पत्र भिजवाये। संस्कृत भाषा की महत्ता में स्वामी दयानन्द का पूना में दिया गया प्रवचन का अंश देखने योग्य है– "ईश्वर में जैसा अनन्त आनन्द है उसी तरह संस्कृत भाषा में भी अनन्तानन्द है (पूना-प्रवचन-5)। स्त्री और शूद्रों के लिए भी संस्कृत और वेद की भाषा का अध्ययन करने के लिए प्रबल आन्दोलन खड़ा किया। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि आज भारत भर में ब्राह्मणेतर जातियों और महिलाओं में जो संस्कृतज्ञता देखी जाती है उसका अधिकांश श्रेय ऋषि दयानन्द को ही है। आज सम्पूर्ण भारत में कन्या गुरुकुलों तथा बालकों के गुरुकुलों का जो जाल फैला हुआ है, जिसमें सभी जाति तथा वर्ग के बालक-बालिकाएँ शिक्षा पा रही हैं– इनका उद्धारक कौन है? बतलाने की आवश्यकता नहीं है। दलित तथा महिला वर्ग के विद्वानों और विदुषियों में कोई इक्का-दुक्का ही आर्यसमाजेतर संस्थाओं से पढ़ा होगा। विशेषतः समग्र वैदिक और आर्षवाङ्मय के दलित वर्ग से आये पण्डित और पण्डिताएँ आर्यसमाजेतर संस्थाओं में दिखलाई ही नहीं पड़ते। आर्यसमाज को भी स्त्री तथा दलित वर्ग के लोगों को वैदिक पण्डित बनाने में भारी परिश्रम करना पड़ा है। संस्कृत-शिक्षा के नाम पर हितोपदेश, रघुवंश, शाकुन्तल, साहित्यदर्पण-काव्यप्रकाश, लघुसिद्धान्तकौमुदी और अमरकोश मात्र पढ़ना-पढ़ाना स्वामी दयानन्द और आर्य समाज को अभीष्ट नहीं रहा। सम्पूर्ण अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त, श्रौत-गृह्यसूत्रादि, आर्ष दर्शनशास्त्र, शतपथ ब्राह्मणादि तथा वेद-संहिताओं का गम्भीर परिशीलन किये विना वैदिक वाङ्मय का मर्मज्ञ कैसे बना जा सकता है? आधुनिक युग में नारी-जाति में एवंविध वैदिक पण्डिता का प्रथमरूप आर्यसमाज के इतिहास में पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ पंडित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु की सुयोग्य अन्तेवासिनी डॉ. प्रज्ञा देवी जी में दिखलाई पड़ता है।

आर्य समाज के महिला वर्ग में दयानन्दकालीन माता भगवती बाई से लेकर पंडिता सावित्रीदेवी शर्मा वेदाचार्या तक महिला-उपदेशिकाओं और विदुषियों की सुदीर्घ-परम्परा है किन्तु ऋषि दयानन्द निर्दिष्ट आर्ष पाठविधि के अनुसार कन्याओं को वेदविदुषी बनाने का उपक्रम पण्डिता प्रज्ञा देवी ने ही प्रारम्भ किया। उन्होंने सर्वप्रथम आर्ष पाठ्यक्रम अपनी अनुजा पण्डिता मेधा देवी को पढ़ाया और इसे परम्परा का रूप देने के लिए काशी में पाणिनि कन्या गुरुकुल की स्थापना की। 1982 ई. में 14 वर्षों तक महाभाष्यान्त व्याकरण और अन्य आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन कर चुकी स्नातिकाओं का प्रथम बैच तैयार हुआ। उन्हीं दिनों बहिन जी के कन्या गुरुकुल के वार्षिकोत्सव में आर्यजगत् के दुर्धर्ष और दिग्गज पण्डित आचार्य विश्वश्रवाः जी पधारे। आचार्य जी के अगाध वैदुष्य और शास्त्रीय पाण्डित्य से सुपरिचित प्रथम बैच की स्नातिकाओं– सुश्री प्रियंवदा, सूर्या, नन्दिता और माधुरी जी ने उनसे प्रभूत शास्त्र-चर्चा की। आह्लादित आचार्य जी ने उस उत्सव में उपस्थित मुझसे यह कहा कि– "आर्य समाज के इतिहास में यह अद्भुत कार्य हुआ है कि बेटी प्रज्ञा ने चार विदुषी कन्याओं का निर्माण कर दिया जो वैदिक तथा आर्ष वाङ्मय के मर्म को समझ सकेंगी तथा ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तानुसार वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करेंगी। आचार्यश्री ने तत्क्षण एक अनुष्टुप् वृत्त में श्लोक का उच्चारण किया, पुनः उस श्लोक को दुहराया तथा मुझे कहा कि इसे लिख लो–

प्रियंवदा च सूर्या च नन्दिता चापि माधुरी।
ब्रह्मवादिन्य एता हि दयानन्दमतानुगाः।।

पुनः दूसरी बार ऐसी ही प्रसन्नता का अवसर 27 अगस्त 2004 ई. को बरेली के 'शास्त्रार्थ सम्मेलन' में प्राप्त हुआ। ज्ञातव्य है कि 25 से 27 अगस्त 1879 ई. को बरेली नगर में ऋषि दयानन्द का पादरी टी. जे. स्काट साहब से निम्नांकित 3 विषयों पर प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था–

1. ईश्वर देह धारण करता है या नहीं ?

2. ईश्वर पाप क्षमा करता है या नहीं ?

3. पुनर्जन्म होता है या नहीं ?

इसी शास्त्रार्थ की 125वीं जयन्ती आर्य- उपप्रतिनिधि सभा बरेली ने बड़े ही धूमधाम से मनाई, जिसमें 5 हजार से अधिक आर्य नर-नारी सम्मिलित हुए। इन्हीं तीन विषयों पर शास्त्रार्थ करने के लिए पादरियों और मौलवियों को भी निमन्त्रित किया गया। मात्र एक पादरी अल्मोड़ा से पधारे। आर्य जगत् की ओर से आचार्य विशुद्धानन्द मिश्र, डॉ. भवानीलाल भारतीय, डॉ. सच्चिदानन्द शास्त्री, इन पंक्तियों का लेखक तथा डॉ. प्रियंवदा वेदभारती (कन्या गुरुकुल नजीबाबाद) तथा आचार्या सूर्या देवी (पाणिनि कन्या गुरुकुल वाराणसी) को बुलाया गया था। दो दिनों तक चले इन सैद्धान्तिक विषयों पर उपर्युक्त विद्वानों तथा विदुषियों के व्याख्यान तथा पूर्वपक्ष के प्रश्नों के उत्तर को सुनकर उपस्थित आर्य जनता परम प्रसन्न थी। 'वेदार्थ कल्पद्रुम' के प्रणेता, संस्कृतभाषा के प्रसिद्ध विद्वान्, सुवक्ता और सुकवि आचार्य विशुद्धानन्द मिश्र इस सम्पूर्ण कार्यक्रम को देखकर गद्गद हुए और कहा कि इसी प्रकार जनता में सैद्धान्तिक विषयों पर ही भाषण-व्याख्यान-प्रवचन तथा शास्त्रार्थ होने चाहिए। नेतागिरी-राजनीतिनुमा भाषणों से आर्य समाज का भला होने वाला नहीं है। इन विदुषी आचार्याओं के वैदुष्यपरक व्याख्यान को सुनकर अन्तिम दिन 27 अगस्त 2004 को आचार्य श्री ने आशीर्वाद देते हुए यह श्लोक पढ़ा—

प्रियंवदाऽभवत् सूर्या सूर्या चापि प्रियंवदा।
अस्मिन् शास्त्रार्थमञ्चे तु पादरी क्षमते न हि।।

किमधिकं लेखनेन.....। निष्कर्ष यह है कि संस्कृत भाषा और भारतीय वा वैदिक संस्कृति का सम्यक् रीति से सर्वत्र प्रचार-प्रसार तभी संभव है कि जब गुरुकुलों के माध्यम से आर्ष प्रणाली द्वारा अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्तादि और वेद-संहिताओं के पण्डित-पण्डिताएँ प्रभूत मात्रा में तैयार हों तथा इनके द्वारा यज्ञ-प्रवचन-शास्त्रार्थ की परम्परा प्रचलित रहे। वस्तुतः एवंविध विद्वान् और विदुषियाँ ही संस्कृत तथा संस्कृति के सच्चे संवाहक हैं। सजीव विद्वान्-विदुषियों का निर्माण एक ठोस और रचनात्मक कार्य है। 'वंशो विचारः' इस ब्राह्मण वाक्य के अनुसार विचार ही वंश है। ब्रह्मा से लेकर जैमिनि, यास्क-पाणिनि-पतञ्जलि और दयानन्द तक आर्ष परम्परा के सजीव संवाहक विद्वान् तथा विदुषियों का हम निर्माण करें तभी 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का ऋषिवर का स्वप्न साकार हो सकेगा।

❑

मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत्।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं भृगवाणो विवाय।।

(ऋग्वेद 1/71/4)

विद्या ग्रहण के बिना स्त्रियों को कुछ भी सुख नहीं होता जैसे अविद्याओं का ग्रहण किये हुए मूढ़ पुरुष उत्तम लक्षणयुक्त विदुषी स्त्रियों को पीड़ा देते हैं। वैसे विद्या शिक्षा से रहित स्त्री अपने विद्वान् पतियों को दुःख देती है। (ऋग्वेदभाष्य-भावार्थ —स्वामी दयानन्द सरस्वती)

उल्लेखनीय उपलब्धियों भरा एक शानदार दशक

—प्रो० ओम्‌कुमार आर्य
मंत्री- आर्य समाज रामनगर
रोहतक रोड, जीन्द (हरियाणा)

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ नजीबाबाद ने अपनी स्थापना पश्चात् का एक गौरवपूर्ण दशक सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है और अपनी प्रगति-यात्रा को आगे बढ़ाते हुये 11वें वर्ष में प्रवेश कर लिया है। संस्थाओं के लिए एक दशक की अवधि कोई बहुत बड़ी अवधि नहीं है फिर भी इस कन्या विद्यापीठ ने सीमित सी अवधि में जो प्रशंसनीय कार्य किया है वह अनुकरणीय तो है ही, त्याग समर्पण और शिक्षा के उदात्त लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में एकनिष्ठ साधना एवं तपस्या की मुंह बोलती मिसाल भी है। संस्था की संस्थापिका आचार्या प्रियंवदा जी वेदभारती, उपाचार्या श्रीमती ऋतम्भरा शास्त्री और उनके सहयोगी सभी बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने अपने अहर्निश अनथक परिश्रम के फलस्वरूप इस कन्या विद्यापीठ को वैदिक शिक्षा एवं सशक्त संस्कार-केन्द्र के रूप में विकसित करके स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आज से लगभग 130 वर्ष पूर्व कन्याओं के लिए आदर्श शिक्षा की जो योजना प्रस्तुत की थी, आर्ष कन्या विद्यापीठ, नजीबाबाद उसी का साकार रूप है।

जीन्द के ऋषिभक्त, वैदिकधर्मी आर्यजनों ने आज से लगभग 6-7 साल पहले आचार्य श्रुतिकान्त जी के वैदिक आश्रम भैंसी (मुजफ्फरनगर) में वार्षिक यज्ञानुष्ठान के पावन अवसर पर गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ नजीबाबाद की उद्‌भट वेदविदुषी आचार्या प्रियंवदा जी वेदभारती में उनकी योग्यता एवं विद्वत्ता की झलक देखी थी तब से जीन्द के आर्य नर-नारी इस कन्या-विद्यापीठ के प्रशंसक हैं। जीन्द स्थित आर्य समाज रामनगर रोहतक रोड पर तो पूज्या आचार्या जी की विशेष कृपा रही है। आपने सन् 2004 में अपने गुरुकुल की स्नातिका ब्र० सुलभा शास्त्री (अब गृहस्थ में) के नेतृत्व में कन्याएँ भेजकर हमारा वार्षिक समारोह अत्यन्त सफल बनाया और गत वर्ष स्वयं आचार्या प्रियंवदा जी अपनी शिष्याओं सहित हमारे यहाँ पधारीं और जीन्द नगर में एक अभूतपूर्व मिसाल कायम की। क्योंकि यह पहला ऐसा कार्यक्रम था जिसमें यज्ञ की ब्रह्मा महिला (पूज्या आचार्या प्रियंवदा जी) वेद-पाठिकाएँ कल्पना आदि कन्यायें और भजनोपदेशिकायें भी कन्यायें ही थीं। पूरे पांच दिन का यह समारोह सफलता और उपस्थिति की दृष्टि से अभूतपूर्व था जिसका सारा श्रेय इस कन्या विद्यापीठ की आचार्या और उनकी शिष्याओं को जाता है।

उस शानदार सफलता से प्रभावित और उत्साहित होकर जीन्द की सभी आर्य समाजों ने निर्णय लिया कि नवम्बर 2006 में पुन: एक पांच दिवसीय आयोजन किसी सार्वजनिक स्थान पर करना है जिसमें प्रवचन-भजनोपदेश, वेदपाठ आदि की मुख्य भूमिका गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ नजीबाबाद की ही रहेगी।*

***यह कार्यक्रम 8 से 12 नवम्बर, 2006 की तिथियों में सफलता के साथ आयोजित हो चुका है।**

हम विद्यापीठ परिवार को अपनी शुभ कामनाएँ देते हैं। हम विश्वास दिलाते हैं कि इस कन्या-विद्यापीठ से सम्बन्धित प्रगति, विकास, कल्याण की हर योजना में हम यथा सामर्थ्य सहयोग देंगे। उस सहयोग का स्वरूप क्या हो, कितना हो आदि जो भी आदेश मान्या आचार्या प्रियंवदा जी से हमें प्राप्त होगा हम यथाशक्ति उसका अनुपालन करेंगे। परमपिता परमेश्वर गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ नजीबाबाद पर अपनी पावन अनुकम्पा बनायें रखें, यह दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति करता हुआ महर्षि दयानन्द के स्त्री-शिक्षा के सपने को साकार बनाये। गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा आदि जैसी विदुषी देवियाँ राष्ट्र को दे ताकि यह वृद्ध भारत पुनः अपने 'विश्व गुरु' के महान् पद को प्राप्त कर सके। हम सभी को इस विद्यापीठ में तन, मन, धन से पूरी सहायता करनी चाहिए।

❑❑

सद्भावना

श्रीमती ज्ञानवती आर्या

धर्मपत्नी– प्रो० ओम्कुमार आर्य (जीन्द)

मैं गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ नजीबाबाद की सुयोग्य आचार्या प्रियंवदा जी वेदभारती और इस विद्यापीठ की जिन-जिन कन्याओं से मिली हूँ उनकी योग्यता, स्वाध्यायर्श लता, वैदिक धर्म के प्रति उनकी आस्था आदि से बहुत प्रभावित हूँ। मैं इस संस्था को निरन्तर प्रगति, विकास की शुभ कामनायें देती हूँ तथा विश्वास दिलाती हूँ कि इस संस्था के लिये और संस्था के माध्यम से अपनी कन्याओं के लिये हर सम्भव सहयोग सदा प्रदान करूंगी।

❑❑

सम्पादकीयम्

गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ अपनी स्थापना के एक दशक पूर्ण करने के पश्चात् एक स्मारिका का प्रकाशन कर रहा है। स्मारिका का नामकरण ऋग्वेद के प्रसिद्ध वागाम्भृणी (10/125) सूक्त के नाम पर किया गया है। अध्यात्मपरक इस "वाक् सूक्त" में परमेश्वरीय शक्ति का स्त्रीलिंग में निर्देश होने से नारी जाति की शक्तिमत्ता का उत्तम संकेत प्राप्त होता है। कदाचित् इसी सूक्त के कारण नारीत्व शक्ति के रूप में चित्रित किया जाता है, पुरुषत्व नहीं। परमेश्वरीय शक्ति की भाँति नारी जाति के पास भी अपार सामर्थ्य है, शक्ति है, बल है, सम्भावनायें हैं, जिसके द्वारा वह सम्पूर्ण राष्ट्र पर शासन करने में समर्थ 'राष्ट्री' है, 'संगमनी' है। इस सूक्त में आये– **''यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्"** (मैं जिसे चाहती हूँ उसे बलवान्, ऋषि तथा उत्तम धारणावती बुद्धि वाला बनाती हूँ) के भाव से बढ़कर नारियों का कोई और ऊँचा लक्ष्य और आदर्श नहीं हो सकता। पौराणिक साहित्य में शक्तिशालिनी दुर्गा का अवतरण इसी सूक्त के आधार पर ही कल्पित प्रतीत होता है। विष्णु, शङ्कर आदि सभी देवताओं के शरीर से समुद्भूत तेज जब नारी के रूप में एकत्रित होता है तभी महिषासुर सदृश भयङ्कर राक्षसों, अत्याचारियों तथा आपदाओं पर राष्ट्र विजय पाता है। राष्ट्र के साथ तादात्म्य स्थापित कर राष्ट्र को आन्तरिक तथा बाह्य विजय दिलाने में भारतीय नारियों का जो उल्लेखनीय योगदान रहा है वह इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अङ्कित है। तेजस्विनी शकुन्तला के इन वाक्यों में गर्वोक्ति नहीं सत्यता है–

त्वामृतेऽपि हि दुष्यन्त शैलराजावतंसिनीम्।
चतुरन्तामिमामुर्वीं पुत्रो मे पालयिष्यति।।

हे दुष्यन्त! यदि तू मुझे स्वीकार नहीं करता है तो मत कर, किन्तु याद रख मैंने अपने उदरस्थ शिशु को वह संस्कार दिये हैं कि चार समुद्र पर्यन्त विस्तृत पृथिवी का वह एक दिन सम्राट् अवश्य बनकर रहेगा।

नारी का वह तेज, वह शौर्य, वह वैदुष्य पुनः भारत की धरा पर प्रचुर मात्रा में अवतरित हो सके एतदर्थ प्रस्तुत है– 'वागाम्भृणी' में वेदाध्ययनरत गुरुकुलीय ब्रह्मचारिणियों की ब्राह्मी वाक्..... । आशा है गुरुकुल के सभी स्नेही, सहयोगी, आत्मीय जनों को हमारा यह प्रथम प्रयास रुचिकर एवं सन्तोषजनक लगेगा। हमारा निश्चय है कि भविष्य में होने वाले गुरुकुलीय वार्षिकोत्सवों में किसी न किसी लघु पुस्तिका का प्रकाशन अवश्य किया जाये। आगामी वर्षों में मेरे संस्कृत और हिन्दी भाषा में लिखे गये **सामान्य एवं शोधपूर्ण लेखों का संकलन** तथा साथ ही शोध प्रबन्ध **''पाणिनीयव्याकरणवाङ्मये यज्ञीयमीमांसा"** हिन्दी अनुवाद सहित पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगे।

हमारे गुरुकुल की गतिविधियों के पारखी वेदमनीषी पूज्य आचार्य सत्यव्रत राजेश जी, विद्वन्मूर्धन्य प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, विद्याविनय-सम्पन्न माननीय प्रो० डॉ० महावीर जी अध्यक्ष-प्राच्य विद्या संकाय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, संस्कृत साहित्य के प्रख्यात रचनाकार सुकवि डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री, गुरुकुल की स्थापना के क्षणों से ही सम्बद्ध हमारे हितैषी डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री और

पितृतुल्य स्नेह प्रदाता प्रो० ओम्कुमार आर्य जीन्द (हरियाणा) ने अपनी हार्दिक शुभ कामनायें प्रेषित कर हमारा उत्साह बढ़ाया है। मेरे विद्याध्ययन काल से ही पितृतुल्य वात्सल्य प्रदान करने वाले श्रद्धेय स्वर्गीय पं० यशपाल आर्यबन्धु जी, अमित उत्साह एवं शक्ति के सम्प्रेरक पूज्य आचार्य पं०धर्मवीर विद्यालङ्कार जी, पूज्या माता पुष्पशोभा विद्यालंकृता जी, पूज्या माता सावित्री देवी वेदाचार्या (बरेली), पूज्य स्वामी वेदमुनि परिव्राजक, पूज्यपाद स्वामी सत्यपति परिव्राजक और उनके सुयोग्य शिष्य सम्माननीय भ्राता आचार्य ज्ञानेश्वर जी एवं स्वामी विवेकानन्द जी, श्री स्वामी दिव्यानन्द जी पातञ्जल योगधाम ज्वालापुर, डॉ० भवानीलाल भारतीय, डॉ० जयदत्त उप्रेती अल्मोड़ा, डॉ० धर्मवीर (मन्त्री-परोपकारिणी सभा), डॉ० सुरेन्द्र कुमार (मनुस्मृति भाष्यकार), प्रो० राजेन्द्र विद्यालङ्कार (कुरुक्षेत्र), डॉ० सोमदेव शास्त्री (मुम्बई), श्री पं० देवदत्त शर्मा (अमरावती), श्री पं० मदनमोहन आर्य (गंगापुर), श्री पं० ओम्प्रकाश वर्मा (यमुनानगर), श्री पं० बृजपाल शर्मा कर्मठ (मुजफ्फरनगर), बहिन डॉ० आशा रानी राय (कानपुर) और गुरूणां गुरु: प्रथितयशस्क पूज्य आचार्य पं० विशुद्धानन्द मिश्र (बदायूँ) आदि विपश्चित् आर्य मनीषियों का मुझे असीम स्नेह, आशीर्वाद और सहयोग प्राप्त है। अत: अपने प्राण-पण से सर्वदा मैं इस प्रयास में रहूँगी कि आप लोगों की अभिलाषाओं के अनुरूप अपने प्रिय गुरुकुल का सर्वतोमुखी विकास कर सकूँ।

गत वर्ष गुरुकुल के वार्षिकोत्सव (नवम्बर, 2006) में पधारे आर्य जगत् के ख्यातिलब्ध मूर्धन्य लेखक डॉ० भवानीलाल भारतीय का एक महत्त्वपूर्ण लेख भी उनकी सहर्ष अनुमति से 'वागाम्भृणी' में प्रकाशित करा रही हूँ जिससे पाठकों को आर्य जगत् की विदुषी महिलाओं का परिचय प्राप्त हो सके।

'वागाम्भृणी' का प्रकाशन सम्भव ही नहीं हो पाता यदि हमारे सम्माननीय भ्राता श्री विजय कुमार गोयल (गुरुकुल के आदरणीय प्रधान श्री दीपचन्द आर्य के सुपुत्र) उनके मित्र माननीय श्री प्रमोद अग्रवाल रामा पेपर मिल किरतपुर तथा माननीय श्री रघुवीर सिंह आर्य (स्वामी- राज इण्डस्ट्रीज तथा राज रिम उद्योग) शामली (उ० प्र०) ने प्रकाशन व्यय का भार वहन न किया होता। मैं आप तीनों के प्रति हृदय से आभार प्रकट करती हूँ तथा आनन्दघन जगदीश्वर से आप लोगों के सम्पूर्ण परिवार की ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धि की प्रार्थना करती हूँ।

'वागाम्भृणी' के सम्पादन में परहित तत्पर प्रख्यात वाग्मिप्रवर डॉ. ज्वलन्तकुमार शास्त्री ने बहुमूल्य परामर्श तथा सक्रिय सहयोग प्रदान कर मुझे सर्वथा निश्चिन्त कर दिया। इस कार्य में श्रद्धेय शास्त्री जी के मित्र और हमारे शुभेच्छु डॉ. सुरेन्द्रप्रताप जी, प्राध्यापक हिन्दी विभाग रणवीर रणञ्जय पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज (अमेठी) ने भी सामग्री-संयोजन एवं प्रूफ रीडिंग आदि में श्लाघनीय सहयोग प्रदान किया है। मैं आप दोनों का किन शब्दों में धन्यवाद करूँ? अपने-अपने क्षेत्र में प्रसिद्धि के शिखर पर आसीन आप दोनों की सपरिवार सौख्य-कामना करती हूँ। पत्रिका सम्पादन के काल में गुरुकुल अयोध्या में निवास आदि के सुप्रबन्ध का भार आदरणीय भ्राता आचार्य नागेन्द्र कुमार शास्त्री जी ने ग्रहण किया इसके लिये मैं आपकी हृदय से अनुगृहीत हूँ।

मुद्रक-भवदीय प्रकाशन अयोध्या के स्वामी श्री मिश्रीलाल वर्मा, उनके प्रिय सुपुत्र डॉ० अवधेश वर्मा तथा अक्षर संयोजक श्री जैसराज जी ने "वागाम्भृणी" के शुद्धतम रुचिर प्रकाशन में जिस तत्परता और आत्मीयता का परिचय दिया है, उसके लिये मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देती हूँ और उनकी पारिवारिक सुख-समृद्धि के लिये सच्चिदानन्द परमात्मा से प्रार्थना करती हूँ। मैं अपनी अनन्यहृदया अनुजा बहिन ऋतम्भरा शास्त्री का आभार किन शब्दों में प्रकट करूँ? गुरुकुलीय प्रत्येक कार्य हम दोनों का साझा ही होता है। उसके मंगलमय भविष्य के लिये प्रिय हृद्य आशी: तथा शुभ कामनायें।

—प्रियंवदा वेदभारती

अनुक्रमणिका

1.	वागाम्भृणी		1
2.	साहित्य-लेखन, शोध तथा अनुसन्धान में आर्य महिलाओं	डॉ० भवानीलाल भारतीय	5
3.	यज्ञनिर्वचनानि	डॉ० प्रियंवदा वेदभारती	10
4.	वेदभाष्य की प्रामाणिक पद्धति	,, ,,	14
5.	वेदों में नारी और सन्तति निर्माण	,, ,,	20
6.	एक अशेष व्यक्तित्त्व : दयानन्द	ऋतम्भरा शास्त्री	24
7.	शत-शत प्रणाम (कविता)	ब्र० सुष्मिता	26
8.	सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे (कविता)	ऋतम्भरा शास्त्री	27
9.	कुमार्य्लृतक इत्याह (कविता)	,, ,,	28
10.	कुन्तीपुत्र कर्ण (कविता)	,, ,,	29
11.	वेदानां वैशिष्ट्यम्	ब्र० प्रतिज्ञा	30
12.	पाणिनीयव्याकरणस्य महत्त्वम्	कल्पना आर्या	32
13.	गुरुशिष्यसम्बन्धः	ब्र० गार्गी	34
14.	मानव जीवन का चरम लक्ष्य	ब्र० उपासना	36
15.	विश्ववारा संस्कृति	ब्र० माधुरी	39
16.	आर्य और आर्यावर्त्त	कु० अर्चना	41
17.	सत्यार्थप्रकाश एक अद्भुत क्रान्तिकारी ग्रन्थ	ब्र० सौम्या	44
18.	स्त्रीशिक्षा का महत्व	ब्र० श्रेष्ठा	46
19.	आदर्श शिक्षाप्रणाली	ब्र० ऋचा	48
20.	चरित्र : जीवन का दर्पण	कु० दीक्षा	50
21.	भारतीय संस्कृति में गुरुकुलों का महत्त्व	ब्र० पवित्रा वर्मन्	52
22.	वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण	ब्र० दीपिका	56
23.	मन का चक्रव्यूह	ब्र० शारदा	59
24.	क्या थी ऋषि के सपनों की शिक्षा प्रणाली	ब्र० स्नेहा	61
25.	भारत में मूर्तिपूजा	ब्र० सुशीला	64
26.	धर्म और राजनीति	ब्र० मनीषा	67
27.	मैं प्रधानमन्त्री की कुर्सी से बोल रही हूँ	ब्र० सञ्जीवनी	69
28.	आतङ्कवाद के शिकंजे में भारत	ब्र० भावना	72

29. आज भी संसार में मानवता है (कविता)	ब्र० प्रीति	74
30. विद्यार्थी जीवन	अमृता आर्या	75
31. विद्याविहीनः पशुः	ब्र० मनीषा आर्या	78
32. हम कितने शिक्षित हैं?	ब्र० इडा आर्या	80
33. महान् क्रान्तिकारी शहीद भगतसिंह	ब्र० अरुषी आर्या	83
34. आजादी के इतिहास का एक पृष्ठ	कु० विदुषी आर्या	85
35. स्वतन्त्रता संग्राम में महर्षि दयानन्द का योगदान	ब्र० पूर्णिमा	87
36. गाय की उपयोगिता एवं संरक्षण	ब्र० श्रद्धा	89
37. **My thoughts about the Satyarthprakash**	M. Manjari	92
38. उठ जाग जाग ! मेरे कुमार (कविता)	श्री गोविन्द राम ध्यानी	95
39. गुरुकुल का दशवर्षीय इतिवृत्त	आचार्या प्रियंवदा वेदभारती, उपाचार्या ऋतम्भरा शास्त्री	96
40. गुरुकुल-वार्षिकोत्सव की संक्षिप्त रिपोर्ट	सुलभा शास्त्री	103
41. गुरुकुल की कार्यकारिणी समिति		105

कन्याओं में आर्ष पाठविधि की प्रवर्त्तिका
गुरुवर्या आचार्या डॉ. प्रज्ञा देवी जी

गुरुवर्या पं. मेधा देवी जी
आचार्या-पाणिनि कन्या गुरुकुल, वाराणसी

गुरुकुल के अधिष्ठाता एवं आचार्या जी
के पिता श्री गोविन्दराम ध्यानी

आचार्या जी की माता श्रीमती सरला ध्यानी

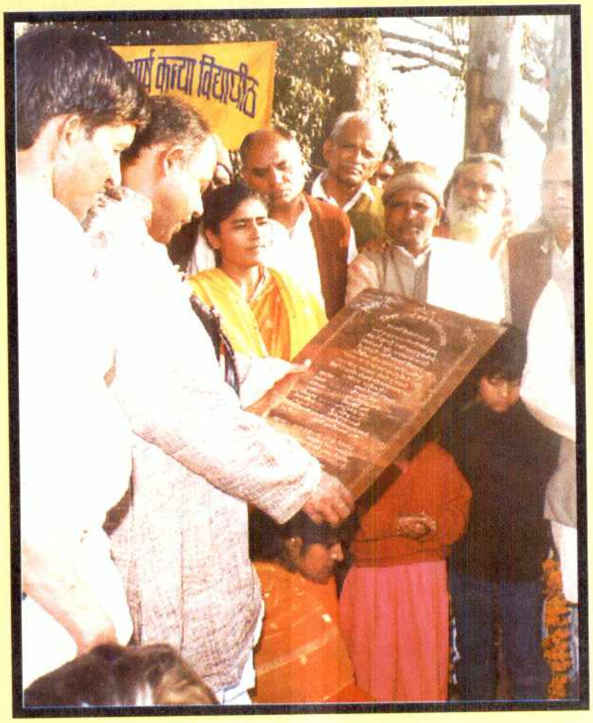

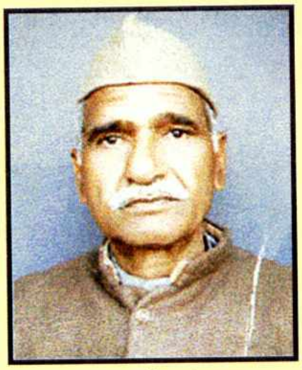

गुरुकुल के संरक्षक
श्री गुरुमुख सिंह जी

शिलान्यास के समय
ताम्रपत्र के साथ
ब्र. राजेन्द्र आर्य,
डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री
आचार्या जी एवं अन्य

निर्माणाधीन यज्ञशाला में प्रवचन करते पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति
के जामाता आचार्य धर्मवीर विद्यालंकार, सम्मुख बैठे हैं - श्रद्धेय पं. यशपाल आर्यबन्धु

वानप्रस्थाश्रम की हीरक जयन्ती में मञ्चासीन स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती के साथ आचार्या जी
कुर्सी पर समासीन आचार्या मेधा देवी जी, खड़ी डॉ. अन्नपूर्णा जी एवं अन्य

२००१ के वार्षिकोत्सव में उद्‌बोधन देते हुए
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. वेदप्रकाश शास्त्री

प्रबन्धिका बहिन सन्तोष बाला आर्या का स्वागत करती आचार्या जी
साथ में उपप्रधान डॉ. ओमूपाल आर्य तथा प्रधान जी श्री दीपचन्द जी

एक दूसरे का अभिनन्दन करते श्री भूपाल सिंह जी (करनाल) तथा
श्री विजय कुमार आर्य (किरतपुर)

गरुकुल की यज्ञशाला में यज्ञ करतीं ब्रह्मचारिणियाँ

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में प्राच्यविद्या-संकाय के अध्यक्ष प्रो. महावीर जी
का अभिनन्दन करते डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

श्रद्धेय महात्मा आर्यभिक्षु जी से आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर की यज्ञशाला में आशीर्वाद प्राप्त करतीं आचार्या जी

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के मन्त्री श्री विमल कुमार एडवोकेट का स्वागत करते गुरुकुल के मन्त्री श्री विष्णुमित्र वेदार्थी

विभिन्न संस्थाओं से सम्मानित आचार्या जी

गुरुकुल के कार्यालय-कक्ष का यज्ञ द्वारा उद्घाटन करते दानवीर श्री रघुवीर सिंह आर्य (सपरिवार) शामली (मुजफ्फरनगर)

ब्रह्मचारिणियों को भूगोल शिक्षण करती उपाचार्या ऋतम्भरा शास्त्री

छोटा मन्दिर स्तूप का निर्माण करती छात्रायें

ताईक्वाण्डो की 'फायर ब्रेकिंग' क्रिया का प्रदर्शन करती छात्रायें

लाठी युद्ध का प्रदर्शन करती छात्रायें

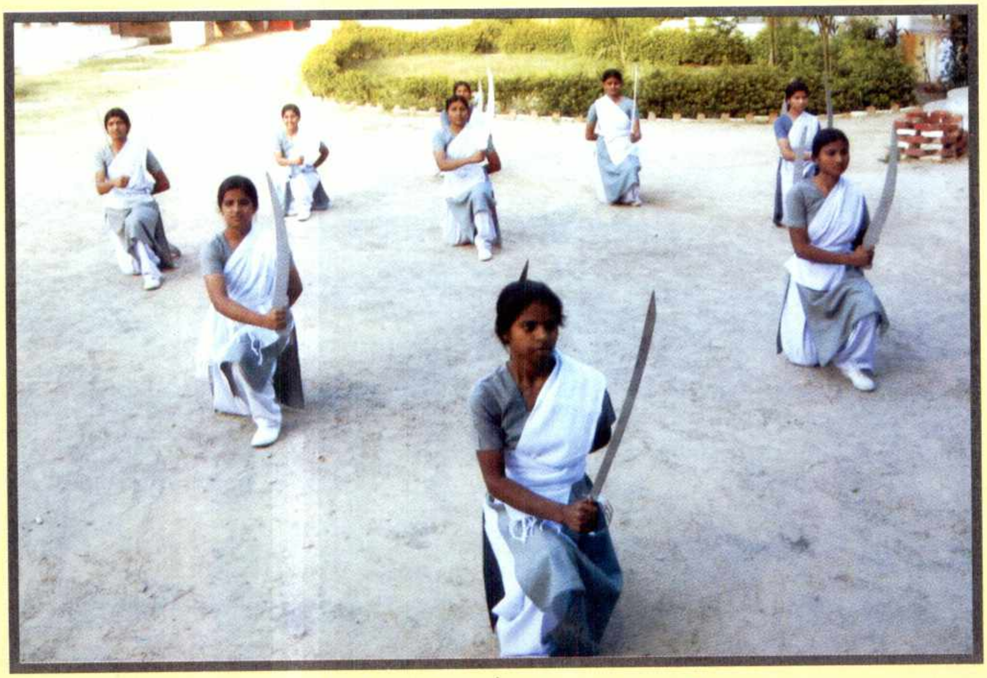

तलवार क्रियाओं का प्रदर्शन करती छात्रायें

वार्षिकोत्सव में नाट्य प्रस्तुति के साथ आर्यसमाज के दस नियमों की व्याख्यानमाला

वार्षिकोत्सव में संस्कृत प्रहसन प्रस्तुत करती छात्रायें

दिनचर्या के अन्तर्गत ध्यान-प्राणायाम करती छात्रायें

वार्षिकोत्सव में शस्त्रार्थ करती छात्रायें

वागाम्भृणी

वाक् सूक्त (ऋग्वेद 10/125/1-8)

इस सूक्त की **ऋषिका** 'आम्भृणी वाक्' (अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् नामक ब्रह्मविदुषी) है। इस सूक्त की **देवता** भी 'आम्भृणी वाक्' है। अर्थात् 'अम्भृण: महन्नाम' (निघण्टु 3/3) महान् परमेश्वर की **ज्ञानशक्ति** ही 'वाक्' नाम से गृहीत है। सृष्टि हेतु समुत्पादित गति से जो शब्द उद्गत हुआ, उसका नाम 'वाक्' (स्त्रीलिङ्ग) है। इस प्रकार 'आम्भृणी वाक्' ब्रह्म की ही शक्ति (पारमेश्वरी ज्ञानशक्ति) है। महर्षि यास्क भी इस सूक्त के मन्त्रों को आध्यात्मिक मानते हैं (निघण्टु-निरुक्त 7/1-2)। इस सूक्त के द्वितीय मन्त्र का **छन्द** 'जगती' है और शेष मन्त्रों का 'त्रिष्टुप्'। **स्वर** 'धैवत' (मन्त्र 1, 3-8 में) तथा 'निषाद' (मन्त्र-2 में) है। आचार्य सायण कहते हैं— 'सच्चित्सुखात्मक: सर्वगत: परमात्मा देवता। तेन ह्येषा तादात्म्यमनुभवन्ती सर्वजगद्रूपेण सर्वस्याधिष्ठानत्वेन चाहमेव सर्वं भवामीति स्वात्मानं स्तौति।' अर्थात् परब्रह्म की ज्ञानशक्ति से साक्षात्कार करके तादात्म्य का अनुभव करती हुई 'वाक्' विश्व के कण-कण में स्वयं के विस्तार का दर्शन करती हुई आत्म-स्तवन कर रही है—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह-
मादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यह-
मिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥ 1॥

मन्त्रार्थ— (अहम्) मैं महान् परमेश्वर की वाक्-ज्ञानशक्ति (वसुभि:) पृथिवी आदि आठ वसुओं से (रुद्रेभि:) प्राण-अपान आदि एकादश रुद्रों से (आदित्यै:) द्वादश महीनों से (उत) और (विश्वदेवै:) ऋतुओं के साथ (चरामि) प्राप्त होती हूँ— संचरण करती हूँ। (अहम्) मैं (उभा मित्रावरुणा) दोनों दिन-रात को (इन्द्राग्नी) अग्नि-विद्युत् को (उभा-अश्विना) दोनों द्युलोक-पृथिवी लोक को (बिभर्मि) धारण करती हूँ।

भावार्थ— विश्व की प्रमुख प्राकृत शक्तियाँ— वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वदेव, मित्र-वरुण, अश्विनौ आदि हैं। इन सबकी संचालिका इन सब में शक्ति भरने वाली पारमेश्वरी वाणी— ज्ञानशक्ति ही है। परमेश्वर की प्रतिनिधि पारमेश्वरी ज्ञानशक्ति ही पृथिवी आदि आठ वसुओं, प्राणरूप ग्यारह रुद्रों, बारह मासों, अग्नि-विद्युत्, दिन-रात और द्युलोक-पृथिवीलोक को धारण करती है।

अर्थपोषक प्रमाण— 'अम्भृण:— महन्नाम' (निघण्टु 3/3) महत: परमेश्वरस्य 'तस्येदम्' (अष्टाध्यायी 4/3/120) अण् प्रत्यय: — आम्भृणी वाक्= पारमेश्वरी ज्ञानशक्ति:। 'ऋतवो वै विश्वदेवा:' (शतपथ 7/1/4/3), 'अहोरात्रो वै मित्रावरुणौ' (ताण्ड्य ब्रा० 25/10/10), 'यदशनिरिन्द्र:' (कौषीतकि 6/91), 'विद्युद् वा अशनि:' (शत. ब्रा. 6/1/3/14), 'इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ' (शत.ब्रा. 4/1/5/16)

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से आठ वसु। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिए कहाते हैं कि ये जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन कराने वाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसलिए हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं। बिजली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि यह परम ऐश्वर्य का हेतु है। (सत्यार्थप्रकाश:— सप्तमसमुल्लास:)।

चरामि— सञ्चरण करती हूँ। उपरि कथित तत्तत् देवों के स्वरूप को धारण करके गतिशील होती हूँ, अर्थात् वे मेरी ही विविध शक्तियाँ हैं, उन देवों में निहित देवत्व मैं ही हूँ।। 1।।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं
त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्ये ३ यजमानाय सुन्वते ॥ 2॥

मन्त्रार्थ— (अहम्) मैं (आहनसम्) दृष्टिदोष को नष्ट करने वाले या अशान्तिनाशक (सोमं) चन्द्रमा को (बिभर्मि) धारण करती हूँ। (अहं) मैं (त्वष्टारम्) सूर्य को (उत) और (पूषणं भगम्) वायु तथा भजनीय यज्ञ को धारण करती हूँ। (अहम्) मैं (हविष्मते) हवि देने वाले के लिए (सुप्राव्ये) अच्छी तरह रक्षा करने वाले के लिए अथवा विद्वानों को भोजनादि से अच्छी प्रकार प्रकृष्टता से तृप्त करने वाले के लिए (सुन्वते) विद्वानों के पानार्थ सोमरस निकालने वाले के लिए (यजमानाय) यजमान = आत्मा के लिए (द्रविणं) दानार्थ धन को (दधामि) धारण करती हूँ।

भावार्थ— पारमेश्वरी ज्ञानशक्ति चन्द्रमा, सूर्य, वायु और यज्ञ को धारण करती है। वही रक्षक, कार्यशील, तथा विद्वानों के पोषक दानी यजमानों को धन प्रदान करती है। इस मन्त्र में 'सोम' प्रकाशवाचक चन्द्रमा के लिए आया है, जो रात्रि के शत्रुभूत अन्धकार को मारता है।

अर्थपोषक प्रमाण— 'अयं वै पूषा योऽयं पवते वात:' (शतपथ 14/2/1/9), 'यज्ञो भग:' (शत. ब्रा. 6/3/15/19), 'देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूप:' (ऋग्वेद 3/55/19)।। 2।।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ 3॥

(अहम्) मैं (राष्ट्री) जगद्रूप राष्ट्र की स्वामिनी हूँ, (वसूनाम्) समस्त धनों की (सङ्गमनी) सङ्गति कराने वाली— प्राप्त करानें वाली हूँ, (यज्ञियानाम्) श्रेष्ठ कर्मों की (प्रथमा) प्रमुख (चिकितुषी) चेतानेवाली-बतानेवाली या जाननेवाली हूँ, (भूरि-स्थात्राम्) बहुरूप स्थितिवाली (भूरि—आवेशयन्तीम्) जड़ जङ्गम पदार्थों में बहुरूप में प्रविष्ट (मा) माम्= मुझको (ताम्) उस प्रकार की या उस रूप में (देवा:) विद्वान् जन (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से या बहुत रूप में (व्यदधु:) वर्णन करते हैं— "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋग्वेद 1/164/46)।

भावार्थ— पारमेश्वरी ज्ञानशक्ति जगद्रूप राष्ट्र की स्वामिनी है। धनों की प्राप्ति भी वह कराती है। यज्ञ सम्बन्धी कर्मों का विधान बतानेवाली है। बहुत विद्यास्थान वाली सब पदार्थों में प्रविष्ट ईश्वरीय ज्ञानशक्ति को विद्वान् जन बहुत रूपों में वर्णन करें या जानें (वर्णन करते हैं या जानते हैं)।

अर्थपोषक प्रमाण— "राष्ट्री ईश्वरनाम" (निघण्टु 2/12)।। 3।।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति
श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥ 4॥

मन्त्रार्थ— (अन्नमत्ति) जो अन्न खाता है, (य: विपश्यति) जो देखता है, (य: प्राणिति) जो श्वास लेता है (य: ईम्) और जो (उक्तम्) कही हुई बात को (श्रृणोति) सुनता है, (स:) वह (मया) मेरे द्वारा अर्थात् मेरे कारण ही वैसा करने में समर्थ होता है। (श्रुत) हे विद्वन्! (श्रुधि) सुनो (ते) मैं तुम्हें (श्रद्धिवं) श्रद्धा-विश्वास के योग्य सत्यवचन (वदामि) कहती हूँ—

बतलाती हूँ– (माम्) जो मुझे (अमन्तवः) न मानने वाले लोग हैं (ते) वे (उपक्षियन्ति) विनष्ट हो जाते हैं, उपक्षय- नाश को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ— खाना, साँस लेना, देखना और सुनना सब कुछ ज्ञानपूर्वक होता है। ज्ञानरहित भक्षण, जीवन, दर्शन और श्रवण सब व्यर्थ है। जो पारमेश्वरी ज्ञानशक्ति को नहीं मानते तदनुसार आचरण नहीं करते, वे क्षीण हो जाते हैं, यह सत्य है।।4।।

अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥ 5॥

मन्त्रार्थ— (देवेभिः) देवताओं–विद्वानों (उत) और (मानुषेभिः) साधारण मनुष्यों द्वारा (जुष्टम्) सेवित–सुचिन्तित–वितर्कित (इदम्) इस बात को (अहम्) मैं (स्वयम् एव) स्वयं ही (वदामि) कहती हूँ– बतला रही हूँ– कि (यम्) जिसे–जिसे (कामये) मैं चाहती हूँ– पात्र समझती हूँ (तं तम्) उसे–उसे (उग्रम्) बलशाली या उत्कृष्ट (तं ब्रह्माणं) उसे ब्रह्मा (तमृषिम्) उसे ऋषि (तं सुमेधाम्) उसे सुन्दर मेधावाला (कृणोमि) करती हूँ —बनाती हूँ।

भावार्थ— साधारण मनुष्य से लेकर उत्तम विद्वान् तक जिस महती ज्ञानशक्ति की आराधना करते हैं, वही पारमेश्वरी ज्ञानशक्ति जिसे–जिसे चाहती है अर्थात् जिसे पात्र समझती है उस–उस को उन्नत, विद्वान्–ऋषि और मेधा से सम्पन्न बना देती है। अर्थात् अपने–अपने कर्मों के अनुसार ईश्वरीय–व्यवस्था (ज्ञानशक्ति) का ही यह प्रबन्ध है कि कोई राजा, कोई विद्वान् और कोई महान् ज्ञानी है।।5।।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं
द्यावापृथिवी आ विवेश॥ 6॥

मन्त्रार्थ— (अहम्) मैं (ब्रह्मद्विषे) ब्राह्मणों–ज्ञानियों के प्रति द्वेष करने वाले (रुद्राय) क्रूर जनों तथा (शरवे) हिंसकों के प्रति (हन्तवै) हनन करने–मारने के लिए (उ) निश्चय ही (धनुः) धनुष को–शस्त्र को (आ तनोमि) तान देती हूँ [अर्थात् चढ़ा देती हूँ] —साधती हूँ। (अहम्) मैं (जनाय) जन–हितार्थ (समदं करोमि) अहङ्कारी के साथ संग्राम करती हूँ। (अहम्) मैं (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी में (आ विवेश) भलीभाँति आविष्ट–प्रविष्ट होकर रहती हूँ।

भावार्थ— ब्राह्मण के प्रति द्वेष करने वाले, क्रूर तथा हिंसक जनों को हनन करने–परास्त करने के लिए अस्त्र–शस्त्र को सिद्ध करना चाहिए और संग्राम में चलाना चाहिए। पारमेश्वरी ज्ञानशक्ति द्यावापृथिवीमय सब जगत् में प्रविष्ट होकर वर्तमान है।

अर्थपोषक प्रमाण— समानं माद्यन्ति अस्मिन् इति समत् संग्रामः (सायणः)। सम् पूर्वकात् 'मद तृप्तियोगे' (चुरादि.) क्विप्–अन्योऽन्यस्य रक्तपातं कृत्वा सम्यक् तृप्यन्ति यत्र स संग्रामः (स्वामी ब्रह्ममुनिः) ॥ 6 ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं
द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥7॥

मन्त्रार्थ— (अहम्) मैं (अस्य) इस लोक [जगत्] के (मूर्धन्) ऊपर अर्थात् मूर्धारूप उत्कृष्ट भाग में स्थित (पितरम्) पिता= पालक सूर्य को (सुवे) उत्पन्न करती हूँ, (मम योनिः) मेरा घर (अप्सु) व्यापनशील परमाणुओं में (समुद्रे) तथा अन्तरिक्ष महान् आकाश में (अन्तः) स्थित है। (ततः) पुनः महान् आकाश में वर्त्तमान (विश्वा

भुवना) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को (अनु वितिष्ठे) व्याप्त होकर रहती हूँ। (उत अमूं द्याम्) और इसी कारण द्युलोक के प्रति (वर्ष्मणा) वर्षणधर्म से (उपस्पृशामि) सङ्गत होती हूँ।

भावार्थ— परमेश्वरीय ज्ञानशक्ति जगत् के ऊपर वर्तमान पालक सूर्य को उत्पन्न करती है, वह परमाणुओं तथा महान् आकाश के अन्दर व्याप्त है, सब लोक-लोकान्तरों में निविष्ट है। द्युलोक का देवता सूर्य मेघमण्डल द्वारा पृथिवीलोक में वर्षा कराता है। द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीलोक की परस्पर संगति का निमित्त परमेश्वरी वाक्- ज्ञानशक्ति ही है।

अर्थपोषक प्रमाण— 'एष वै पिता य एष सूर्यः तपति' (शतपथ 14/1/4/15), 'योनिः— गृहनाम' (निघण्टु 3/4) 'समुद्रः अन्तरिक्षनाम' (निघण्टु 1/3)। 'उत द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि' इस अन्तिम चरण का अर्थ पं. बिहारीलाल शास्त्री करते हैं— "(उत) और (अमूम् द्याम्) इस द्युलोक को (वर्ष्मणा) अपने तेज से (उपस्पृशामि) छूती हूँ।

अहमेव वात इव प्रवाम्या
रभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यै-
तावती महिना सं बभूव॥ 8॥

मन्त्रार्थ— (अहम्) मैं (विश्वा भुवनानि) सब लोक-लोकान्तरों को (आरभमाणा) निर्माण करती हुई या निर्माण के हेतु (वातः इव) वेगवाली वायु के समान (प्रवामि) प्रगति करती हूँ। (दिवा परः) द्युलोक से परे (एना पृथिव्या परः) और इस पृथिवी लोक से भी परे (महिना) अपनी महिमा से = अपने महत्त्व से (एतावती) इतने गुण सम्पन्न वाली (सम्बभूव) 'आम्भृणी वाणी' हूँ सम्यक् सिद्ध हूँ।

भावार्थ— परमेश्वरीय ज्ञानशक्ति लोक-लोकान्तरों को उत्पन्न करने के हेतु वायु वेग के समान गति करती है। 'आम्भृणी वाक्' द्युलोक से परे और पृथिवीलोक से भी परे अपनी महिमा से विराजमान है।

अर्थपोषक प्रमाण— प्रवामि— प्रगति करती हूँ— (स्वामी ब्रह्ममुनिः) प्रवर्तित होती हूँ— प्रवाहित होती हूँ— प्रवर्ते (सायणः)। [सबको] स्फुरण देती हूँ (दामोदर सातवलेकर)। "परेणानधिष्ठिता स्वयमेव प्रवामि यथा वातः परेणाप्रेरितः सन् स्वेच्छयैव प्रवाति तद्वत्" (सायणः)। अर्थात्— जिस प्रकार विना किसी से प्रेरित हुई वायु प्रवाहित होती है उसी प्रकार मैं 'आम्भृणी वाक्' (परमेश्वर की महती विचारणा—ज्ञानशक्ति) किसी भी दूसरी शक्ति से अनधिष्ठित या अनभिप्रेरित स्वयं ही प्रवर्तित होती हूँ।

आरभमाणा— कारणरूपेणोत्पादयन्ती—कारणरूप बनकर उत्पन्न करती हुई (सायणः)। [सबको] वशीभूत करती हुई (पीटर्सन)। सब भुवनों अथवा मानवी संस्थाओं का निर्माण करके (दामोदर सातवलेकर)।

एतावती संबभूव— इतनी विशाल हो गयी हूँ। 'एतच्छब्देनोक्तं सर्वं परामृश्यते। सर्वजगदात्मनाहं सम्भूतास्मि (सायणः)। सम्यक् सिद्ध हूँ (स्वामी ब्रह्ममुनिः)।। 8 ।।

❑❑

जो स्त्री पृथिवी सम क्षमाशील, आकाशवत् निश्चल, यन्त्र-कलाविद्, जितेन्द्रिय होती है वह कुल समाज राष्ट्र को ऊँचा उठाने वाली है। (यजु० 14/22)

साहित्य-लेखन, शोध तथा अनुसन्धान में आर्य महिलाओं का योगदान

—डॉ० भवानीलाल भारतीय,
जोधपुर (राज०)

नवजागरण के पुरोधा महर्षि दयानन्द द्वारा भारत के नारी वर्ग में नवचेतना एवं नव प्राणों के संचार करने का एक शुभ परिणाम यह निकला कि आर्य परिवारों की कुल लक्ष्मियों ने शिक्षा, साहित्य, कला, लेखन तथा शोध के क्षेत्रों में उल्लेख योग्य उपलब्धियाँ अर्जित कीं। पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन के अतिरिक्त धर्मप्रचार में भी उन्होंने अपूर्व योगदान किया। वैदिक धर्म के प्रचार में सर्वप्रथम उतरने वाली महिला माई भगवती थीं जो जिला होशियारपुर के हरियाणा ग्राम की थीं। स्वामी दयानन्द की समकालीन माई भगवती ने स्वयम् ऋषि दयानन्द से भेंट की तथा उनकी प्रेरणा से ही प्रचार कार्य आरम्भ किया। वे भजन तथा प्रवचनों के द्वारा धर्मप्रचार करती थीं। उनके भजनों का एक संग्रह 1893 में लाहौर से छपा था। ब्रजप्रदेश के भजनोपदेशक तथा कवि स्व. जोरावर सिंह की पत्नी श्रीमती प्रभावती देवी कन्या महाविद्यालय बड़ोदरा की स्नातिका थीं। वे अपने पति के साथ वर्षों तक धर्म प्रचार में संलग्न रहीं। भारत के अलावा वे अफ्रीका तथा थाईलैण्ड आदि देशों में भी प्रचार हेतु गयीं।

धर्मप्रचार में योगदान के लिए आर्या मीरा यति को भुलाना कठिन है। 1928 में जालन्धर जिले के एक ग्राम में जन्म लेने वाली मीरा यति ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण किया। कालान्तर में उन्होंने संन्यास धारण कर लिया और देश में सर्वत्र घूम-घूम कर धर्मप्रचार किया। उन्होंने लगभग बीस छोटी-छोटी पुस्तकें लिखीं। इनका निधन 3 फरवरी 1999 को हुआ। आर्य कन्या महाविद्यालय के संचालक पं. आनन्दप्रिय जी की सुपुत्री कुमारी प्रतिभा पण्डित ने ऋषि दयानन्द की जीवन-गाथा को संगीतबद्ध किया तथा देश-विदेश में इस कथा के द्वारा महर्षि की उज्ज्वल कीर्ति को प्रसारित किया। आज भी अनेक आर्य देवियाँ व्याख्यान-कौशल के द्वारा धर्मप्रचार में संलग्न हैं।

अब हम विदुषी सन्नारियों की बात करें जिन्होंने शास्त्रों के अध्ययन के कारण वैदुष्य के क्षेत्र में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। वेदों पर लेखन करने वाली नारियों में दिल्ली की श्रीमती प्रकाशवती बुग्गा का उल्लेखनीय स्थान है जिन्होंने सामवेद का अनुवाद किया है। इसी प्रकार मेरठ की श्रीमती मृदुल कीर्ति ने भी सामवेद को काव्यरूप में अनूदित किया है। आर्षप्रज्ञा का समग्र अवतरण हमें स्व. डॉ. प्रज्ञादेवी (1937-1995) में दिखाई दिया। आर्ष व्याकरण-पद्धति से महापण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के चरणों में बैठ कर वैदिक शास्त्रों में अद्भुत पाण्डित्य अर्जित करने वाली डॉ. प्रज्ञा को यदि कलिकाल की गार्गी कहा जाय तो अनुपयुक्त नहीं होगा। भाषण, लेखन, अध्ययन-अध्यापन, शास्त्रार्थ इन चारों कलाओं में उन्हें अपूर्व व्युत्पन्नता प्राप्त थी। अष्टाध्यायी पर लेखन के अतिरिक्त उन्होंने पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी कृत अथर्ववेद भाष्य तथा गोपथ ब्राह्मण भाष्य का सम्पादन किया तथा शतशः लेख लिखे। काशी में उनके द्वारा स्थापित पाणिनि कन्या महाविद्यालय डॉ. प्रज्ञा देवी की कीर्ति का चिरस्मारक है। 1925 में पटियाला में जन्मी डॉ. पुष्पावती की कर्मस्थली भी काशी है। पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु की शिष्या के रूप में अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य का अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से वेदार्थ प्रक्रिया पर शोध कार्य किया तथा पी-एच. डी. की शोध उपाधि ली। आज वे वाराणसी में मातृमन्दिर कन्या गुरुकुल का संचालन कर रही हैं। अद्वितीय पाण्डित्य के धनी आचार्य विशुद्धानन्द मिश्र शास्त्री की विदुषी पत्नी दिवंगता श्रीमती निर्मला मिश्र

का आर्य विदुषियों में उल्लेख नितान्त आवश्यक है। अपने प्रगल्भ संस्कृत ज्ञान तथा परिवार में संस्कृत को मातृभाषा के रूप में प्रयुक्त करने का ही सुपरिणाम था कि उनके बच्चे भी संस्कृत बोलने में व्युत्पन्न बन गये। करपात्री स्वामी ने ऋषि दयानन्द की वेदार्थ- शैली के खण्डन में "वेदार्थ पंरिजात" नामक एक स्थूलकाय ग्रन्थ प्रकाशित कराया था। पं० विशुद्धानन्द शास्त्री ने उसका खण्डन 'वेदार्थ-कल्पद्रुम' नामक विशद ग्रन्थ लिखकर किया। श्रीमती निर्मला ने इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद किया। उनके वैदुष्य के फलस्वरूप आर्यसमाज फुलेरा ने उन्हें महर्षि दयानन्द साहित्य-पुरस्कार से सम्मानित किया।

जम्मू विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त डॉ. वेदकुमारी (जन्म 16 फरवरी 1932) का साहित्यिक अवदान भी कम नहीं है। संस्कृत व्याकरण में वे पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु की अन्तेवासिनी रहीं। कश्मीर के इतिहास की प्रामाणिक सामग्री देने वाले एक अल्पचर्चित नीलमत पुराण नामक ग्रन्थ का सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत कर उन्होंने शोध उपाधि प्राप्त की। वे संस्कृत में काव्यरचना भी करती हैं। आर्यसमाज की विदुषियों में डॉ. सावित्री देवी शर्मा (जन्म 15 अप्रैल 1934) का नाम मूर्धास्थानीय है। विभिन्न विषयों में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर उन्होंने 'शतपथ ब्राह्मण में प्रतीक विधान' विषय लेकर शोध-उपाधि प्राप्त की। लेखन की भाँति वे व्याख्यान-प्रवचन करने में भी कुशल थीं। 1969 ई. में काशीशास्त्रार्थ शताब्दी के अवसर पर बहिन सावित्री देवी वेदाचार्या ने अपनी ओजस्विनी संस्कृत-वक्तृता से स्वामी करपात्री जी तथा पं. माधवाचार्य जैसे महारथियों को अवाक् और हतप्रभ कर दिया था। शतपथ ब्राह्मण के कुछ अंशों का भाष्य तथा संस्कृत-हिन्दी में कतिपय लघु पुस्तिकाएँ भी आपकी छपी हैं। 28 नवम्बर 2005 में आपका स्वर्गवास हो गया।

विभिन्न विषयों पर लेखन के द्वारा अपने अध्ययन तथा विवेचन कौशल को व्यक्त करने वाली आर्यनारियों की संख्या पर्याप्त है। यहाँ कुछ का संकेतमात्र उल्लेख ही पर्याप्त है। आर्यसमाज की पीढ़ी के लेखक तिलहर निवासी स्व. चिम्मनलाल वैश्य की पुत्री श्रीमती प्रियंवदा गुप्ता **(1896-1972)** लेखन के क्षेत्र में उतरने वाली पुरानी पीढ़ी की लेखिका थीं। उनकी कुछ कृतियों का उल्लेख हमने अपने आर्यलेखक कोश में किया है। वे अपने नगर के समाज-कल्याण बोर्ड की अध्यक्षा रहीं तथा अलीगढ़ जिले की प्रथम महिला ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के पद पर कार्य करने का गौरव उन्हें मिला।

अलीगढ़ जिले के एक ग्राम में उत्पन्न गायत्री देवी ने 'आदर्शत्यागी लक्ष्मण' तथा 'कारुण्य-भारती' नामक दो काव्य लिखकर द्विवेदीकालीन कवयित्रियों में अपना उल्लेखनीय स्थान बनाया। गुजरात में जन्मी श्रीमती चंचल बेन पाठक (1884-1964) ने स्वामी दयानन्द की जन्मस्थली टंकारा में आर्यसमाज की स्थापना की तथा वर्षों तक वहाँ की आर्य पुत्री पाठशाला का संचालन किया। उन्होंने गुजराती तथा हिन्दी में अनेक ग्रन्थ लिखे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्राध्यापक तथा पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय के वरिष्ठ पुत्र डॉ. सत्यप्रकाश की पत्नी श्रीमती रत्नकुमारी (1910-1964) सुलेखिका थीं। 'प्राची-प्रतीची' शीर्षक से उनका भ्रमण वृत्तान्त हिन्दी के यात्रा साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उनकी स्मृति में डॉ. सत्यप्रकाश ने 'डॉ. रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान' की स्थापना की जहाँ से अनेक ग्रन्थ छपे। डॉ. उषा ज्योतिष्मती ने इस संस्थान का दायित्व अपने हाथों में लिया। उन्होंने उपाध्याय जन्मशताब्दी (6 सितम्बर 1981 ई.) के अवसर पर "पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" शीर्षक से तथा ऋषि दयानन्द निर्वाण शताब्दी (1983 ई.) के उपलक्ष्य में "महर्षि दयानन्द : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" शीर्षक से पुस्तकें संस्थान से प्रकाशित कीं।

आर्य कवयित्रियों में उन दो बहिनों से पाठकों को परिचित कराना चाहता हूँ जिन्होंने सम्मिलित रूप से वैदिक धर्म का ध्वजगीत प्रथम बार गाया। आज आर्यसमाजों में सर्वत्र देश-विदेश में यही ध्वजगीत गाया

जाता है। दोनों बहिनें उच्चकोटि की कवयित्रियाँ थीं और 'विकसित कुसुम' तथा 'किसलय' नाम से कविता लिखती थीं।

पं. आत्माराम अमृतसरी तथा उनकी पत्नी यशोदादेवी का आदर्श चरित्र अंकित किया गया है। पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी (अथर्ववेद भाष्यकार) की पौत्री सुशीलादेवी जौहरी (जन्म 1906 ने अपने पिता का सुन्दर जीवन चरित्र लिखा था। यहाँ डॉ. सुशीला आर्या (जन्म 5 जुलाई 1930) का उल्लेख भी आवश्यक है। हरियाणा के नरवाना कस्बे में जन्मी सुशीला गुप्ता ने संस्कृत के आर्य कवि मेधाव्रताचार्य के कार्य पर शोध कार्य सम्पन्न किया। उनके काव्य-ग्रन्थ तथा लोकजीवन का चित्रण करने वाले शोध-निबन्ध छपे हैं। डॉ. कविता वाचक्नवी (जन्म 1963) ने 'महर्षि दयानन्द और उनकी योगनिष्ठा' शीर्षक लघु शोध प्रबन्ध लिखा।

पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी की वर्तमान आचार्या मेधादेवी अपार वैदुष्य की स्वामिनी हैं। इस विद्यालय की स्नातिकाओं ने भी शास्त्रज्ञान तथा लेखन में प्रशंसनीय कार्य किया। डॉ. प्रियंवदा वेदभारती ने स्वस्थापित आर्ष कन्या गुरुकुल नजीबाबाद के संचालन का गुरुतर भार सँभाला है। इन्होंने 25 वर्षों तक पाणिनि कन्या महाविद्यालय में डॉ. प्रज्ञा देवी व पं. मेधा देवी की अन्तेवासिनी बनकर 15 वर्ष तक अध्ययन तथा उसके बाद 10 वर्षों तक अध्यापन का कार्य किया। आपने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से प्राचीन व्याकरण तथा वेदनैरुक्त विषय में आचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा सर्वप्रथम परीक्षार्थी के रूप में 'प्रतापभाई शूर जी स्वर्णपदक' तथा 'सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय स्वर्णपदक' प्राप्त किये। इनका शोध विषय आर्यजगत् के दिग्गज विद्वान् पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी के परामर्शानुसार 'पाणिनीयव्याकरणवाङ्मये यज्ञीयमीमांसा' है। प्राञ्जल संस्कृत भाषा में लिखा गया यह शोध ग्रन्थ डॉ. रामनाथ वेदालंकार प्रभृति वैदिक विद्वानों से सुपरीक्षित तथा पाणिनीय व्याकरण शास्त्र में विवृत समग्र यज्ञीय विषयों का व्यापक अध्ययन तथा शोधपूर्ण समीक्षण है। आशा है यह कृति शीघ्र ही हिन्दी भाषा में अनुवाद सहित पाठकों को प्राप्त हो सकेगी। डॉ. प्रियंवदा का यज्ञीय ऋत्विक्कर्म तथा वैदिक प्रवचन आर्य जगत् में प्रशंसा के साथ सुना जाता है। दूसरी स्नातिका कु. सूर्यादेवी के शास्त्रीय लेखन का सिक्का आज आर्यसमाज में सर्वत्र स्वीकार किया गया है। इन्होंने अपनी आचार्या जी से प्रेरणा लेकर अनेक शोधपूर्ण लेख तथा पुस्तकें लिखी हैं और आर्यसमाज के शोध विद्वानों द्वारा इनके लेख प्रशंसित भी हुए हैं। डॉ. प्रज्ञादेवी जी की वाराणसी में रहने वाली तीसरी स्नातिका डॉ. माधुरी रानी आर्यजगत् की एक शोधपूर्ण त्रैमासिक पत्रिका 'अवनी' का विगत छः वर्षों से सफल सम्पादन कर रही हैं। अब तक इस पत्रिका के 25 शोधपूर्ण अंक नयनाभिराम आकर्षक मुखपृष्ठों के साथ प्रकाशित हो चुके हैं जिससे इनकी सम्पादन कला की उत्कृष्टता जानी जाती है। चतुर्थ स्नातिका सुश्री नन्दिता शास्त्री डॉ. प्रज्ञा देवी के दिवंगत होने के बाद उनकी अनुजा पण्डिता मेधा देवी के साथ गुरुकुल सञ्चालन में हाथ बँटा रही हैं। नन्दिता शास्त्री को कई लघुपुस्तिकायें तथा लेख प्रकाशित हुये हैं। पं. भारतेन्द्रनाथ जी की सुपुत्री तथा परोपकारिणी सभा के मन्त्री डॉ. धर्मवीर जी की सहधर्मिणी श्रीमती ज्योत्स्ना ने तो अपनी किशोरावस्था में ही कलम हाथ में ले ली थी। वे जनज्ञान के अंग्रेजी संस्करण की सम्पादक थीं तथा 'महर्षि दयानन्द के जीवन परक हिन्दी काव्य' शीर्षक से उनका शोध-प्रबन्ध अपने विषय का प्रथम सफल प्रयास था। समस्तीपुर जिले के ग्राम मानपुरा की श्रीमती सियासुन्दरी आर्या ने स्वामी दयानन्द के जीवन को लेकर एक सुन्दर नाटक लिखा है। वे काव्यरचना भी करती हैं। बरेली की विदुषी डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी तीन भाषाओं में लेखन करती हैं। हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं में उनको निपुणता प्राप्त है। उनके अनेक काव्य तथा कहानी संग्रह छप चुके हैं। अंग्रेजी में काव्यरचनाशक्ति उन्हें सहज प्राप्त है। श्रीमती सुनीता शर्मा (जन्म 28 जून 1931) मूलतः पंजाब की हैं। वर्षों तक कलकत्ता में रहने के पश्चात् अब वे मुम्बई में निवास

करती हैं। उच्चकोटि की गायिका, कवयित्री तथा संगीत साधिका श्रीमती शर्मा की 'सन्ध्या ज्योति' 'श्रुति-सुधा' तथा 'एक गुच्छा फूलों का' आदि कई रचनाएँ छप चुकी हैं। पुरानी पीढ़ी के विद्वान् तथा शास्त्रार्थ महारथी पं. धर्मभिक्षु जी की पत्नी श्रीमती सुभद्रा देवी आर्या ने अपने पति का जीवन चरित्र लिखा जिससे शास्त्रार्थ युग की विस्मृत स्मृतियाँ पुनरुज्जीवित हो जाती हैं। हैदराबाद के विश्रुत नेता भाई बंसीलाल जी की सुपुत्री श्रीमती सुनीति संस्कृत की पण्डिता तथा समर्थ लेखिका हैं। 'वैदिक सान्ध्यगीत' तथा 'ऋषि दयानन्द की वेद सम्बन्धी मान्यताएँ' उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

विश्वविद्यालय-महाविद्यालयीय प्राध्यापिकाओं के शोधकार्य— आजकल महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने वाले प्राध्यापकों के लिए शोधकार्य सम्पन्न करना अनिवार्य हो गया है। आर्य विदुषियों ने विशेष रूप से वैदिक साहित्य के शोध, अन्वेषण, मौलिक लेखन तथा सम्पादन के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। डॉ. प्रशान्त विद्यालंकार की पत्नी डॉ. सरोज दीक्षा विद्यालंकार ने ऐतरेय तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण के निर्वचनों पर शोध कार्य सम्पन्न किया। डॉ. शशिप्रभा कुमार (जन्म 10 नवम्बर 1951) दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत की वरिष्ठ व्याख्याता थीं। सम्प्रति जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग की अध्यक्षा हैं। वैशेषिक दर्शन पर आपका विशिष्ट अध्ययन है। आपके वैदुष्य को अनेक पुरस्कारों द्वारा सम्मानित किया गया है। डॉ. नूतन माहेश्वरी (जन्म 17 जुलाई 1953) ने 'पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आर्य समाज का राष्ट्रीय संग्राम में योगदान' विषय पर शोध-प्रबन्ध लिखा। मूलत: बीकानेर की किन्तु महाराष्ट्र के अकोला नगर में ब्याही डॉ. मञ्जुलता विद्यार्थी ने अमरावती विश्वविद्यालय से 'ऋषि दयानन्द की हिन्दी भाषा और साहित्य को देन' विषय लेकर शोध-उपाधि प्राप्त की है। यह शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो गया है। आर्यसमाज के प्रगल्भ वक्ता तथा उपदेशक डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री की सहधर्मिणी डॉ. मञ्जुलता ज्वलन्त (जन्म 1 अक्टूबर 1957) ने 'संस्कृत साहित्य में सामान्य जनजीवन' विषय पर पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। 'महर्षि दयानन्द और उनकी आस्तिक आख्या' उनकी एक प्रसिद्ध कृति है। डॉ. शान्ति देवबाला आर्य विदुषियों में वरिष्ठतम हैं। लखनऊ विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र विभाग से सेवानिवृत्त डॉ. देवबाला का शोध-प्रबन्ध 'स्वामी दयानन्द और भारतीय राष्ट्रवाद' (मूल ग्रन्थ अंग्रेजी में है) शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। डॉ. शान्ता मल्होत्रा (सुपुत्री पं. भीमसेन विद्यालंकार) ने 'स्वामी दयानन्द के राजनैतिक विचार' विषय पर अपना शोध कार्य किया। यह शोध-प्रबन्ध मूलत: अंग्रेजी में लिखा गया है तथा उसका प्रकाशन हो चुका है। पं. आत्माराम अमृतसरी की पौत्री स्व. डॉ. सरस्वती पण्डित सयाजीराव विश्वविद्यालय बड़ोदरा के शिक्षाशास्त्र विभाग में प्राध्यापक थीं। 'आर्यसमाज की भारतीय शिक्षा को देन' विषय पर उनका शोध-प्रबन्ध अपने विषय का प्रथम शोध कार्य था। मूलत: यह ग्रन्थ भी अंग्रेजी में लिखा गया था। देशभक्त कु. चांदकरण शारदा की विदुषी पुत्री कु. सरला शारदा का अध्ययन कन्या महाविद्यालय बड़ौदा में हुआ। 'नीति निर्माण' के लेखन के अतिरिक्त उन्होंने चांदकरण शारदा स्मृति-ग्रन्थ का सम्पादन किया है।

मुरादाबाद जिले में चोटीपुरा ग्रामस्थ कन्या गुरुकुल की संचालिका बहिनों-सुकामा तथा सुमेधा ने 'स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य में इन्द्र देवता' तथा 'दयानन्द कृत वेदभाष्य में अग्निदेवता' शीर्षक शोधविषयों पर क्रमश: शोध-प्रबन्ध लिखे। ये प्रकाशित हो गये हैं। स्व. कुसुमलता आर्या (1947-1997) वर्षों तक वनस्थली विद्यापीठ में पढ़ाती रहीं। 'पुरुषसूक्त का आलोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक उनका शोध-प्रबन्ध अत्यन्त परिश्रम के साथ लिखा गया था। उनकी स्मृति में साहिबाबाद में 'कुसुमलता साहित्य-संस्थान' की स्थापना की गयी है।

मैं पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द वैदिक शोध-पीठ के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर पद पर 1980 से 1991 पर्यन्त रहा। इस अवधि में मेरे निर्देशन में जिन महिलाओं

ने वेद तथा दयानन्द विषयक शोध कार्य सम्पन्न किये उनकी तालिका-शोध निबन्ध विषय निर्देशपूर्वक निम्न हैं—

1. डॉ. वसुन्धरा रिहानी— वैदिक देवता-दयानन्दीय यजुर्वेद भाष्य के सन्दर्भ में।
2. डॉ. वीणा कल्ला— हिन्दी काव्य पर दयानन्दीय विचार-धारा का प्रभाव।
3. डॉ. कमला— ऋग्वेद में नारी एक विवेचन।
4. डॉ. अनीता वालिया— भारतीय नवजागरण की दार्शनिक पृष्ठभूमि।
5. डॉ. नीरोत्तमा शर्मा— महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थ, उनके शास्त्रार्थ एवं प्रवचन।
6. डॉ. निर्मल शर्मा— सायण एवं दयानन्द की वेदभाष्य भूमिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन।
7. डॉ. सविता कुमारी— आर्यसमाजी विद्वानों की उपनिषद् व्याख्याएँ।

अन्य विश्वविद्यालयों में आर्य महिला शोधार्थियों का शोध कार्य—

1. स्वर्णकुमारी— मोक्ष की धारणा तथा महर्षि दयानन्द (कुरुक्षेत्र वि. वि.)
2. परमजीत कौर— दयानन्दीय वेदभाष्य में सामाजिक एवं राजनैतिक सन्दर्भ। (कुरुक्षेत्र वि. वि.)
3. साधना— दयानन्द का राजनीतिक दर्शन एवं मौर्य कालीन राजनैतिक अवधारणा। (गुरुकुल कांगड़ी)
4. राजकुमारी शर्मा— दयानन्दीय परिप्रेक्ष्य में महाभारत में निर्दिष्ट धर्म एवं दर्शन समीक्षा।
5. रमा सिंह— दयानन्दीय यजुर्वेद भाष्य की उव्वट-महीधर भाष्य से तुलना (आगरा वि. वि.)
6. सरोज सीसोदिया— स्वतन्त्रता आन्दोलन में बिजनौर जिले की भूमिका (आर्य समाज के सन्दर्भ में) (रुहेलखण्ड वि. वि.)
7. मञ्जुला शर्मा— मध्यप्रदेश में आर्य समाज की शैक्षिक गतिविधियाँ। (रानी दुर्गावती वि. वि.)
8. प्रतिभा कुमारी— बिहार को स्वामी दयानन्द की देन (भागलपुर वि. वि.)

पटना विश्वविद्यालय से डॉ. विमला ने सायण तथा दयानन्द के वेदभाष्य की तुलना करते हुए 1968 में जो शोध-प्रबन्ध लिखा उसे सार्वदेशिक सभा ने 1974 में प्रकाशित किया था।

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति की पत्नी स्व. विद्यावती देवी वेदों की ज्ञाता तथा कविता कर्म में निपुण थीं। उन्होंने सामवेद के कतिपय मन्त्रों का पद्यानुवाद 'सोमामृत' शीर्षक से किया था। सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् तथा पंजाब के कई महाविद्यालयों में प्राचार्य के पद को विभूषित करने वाली श्रीमती विमला श्रीवास्तव ने आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यप्रदेश व विदर्भ के मासिक पत्र 'आर्य सेवक' का अनेक वर्षों तक सम्पादन किया। उनकी कहानियों का एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। जोधपुर की श्रीमती गार्गी माथुर ने अजमेर क्षेत्र के आर्य साहित्यकारों के कृतित्व का विवेचन करते हुए जो लघु शोध-प्रबन्ध लिखा उसे राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकार किया गया है। कानपुर विश्वविद्यालय की वरिष्ठ प्राचार्या डॉ. आशारानी राय डी. लिट्. ने अपने व्यक्तित्व तथा पुरुषार्थ से कानपुर विश्वविद्यलय के व्यावसायिक संस्कृत के स्नातक पाठ्यक्रम में सन्ध्या-यज्ञ-हवन तथा संस्कार की महर्षि दयानन्द विरचित पद्धति को पाठ्यक्रम का अंग बनाया। एतदर्थ 'बृहद्यज्ञ पद्धति' भी आपने सम्पादित की है। स्नातकोत्तर (एम. ए.) के पाठ्यक्रम में ऋषि दयानन्द का वेदभाष्य भी (सायण भाष्य के साथ) आपने ही स्वीकृत कराया है।

निष्कर्षतः यह कहना समीचीन होगा कि जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें आर्य समाज एवं स्वामी दयानन्द के विचारों से प्रेरणा प्राप्त कर आर्य नारियों ने स्वदेश, स्वधर्म, स्वसंस्कृति तथा स्वभाषा को समुन्नत करने में अपना योगदान न दिया हो।

❑❑

यज्ञनिर्वचनानि

—डॉ० प्रियंवदा वेदभारती

वैदिकलौकिकवाङ्मये दरीदृश्यमाना यज्ञशब्दा बहव:[1] बह्व्यश्च तेषां व्युत्पत्तयोऽपि। सर्वप्रथमं षण्णां यज्ञशब्दानां षोढा निर्वचनं प्रस्तूयते—

प्रथमो यज्ञशब्दो देवपूजासंगतिकरणदानार्थक:—

यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु अस्माद् धातो: 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्' (अष्टा. 3/3/90) इति सूत्रेण भावे नङ्। यजनं यज्ञ इति। देवानां पूजा देवपूजा, सत्सङ्गति:, विद्यादिदानमिति त्रयोऽर्था: प्रथमस्य यज्ञशब्दस्य। **यज्ञ: कस्मात्? प्रख्यातं यजतिकर्मेति नैरुक्ता:** (निरु. 3/19) अस्यायमर्थ: प्रख्यातं प्रसिद्धं यजतिकर्म यजधातोरर्थो लोके वेदे च तद्वाचकाद् यजधातोर्भावे यज्ञशब्दो निरुच्यते इति नैरुक्ता आहु:।

द्वितीयो यज्ञशब्दो महिमार्थक:—

याच्ञो भवतीति वा (निरु. 3/19) अपरश्च यज्ञशब्दो याचधातोस्साध्यते। 'टुयाचृ याच्ञायाम्' अस्माद्धातो: 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्' (अष्टा. 3/3/90) इति सूत्रेण नङ्प्रत्यये याच्ञाशब्दस्सिध्यति। याच्ञा अस्यास्तीति याच्ञ:। अर्शआदिभ्योऽच् (अष्टा. 5/2/126) इति मत्वर्थीयोऽच् प्रत्यय:। याच्ञा + अ = याच्ञ:। याच् + ञ: याज् + ञ: यज् + ञ: यज्ञ:। वर्णव्यापत्त्या परोक्षेण यज्ञ इत्युच्यते। यद्वा याचधातो: कर्मणि नङ्प्रत्यये वर्णव्यापत्त्या परोक्षेण यज्ञ इति। यो हि याच्यते स यज्ञो महिमेत्यर्थ:। महिमा हि प्रार्थनीयो भवति। **'यज्ञो वै महिमा'** (शत. ब्रा. 6/3/1/18) इत्यादि ब्राह्मणं भवति।

तृतीयो यज्ञशब्द: कर्मार्थक:—

यजूंष्येनं नयन्तीति वा (निरु. 3/19) अयं यज्ञशब्दो यजु:पूर्वात् 'णीञ् प्रापणे' इत्यस्माद् धातो: कर्मणि क्विपि सिध्यति। यजुस् + नी + क्विप्, यज् + नी, यज् + न:। वर्णलोपेन वर्णव्यापत्त्या च परोक्षेण यज्ञ:। अत्रायं भाव:- एनं कर्मरूपं यज्ञं यजूंषि यजुर्वेदमन्त्रा आदित आरभ्य नयन्ति = समाप्तिपर्यन्तं वर्णयन्तीत्यर्थ:। ऋग्वेदे विज्ञानं, यजुर्वेदे कर्म, सामवेदे उपासना, अथर्ववेदे ज्ञानम्। एष हि वेदानां विषयक्रम:। यो हि यजुर्भिर्नीयते स यज्ञ: कर्मेत्यर्थ:। **"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"** इत्यादि ब्राह्मणं भवति।

चतुर्थो यज्ञशब्दोऽग्निहोत्रादिरूप:—

यजुरुन्नो भवतीति वा (निरु., 3/19) अयं यज्ञशब्दो यजु:पूर्वात् 'उन्दी क्लेदने' इत्यस्माद् धातो: कर्मणि क्तप्रत्यये सिध्यति। यजु: + उन्द् + क्त, यजु: + उन्न:, यज् + न्न:, यज् + न· = यज्ञ:। वर्णलोपेन वर्णव्यापत्त्या च परोक्षेण यज्ञ इ युच्यते। अत्रायं भाव: अयमग्नि- होत्राद्यश्वमेधान्तो यज्ञो यजुर्भि: = यजुर्वेदमन्त्रै: उन्न: = क्लिन्न: परिपूर्ण इत्यर्थ:। एषु यज्ञेषु भूयांसो यजुर्वेदमन्त्रा अल्पशश्चान्ये। तथा चाह-**'व्यृद्धमु वा एतद् यज्ञस्य यदयजुष्केण क्रियते'** (शत. ब्रा., 13/1/2/1) अस्यायमर्थ:- यज्ञस्य यत् कर्म अयजुष्केण = यजुर्वेदमन्त्रैर्विना क्रियते = सम्पाद्यते वै = निश्चयेन एतत् = यज्ञस्य कर्म व्यृद्धम् = विगतर्द्धिकम्। यो हि यजुर्भिरुन्न: स यज्ञोऽग्निहोत्रादिरूप इत्यर्थ:।

1. नन्वेकस्य यज्ञशब्दस्यानेकानि निर्वचनानीति कथं नोच्यते चेत्? सत्यम्, लोके इत्थमेव प्रसिद्धे:। वस्तुतस्तु यस्य शब्दस्य यावन्ति निर्वचनानि तावन्त एव ते शब्दा:। समानाकृतित्वादेकोऽयं शब्द इति प्रतीतिर्भवति। यथा चकारेति भिन्ने द्वे पदे एकं कृञ्धातोर्लिटि, अपरञ्च कृधातोर्लिटि। समानाकृतित्वाच्च 'चकार' इत्येकं पदमिति प्रतीति:। तद्वत् षड् यज्ञशब्दा: व्युत्पतिभेदादनेके मन्तव्या:।।

पञ्चमो यज्ञशब्दो विद्याविज्ञानयोगादिरूपः—

बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः (निरु. 3/19) अस्यायमर्थः— अपरश्च यज्ञशब्दोऽजिनशब्दात् "अर्शआदिभ्योऽच्" अष्टा. 5/2/127 इति सूत्रेण मत्वर्थीयेऽच्प्रत्यये कृते सिध्यति। यत्राभिन्नरूपेण शब्देन तद्वानभिधीयते सोऽर्शआदिगणे द्रष्टव्यः। अजिन + अ, अज् + इन् + अ + अ, इ + अज् + न + अ, य + ज् + नः = यज्ञः। वर्णलोपेन वर्णविपर्ययेण वर्णव्यापत्त्या च परोक्षेण यज्ञ इत्युच्यते। अत्रायं भावः— यागादौ बहूनां कृष्णाजिनानामुपयोगो दृश्यते। ब्रह्मचारिणोऽपि अजिनवन्तः, योगिनोऽपि अजिनवन्तः। अजिनान्यत्र सन्तीति स यज्ञो योगादिरूप इत्यर्थः। **"कृष्णाजिनं वै सुकृतस्य योनिः"** (शत. ब्रा. 6/4/2/6) स (ब्रह्मचारी) **यन्मृगाजिनानि वस्ते तेन तद् ब्रह्मवर्चसमवरुन्धे** (गो. ब्रा. 1/2/2) **एतद्** (कृष्णाजिनं) **वै प्रत्यक्षं ब्रह्मवर्चसम्** (तां. ब्रा. 17/11/8) इत्यादि ब्राह्मणं भवति।

षष्ठो यज्ञशब्दः संसारार्थकः—

"यञ्जायते तस्माद् यञ्जः। यञ्जो ह वै नामैतद् यद् यज्ञः" (शत. ब्रा. 3/9/4/23) अयं यज्ञशब्दः शत्रन्तेण्धातुपूर्वात् डप्रत्ययान्ताज्जनिधातोः सिध्यति। यन् + जः, य + ज् + न् + अः = यज्ञः। वर्णविपर्ययेण वर्णव्यापत्त्या च परोक्षेण यज्ञ इत्युच्यते। अयं भावः –इदं हि दृश्यमानं जगत् जातं वस्तु न नित्यं किन्तु कार्यकारणसंगत्योत्पद्यते[1] यो हि प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तकार्यकारणसंगतिं यन् गच्छन् प्राप्नुवन् जातः स यज्ञो जगदित्यर्थः।

एवं यज्ञशब्दस्य विभिन्ननिर्वचनानां पृथक् पृथगर्था भवन्ति। यजधातोः संगतिकरणमर्थमादायापि विद्या-विज्ञानयोगादिः, जगद्, विद्यादिदानं चार्था भवितुमर्हन्ति। सति चैवं षण्णां यज्ञशब्दानां (1) देवानां पूजा, सत्संगतिः, विद्यादिदानम्, (2) महिमा, (3) कर्म, (4) अग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तो यज्ञः (5) विद्याविज्ञानयोगादिः (6) जगत् इत्याद्यभिधेयार्था भवन्ति।

1. कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः। वै. द. 2/1/24.

एकशब्दस्यानेकनिर्वचनविवेचनम्—

ननु कथमेकस्य शब्दस्यानेकनिर्वचनसम्भवः? अत्र केचिदाहुः[1] परोक्षातिपरोक्षवृत्तिषु शब्देषु नियत-निर्वचनस्य अनवधारणादेवमुच्यते। "याच्ञो भवतीति वा, यजूंष्येनं नयन्तीति वा, यजुरुन्नो भवतीति वा" अत्र न ज्ञायते एषां कतमो धातुर्यज्ञशब्दे विद्यते। अन्यतमानवधारणाद् यास्केन सम्भाविता अनेके धातवः प्रदर्श्यन्ते इति दुर्गस्कन्दादिपौरस्त्यविदुषां विल्सनादि-पाश्चात्त्यविदुषाञ्च मतम्। तदसदित्याचार्यो विश्वश्रवाः (द्र. ऋग्वेद भाष्यम् पृ. 171)। यास्कीयनिर्वचनशास्त्रे प्रयुक्तस्य वाशब्दस्य प्रायः समुच्चयार्थत्वात् न तु विकल्पार्थत्ववात्। तदुक्तं यास्केन– अथापि समुच्चयार्थो भवति (निरु. 1/4)। एवं 'याच्ञो भवतीति वा यजुरुन्नो भवतीति वा यजूंष्येनं नयन्तीति वा' इत्यादेरयमर्थो यज्ञशब्दो न केवलं यजधातोरेव प्रत्युत याचधातोरपि यजुःपूर्वा-दुनत्तेरपि यजुः पूर्वान्नयतेरपि निष्पद्यते इति महर्षियास्कस्य निगूढोऽर्थः।

1. (क) अन्यतमावधारणे च कारणाभावादेकस्य शब्दस्यानेकनिर्वचनस्य सम्भवः। तत्प्रदर्शनञ्च- एतावतां धातूनामभिधेयाः क्रिया अयं शब्दः प्रतिपादयितुं समर्थ इत्येतस्य प्रतिपादनार्थम्। निरु. स्क. भा, 1/1
   (ख) विशेषलक्षणव्यवस्थाभावात्। नहि तत्र विशेषलक्षणव्यवस्था काचिदस्ति ययैकोऽव-तिष्ठेतान्ये व्यावर्त्तेरन्। निरु. दु. भा. 1/1
   (ग) Agni- A great variety of etymologies are devised to explain the meaning of the term Agni the most of which are oveously fanciful. अनु. विल्सनः, ऋ. 1/1/1.
   (घ) Etymology of yaska is nonsense. Etymologies of yaska, p. 10.

यज्ञपर्यायवाचिनश्शब्दाः—

वैदिककोषे निघण्टौ यज्ञपर्यायवाचिनः पञ्चदश शब्दाः समाम्नाताः। ते च पुनः— (1) यज्ञः, (2) वेनः, (3) अध्वरः (4) मेधः (5) विदथः, (6) नार्य्यः (7) सवनम् (8) होत्रा (9) इष्टिः (10) देवताता, (11) मखः (12) विष्णुः (13) इन्दुः (14) प्रजापतिः (15) घर्म इति पञ्चदश यज्ञनामानि। (निघण्टु 3/17)

सप्त यज्ञपर्यायवाचिनश्शब्दाः लौकिके संस्कृतसाहित्येऽप्यतितरां प्रचलिता विद्यन्ते ते कोषकारैरित्थं परिगणिताः— यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः। (अमरकोषः 2/1/13)

1. **यज्ञः**— इज्यन्तेऽत्र देवताः, यजनं वेति यज्ञशब्दव्युत्पत्तिः। यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् (अष्टा. 3/3/90) इति नङ्।

2. **सवः**— सूयते सोमोऽत्र सवः षुञ् अभिषवे + अप्। यद्वा सूयतेऽत्र अनेन वा षू प्रेरणे + अप्।

3. **अध्वरः**— ध्वरतेर्वधकर्मणो घप्रत्यये ध्वरः, स च नञ्पूर्वः। ध्वरो हिंसा तदभावो यत्र। ब्राह्मणग्रन्थेषु धुर्वीधातोरप्यध्वरशब्दो व्युत्पादितः तद्यथा— देवान् ह वै यज्ञेन यजमानान्त्सपत्ना असुरा दुधूर्षाञ्चक्रुः (हिंसितुमैच्छन्) ते दुधूर्षन्त एव न शेकुर्धूर्वितुं ते पराबभूवुस्तस्माद् यज्ञोऽध्वरो नाम (शत. ब्रा. 1/4/1/40)

4. **यागः**— इज्यते अनेन वा अस्मिन् वा यजेर्घञ्।

5. **सप्ततन्तुः**— सप्तभिश्छन्दोभिः अग्निजिह्वाभिर्वा तन्यते यद्वा तानि सप्त तन्यन्तेऽत्र। सितनिगमि. (उ. 1/69) इत्यौणादिकस्तुन्।

6. **मखः**— मखन्ति देवा अत्र अनेन वा भौवादिकान् मखतेः पुंसि संज्ञायामिति घः। निघण्टुनिर्वचने देवराजयज्वना 'मह पूजायाम्' धातोः खप्रत्ययेन हलोपेन चायं व्युत्पादितः (द्र. निघण्टुनिर्वचनम् 3/17) ब्राह्मणग्रन्थेषु मा-खशब्दद्वयाभ्यां व्युत्पाद्यमानोऽयं दृश्यते— मख इत्येतद्यज्ञनामधेयं छिद्रप्रतिषेधसामर्थ्यात्। छिद्रं खमित्युक्तं तस्य मेति प्रतिषेधः। मा यज्ञं छिद्रं करिष्यतीति (गो. ब्रा. 2/2/5)

7. **क्रतुः**— करोति क्रियते वा 'कृञः कतुः' (उ. 1/80) औणादिके कतुप्रत्यये 'क्रतु' रूपसिद्धिः।

यज्ञपरिभाषा—

द्रव्यं देवता त्यागः (का. श्रौ. 1/2/2) इति कात्यायनश्रौतसूत्रे यज्ञः परिभाषितः। द्रव्यं दधि-सोमव्रीहियवादि, देवता— अग्नीन्द्रादिः, त्यागः- देवतोद्देशेन क्रियमाणः स्वत्त्वनिवृत्त्यनुकूलो व्यापारः। यत्र देवतोद्देशेन द्रव्यस्य त्यागो विधीयते स यज्ञ इति सूत्रार्थः।

श्रौतसूत्रकारीये यज्ञलक्षणेऽस्मिन् त्यागः कुत्र विधेय इति अनिर्दिष्ट एवैतस्मात्कारणात् सोमयागान्ते क्रियमाणे अवभृथहोमे जलेऽपि प्रक्षेपो विधीयते 'अप्सु जुहोति' (का. श्रौ. 10/8/26) इति। अथ च सोमविक्रयिणः समीपे सोमक्रयार्थं नयन्त्याः गोः सप्तमं पदं यत्र निधीयते तत्रापि घृताहुतिः निर्दिष्टा— 'सप्तमे पदे जुहोति' (तै. सं. 6/1/8/1) इति।

नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन यज्ञानां त्रैधम्—

इमे सर्वे श्रौतस्मार्तयागाः नित्यनैमित्तिककाम्य-भेदेन त्रिविधा भिन्नाः। येषां करणे विशेषपुण्या-भावेऽप्यकरणे प्रत्यवायस्तानि सन्ध्यावन्दनपञ्चमहा-यज्ञादीनि नित्यकर्माणि[1] गृहादिदाहभूकम्पातिवृष्ट्यना-वृष्ट्यादिप्राकृतिकसंयोगोत्पातयोर्निमित्तयोर्विधीयमानानि कर्त्तव्यानि नैमित्तिकानि। ग्रामपशुयशःस्वर्गधनादि-यत्किञ्चित्फलाकाङ्क्षया क्रियमाणानि ज्योतिष्टोमादीनि कर्माणि काम्यानि। कामनाविशेषमाधृत्य बहवो यज्ञाः श्रौतगृह्यधर्मसूत्रेषु प्रोक्ताः। एतादृशां विविधानां यज्ञानां बहुविधो विस्तारस्त्रेतायुगे बभूव। तदुक्तं मुण्डकोपनिषदि- 'तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि। (मु. उ. 1/2/1)

श्रौतस्मार्त्तयागानामेकविंशतिर्भेदाः

संहिताग्रन्था इमान् यज्ञान् एकविंशतिसंख्यासु विभजन्ति—

1. निष्कामभावेन कर्त्तव्यबुद्धया क्रियमाणत्वादेतेषां फलमात्मशुद्धिपूर्वकं मोक्षप्राप्तिरिति पं. युधिष्ठिर-मीमांसकाः। (द्र. वै. सि. मी. पृ. 356)।

(क) ये त्रिषप्ता: परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रत:।

(अथर्व. 1/1/1)

(ख) इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् (ऋ. 10/124/1)

तथ्यमिदं गोपथब्राह्मणेऽपि निरूपितम्- स भूयोऽश्राम्यद् भूयोऽतप्यद् भूय आत्मानं समतपत्। स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत्....।

(गो. ब्रा. 1/1/12)

त एकविंशतिर्यज्ञा: क आसन्नस्मिन् सन्दर्भे प्राह गोपथब्राह्मणकार:-सप्त सुत्या: सप्त च पाकयज्ञा: हविर्यज्ञा: सप्त तथैकविंशति:। (गो. ब्रा. 1/5/25) अग्रे महर्षिर्गोपथस्तान् यज्ञान् नामोल्लेखपूर्वकं परिगणयत्यपि—

पाकयज्ञा:— (1) प्रातर्होम: (2) सायंहोम: (3) स्थालीपाक: (4) बलिवैश्वदेव: (5) पितृयज्ञ: (6) अष्टका (7) पशु:।

हविर्यज्ञा:— (1) अग्न्याधेयम् (2) अग्निहोत्रम् (3) दर्श: (4)पौर्णमास: (5) नवसस्येष्टि: (6) चातुर्मास्यानि (7) पशुबन्ध:।

सोमयज्ञा:— (1) अग्निष्टोम: (2) अत्यग्निष्टोम: (3) उक्थ्य: (4) षोडशी (5) वाजपेय: (6) अतिरात्र: (7) अप्तोर्याम:।[1]

यज्ञानां श्रौतस्मार्त्तभेदा:—

संहिताब्राह्मणकल्पसूत्रेषूपलभ्यमाना यज्ञा: श्रौतस्मार्त्तभेदेन द्विप्रकारका:। तत्र साक्षात् श्रुतौ = संहिताब्राह्मणग्रन्थेषु प्रतिपादिता श्रौता:। गृह्यसूत्रेषु धर्मसूत्रेषु च प्रतिपादिता: स्मार्त्ता:। गृह्यसूत्रेषु गृहस्थोपयोगिकर्मणां संस्काराणाञ्चं विधानं, धर्मसूत्रेषु चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां तत्कर्तव्यानाञ्च निरूपणं विद्यते। गृह्यधर्मसूत्रप्रतिपादिता विषया: श्रुतौ साक्षान्नोपलभ्यन्ते अन्यार्थपरकै: कथनैस्तु सङ्केत्यन्ते।[1] सङ्केतांस्तानुपलभ्य इमे विषया गृह्यधर्मसूत्रेषु स्मृता:। अत: स्मृतिपदवाच्यानि गृह्यधर्मसूत्राणि स्मार्तपदवाच्यानि च तेषु विहितानि कर्त्तव्यानि। कुत्रचित् श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतेरेव प्रामाण्यं न स्मृते: **विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्** (मी. द. 1/3/3) इति मीमांसावचनात्।

1. सायंप्रातर्होमौ स्थालीपाको नवश्च य:।
बलिश्च पितृयज्ञश्चाष्टका सप्तम: पशुरित्येते पाकयज्ञा:।।
अग्न्याधेयमग्निहोत्रं पौर्णमास्यमावस्ये।
नवेष्टिश्चातुर्मास्यानि पशुबन्धोऽत्र सप्तम:।। इत्येते हविर्यज्ञा:।।
अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्य:षोडशिमांस्तत:।
वाजपेयोऽतिरात्रश्चाप्तोर्यामोऽत्र सप्तम:।।
इत्येते सुत्या:।। गो. ब्रा. 1/5/23

1. गर्भाधानस्य मूलम्— सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथ:। (अथर्व. 14/2/37)
पुंसवनस्य मूलम्— शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम्। तद्वै पुत्रस्य....। (अथर्व. 6/11/1)
सीमन्तोन्नयनस्य मूलम्— राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे श्रृणोतु न: सुभगा। (ऋ. 2/32/4)
जातकर्मणो मूलम्— एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह....। (यजु. 8/28)
नामकरणस्य मूलम्— कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि....। (यजु. 7/29)
अन्नप्राशनस्य मूलम्— अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य. ....। (यजु. 11/83)
चूडाकर्मणो मूलम्— आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि। (अथर्व. 6/68/1)
कर्णवेधस्य मूलम्— हिरण्यकर्ण मणिग्रीवमर्णस्तन्नो (ऋक्. 1/122/14)
उपनयनस्य मूलम्— युवा सुवासा: परिवीत आगात् (ऋक् 3/8/4)
समावर्तनस्य मूलम्— तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे (अथर्व. 11/5/26)
विवाहस्य मूलम्— गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या।....... (ऋक्. 10/85/36)
वानप्रस्थमूलम्— वातस्याश्वो वायो: सखाऽथो देवेषितो मुनि:। (ऋक्. 10/136/5)
संन्यासमूलम्— यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत...। (ऋक्. 10/72/7)
अन्त्येष्टिमूलम्— वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्। (यजु. 40/15)

वेदभाष्य की प्रामाणिक पद्धति

—डॉ० प्रियंवदा वेदभारती

वेद धर्म के मूल हैं।[1] धर्म के जिज्ञासुओं के लिए परम प्रमाण श्रुति है।[2] हमारे शास्त्र पुकार-पुकार कर वेदों की प्रशंसा करते हैं, उनकी प्रामाणिकता के गीत गाते हैं। वेदों का महत्त्व उसे कण्ठस्थ करने, स्मरण करने तथा यथावत् रूप में उसे सुरक्षित रखने तक ही सीमित नहीं है, वेदों का वास्तविक महत्त्व वेदार्थ को अधिगम करने में है। महर्षि यास्क ने निरुक्त में स्पष्ट रूप से कहा है– वह भार उठाने वाला ठूँठ ही है जो वेद पढ़कर उसका अर्थ नहीं जानता। जो अर्थ का ज्ञाता है वह पूर्ण कल्याण का भोग करता है और ज्ञान से पाप को दूर करके सुख को प्राप्त करता है।[3] महर्षि मनु का कथन है– वेद को कण्ठस्थ करने वालों की अपेक्षा वेदार्थ को जानने वाले उत्कृष्ट होते हैं।[4]

वेदार्थ की परम्परा

प्राचीनकाल से ही वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करने की पद्धति चली आ रही है। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदमन्त्रों की व्याख्यायें मिलती हैं। प्रायेण वे व्याख्यायें विशिष्ट शब्दों की ही हैं। आरण्यक तथा उपनिषदों में भी कहीं-कहीं मन्त्रों की व्याख्या उपलब्ध होती है। चारों वेदों की 1127 शाखाएँ हैं। शाखाकार तथा पदपाठकार ऋषियों द्वारा क्रमशः वेदों का बहुविध शाखाओं में विभाजन तथा मन्त्रों का पदपाठ के रूप में प्रस्तुतीकरण वेदार्थ को ही स्पष्ट करने का उपक्रम था। सुदीर्घकाल तक वेदों का पठन-पाठन गुरु शिष्य परम्परा द्वारा होता रहा है जो क्षीणतम स्थिति में किसी न किसी रूप में आज भी जीवित है। आज यह परम्परा मन्त्रों के पाठ के कण्ठस्थीकरण तक सीमित है किन्तु पुराकाल में मन्त्रार्थों का ज्ञान भी गुरुशिष्यपरम्परा द्वारा श्रवण-मनन के रूप में प्रचलित था। वेद की श्रुति संज्ञा भी इसी कारण पड़ी। किन्तु कालान्तर में मनुष्यों में मतिमान्द्य के साथ स्मृतिशक्ति में क्षीणता आने के कारण वेदार्थ में सन्देह, काठिन्य और दुरूहता प्रतीत होने लगी, अतः ऋषियों ने विभिन्न शाखाओं, पदपाठ आदि विविध पाठों एवं वेदाङ्गों का सृजन किया। ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों द्वारा भी परम पवित्र वैदिक ऋचाओं के अन्तर्निहित भाव या तात्पर्य को ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। वेदर्षि यास्क के वचन इस विचार के साक्षी हैं।[5]

वेदभाष्यकारों के भाष्य

लोक में वेदों के परम्परागत अध्ययन-अध्यापन में न्यूनता तथा वैदिक संस्कृत भाषा का क्रमशः ह्रास होता गया। इस कारण वेदमन्त्रों के रहस्यों एवं सामान्य अर्थों को समझने में कठिनता का अनुभव होने लगा, परिणामतः कुछ आचार्यों व विद्वानों के मन में वेदमन्त्रों का अविकल अर्थ या भाष्य प्रस्तुत करने की इच्छा स्वाभाविक रूप से जागृत हुई। ब्राह्मण ग्रन्थों तथा निरुक्त आदि से किन्हीं मन्त्रों व वेद के स्थलविशेष या शब्दविशेष के अर्थ के स्पष्टीकरण में सहायता तो मिल सकती थी, किन्तु समग्र वेदमन्त्रों का क्रमबद्ध अनुवाद प्रस्तुत न होने से अल्पज्ञ मनुष्यों की वेद से विमुखता स्वाभाविक थी। इन्हीं सब कारणों से कालान्तर में कुछ विद्वानों ने वेदमन्त्रों का यथाक्रम अविकल भाष्य या अर्थ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। यद्यपि निश्चय ही भूतकाल में ऐसे अनेक आचार्य हुए होंगे जिन्होंने वेदभाष्य किया होगा किन्तु वेदों की शाखाओं के समान ही अनेक आचार्यों के वेदभाष्य भी काल-कवलित होने के कारण अब उपलब्ध नहीं हैं। आज मोटे तौर पर वेदभाष्यकारों के तीन प्रमुख स्तम्भ हैं–

1. आचार्य सायण
2. पाश्चात्त्य विद्वान्
3. स्वामी दयानन्द सरस्वती

पाश्चात्त्य विद्वान्

विचार सौविध्य की दृष्टि से योरोपीय विद्वानों को पहले लेते हैं। वेदार्थ के सम्बन्ध में योरोपीय पाश्चात्य विद्वानों को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं–

1. प्रथम श्रेणी में वे विद्वान् हैं जो सायण के भाष्य से असहमत हैं। वे तुलनात्मक भाषाविज्ञान, धर्म, दर्शन तथा पुराकथा के आधार पर वेदार्थ करने के पक्षधर हैं। इन विद्वानों में प्रमुख हैं– प्रो. बर्नफ, प्रो. रास, प्रो. बेनफे, प्रो. लुडविग, प्रो. ग्रासमान, प्रो. वेबर तथा प्रो. ओल्डेन वर्ग।

2. द्वितीय श्रेणी में वे विद्वान् हैं जो वेदार्थ की परम्परागत शैली पर ही विशेष बल देते हैं। इनका यह मानना है कि तुलनात्मक भाषाविज्ञान वेदार्थ की परम्परागत पद्धति को चुनौती देने में समर्थ नहीं है अतः परम्परागत सायणीय वेदार्थ ही प्रामाणिक है। इस विचार के विद्वानों में प्रमुख हैं– प्रो. एच. एच. विल्सन, प्रो. वेलेण्टाइन, प्रो. गोल्डस्टुकर, प्रो. वी. कावेल, प्रो. डब्ल्यू. एफ. वेब्स्टर, प्रो. ग्रिफिथ, प्रो. पिशेल और प्रो. गेल्डनर।

तुलनात्मक भाषाविज्ञान धर्म और पुराकथा के आधार पर वेदार्थ पद्धति के पक्षधर पश्चिमी विद्वानों के मत का खण्डन करते हुए प्रो. विल्सन ने कहा कि "एक शब्द के सम्पूर्ण सन्दर्भों को एकत्रित करके तुलनात्मक व्याख्या द्वारा निश्चित अर्थ जाना जा सकता है, यह मान लेने पर भी उन एकल शब्दों के व्याख्यान में इस दृष्टि से कोई सहायता नहीं मिल सकती, जिनका विभिन्न सन्दर्भों में प्रयोग हीं नहीं हुआ है या जिनका प्रयोग विरल है।

दूसरी ओर बहुसंख्या में प्रयुक्त असामान्य और संदिग्ध शब्दों के ध्यानपूर्वक संकलन से भी तुलनात्मक भाषाविज्ञान द्वारा विवादरहित व्याख्या नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसी स्थिति में यह मानना पड़ेगा कि उन शब्दों का प्रयोग सर्वत्र निश्चित एवं समान रूप से किया गया है। किन्तु यह निष्कर्ष वेद के एककर्तृक या बहुकर्तृक होने पर दोनों ही स्थितियों में मान्य नहीं हो सकता, अतः इस प्रकार का स्थल–संकलन कई स्थलों पर उपयोगी होते हुए भी सर्वत्र सभी सन्देहों को दूर कर सकेगा ऐसा मानना असम्भव है।"[6]

प्रो. विल्सन यह भी कहते हैं कि "मन्त्रों के पूर्ण अर्थ की जानकारी के लिए लुप्त शब्दों या वाक्यांशों की कल्पना अपरिहार्य है। गुरु द्वारा शिष्यों को ये मन्त्र प्रदान किये गये और बाद में मौखिक परम्परा में चल पड़े। उस समय की परम्परा की जानकारी के बिना उन वाक्यांशों को पूर्ण करना अत्यन्त कठिन है।"[7]

जिन पश्चिमी विद्वानों ने सायणीय वेदभाष्य से सहमति व्यक्त की है उनके विचारों की पर्यालोचना सायणीय–भाष्य के प्रसंग में की जायेगी।

आचार्य सायण

सायणाचार्य के वेदभाष्य के समर्थक भारतीय तथा पश्चिमी विद्वानों का सबसे बड़ा तर्क यही है कि वेदार्थ को जानने की जो भारतीय परम्परागत पद्धति है वह सायण–भाष्य में ही मिलती है, क्योंकि वेदाविर्भाव के पश्चात् वेदार्थ की मौखिक परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी सायण के समय तक पहुँचते- पहुँचते निश्चय ही बहुत कुछ सुरक्षित रही होगी अतः पूर्ववर्ती वेदभाष्य की प्रचलित परम्पराओं द्वारा प्रतिष्ठाप्राप्त सायणीय भाष्य निराधार नहीं है। किन्तु विचार करने पर यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि वेद–विषयक प्राचीन ऋषियों की मान्यताएँ सायणीय भाष्य से पुष्ट नहीं होतीं। मध्यकालीन यज्ञीय कर्मकाण्ड की परम्परा से बोझिल सायण की वेदव्याख्या ऐतरेय, याज्ञवल्क्य, गोपथ, मनु, यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि, कणाद, कपिल, गौतम और व्यास प्रभृति ऋषियों के दृष्टिकोण से विपरीत है, कारण, सायण ने अपने काल में प्रचलित कर्मकाण्ड की पद्धति को सृष्टि के आदिकाल से ही प्रचलित मान लिया। यही नहीं अपितु समकालीन धार्मिक विश्वास, पौराणिक कथाएँ और लौकिक पद्धतियों को भी सायण ने प्राचीन वेदमन्त्रों में सोचना प्रारम्भ किया, जबकि वैदिक ऋषियों के वातावरण से भाष्यकार सायण (ईसा की 14वीं शताब्दी) का वातावरण सर्वथा भिन्न था अतः प्राचीन वैदिक मन्त्रों

तथा सायण-भाष्य के बीच परम्परा का एक सुदीर्घ विच्छेद दिखाई पड़ता है। वैदिक मन्त्रों के आविर्भाव काल से लेकर मध्यकालीन वेदभाष्यकारों के समय तक कोई ऐसी परम्परा नहीं मिलती जो अविच्छिन्न रूप से चलती रही हो। अग्रिम प्रमाणों से इस बात की प्रबल पुष्टि हो जायेगी। सायणाचार्य ने **"इदं विष्णुर्विचक्रमे"** (ऋग्. 1/22/17) मन्त्र से वामन-अवतार तथा **"वराहेण पृथिवी संविदाना"** (अथर्व. 12/1/48) मन्त्र से वराह-अवतार सिद्ध करने का प्रयास किया है। जबकि उक्त ऋग्वेदीय मन्त्र की व्याख्या निरुक्त में सूर्यपरक की गयी है। इसी प्रकार सायण ने वैष्णव सम्प्रदाय में विहित शरीर दग्ध करने वाली छाप का वर्णन भी ऋग्वेद से निकाला और पुरी के जगन्नाथ की उस लकड़ी का उल्लेख भी ऋग्वेद में वर्णित किया जो उनके कलेवर के काम आती है-

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्।।

(ऋ. 10/155/3)

यहाँ सायणाचार्य ने दारु पद का **"दारुमयं पुरुषोत्तमाख्यं देवताशरीरम्"** जैसा साम्प्रदायिक अर्थ लिया। उन्होंने यह भी ध्यान नहीं दिया कि इस सूक्त का देवता 'अलक्ष्मीघ्नम्' है तथा दारु के लिए 'प्लवते' और 'अपूरुषम्' कहा गया है। अर्थात् वह पुरुषनिर्मित नहीं है तथा तैर रहा है। जबकि जगन्नाथ जी की काष्ठ प्रतिमा पुरुषनिर्मित है और समुद्र तट पर विराजमान है, तैर नहीं रही है।

इरावती धेनुमती हि भूतं
सूयवसिनी मनुषे दशस्या।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवे ते
दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः।।

(ऋ. 7/99/3)

यहाँ सायण ने अन्तिम चरण का अर्थ करते हुए लिखा- **"पृथ्वीं प्रथितामिमां भूमिमभितः सर्वत्र स्थितैः मयूखैः पर्वतैः दाधर्थ धारितवानसि"** अर्थात् विष्णु भगवान् ने पृथिवी को पर्वतों से धारण किया है। इस पर पं. सत्यव्रत सामश्रमी की टिप्पणी द्रष्टव्य है- **"तदत्र मयूखशब्दस्य अश्रुतपूर्वः पर्वतार्थस्तत्र प्रकृतार्थसमन्वयासमर्थतयैव तेनाश्रित इति।"** अर्थात् प्रकृत मन्त्र के वास्तविक अर्थ की संगति लगाने में असमर्थ होने के कारण सायण ने यहाँ 'मयूख' शब्द का अश्रुतपूर्व 'पर्वत' अर्थ किया है।

यही मन्त्र यजु. 5/16 पर भी आता है। सायण के समान महीधर ने भी इस मन्त्र का कपोलकल्पित साम्प्रदायिक अर्थ किया है- **"मयूखैः स्वतेजोरूपैर्नानाजीवैर्वराहाद्यवतारैर्वा"** अर्थात् अपने तेजरूपी अनेक जीव या वराहादि अवतारों से पृथिवी को धारण किया। यहाँ भी पं. सत्यव्रत सामश्रमी की टिप्पणी द्रष्टव्य है- **"नानाजीवानां वराहाद्यनेकावताराणां च तेजोरूपकल्पनं सर्वमेवैतत् तत्कालस्य गाढतमसावच्छन्नविज्ञानत्वमेव वादयति"** अर्थात् नाना जीव और वराहादि अनेक अवतार की कल्पना उस काल के अन्धकारावृत ज्ञान का ही सूचक है।" इस मन्त्र का देवता विष्णु है जिसका अध्यात्म में परमेश्वर तथा अधिदेव में सूर्य दोनों अर्थ हो सकते हैं। मयूख शब्द निघण्टु में 'रश्मि' नामों में पढ़ा गया है। अतः इस मन्त्र के 'मयूखैः' पद का स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ यह है- **"ज्ञानप्रकाशादिगुणैः रश्मिभिर्वा। मयूख इति रश्मिनामसु पठितम्"** अर्थात्- ज्ञानप्रकाशादि गुणों से या रश्मियों से।

अथर्ववेद काण्ड 10, अनुवाक 5, सूक्त 10, के मन्त्रसंख्या 11 में गौ के लिए 'अघ्न्या' शब्द का प्रयोग किया गया है किन्तु सायणाचार्य ने इसी सूक्त के सम्बन्ध में लिखा है **"अघायताम् इति सूक्तम् आहुत्यर्थगोवधे विनियुज्यते।"** अर्थात् आहुत्यर्थ गोवध करते समय इस सूक्त के मन्त्रों का पाठ करना चाहिए। इसी प्रकार सायणाचार्य ने ऋग्वेद मण्डल-1, सूक्त-24 से 30 तक के भाष्य में शुनः शेप की कथा लिखकर मनुष्य बलि (नरमेध) का एक भयंकर आदर्श सामने खड़ा कर दिया है। सायण ने बिल्कुल लौकिक संस्कृत के अनुसार

"शुनः-शेप" का अर्थ 'एक कुत्ते का शिश्न' किया, जबकि निरुक्त में 'शुनः-शेप' का अर्थ 'विज्ञानवेत्ता' किया गया है। इस पर प्रो. 'म्यूर' लिखते हैं–

"So revolting indeed the description given of Aligarts, behaviour in the Brahman that we should rather recognize in him a speciman of the UnAryan population of India."

(Text Book of Sanskrit Literature)

अर्थात् अजीगर्त का वर्णन इतना भयंकर है, जो भारत के अनार्यों का एक नमूना कहने योग्य है।

सायण से पूर्ववर्ती मध्यकालीन भाष्यकारों की वेद व्याख्या में भी कतिपय स्थल ऐसे मिल जाते हैं जो सायणीय भाष्य की अपेक्षा अधिक सङ्गत वेदादि वाङ्मय से सम्पुष्ट तथा तर्कप्रमाणसमन्वित हैं। सायण ने इन स्थलों पर अपने पूर्ववर्ती भाष्यों का अनुगमन क्यों नहीं किया, यह समझ में नहीं आता। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1. **विधुं दद्राणं समने बहूनां**
युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाऽद्या
ममार स ह्यः समान।।

(ऋ. 10/55/5)

इस मन्त्र के सायणभाष्य का भाव पं. रामगोविन्द त्रिवेदी इस प्रकार लिखते हैं कि "जिस समय कलात्मक इन्द्र युवा रहते हैं उस समय सब कार्य करते हैं, उन द्रावक के भय से युद्ध में कितने ही शत्रु भागते हैं, परन्तु अनेक कालों का वृद्ध काल उनका ग्रास कर लेता है, इनकी महत्त्वजनक क्षमता देखिये कि जो कल जीवित थे, आज मर गये। पुनर्जन्म में फिर जीवित होंगे।"

स्पष्ट है कि ऋचा की संगति नहीं लग रही है क्योंकि कल तक जीवित रहने वाले इन्द्र देवता के आज मर जाने का क्या औचित्य है? फिर मन्त्र के 'विधु' पद का खींचातानी करके (विधुं विधातारं सर्वस्य युद्धादेः कर्त्तारम्) "विधाता सभी युद्धादि के कर्त्ता" अर्थ करना असमीचीन प्रतीत होता है। इसी मन्त्र का सायण से पूर्ववर्ती आचार्य भट्टगोविन्द का भाष्य इस प्रकार है– (विधुम्) रसविधायिनं चन्द्रमसम् (बहूनाम्) ज्योतिषां संसर्गेण (ददाणम्) गच्छन्तम् (युवानम्) तरुणं सन्तं (पलितो जगार) वृद्ध आदित्योऽसिते पक्षे तदीयं रसमादत्ते रश्मीन्। तस्यैव देवस्य (काव्यम्) मेधावित्वं पश्य (महित्वा) महिम्ना योऽद्य कृष्णपक्षे दिने (ममार) म्रियते सो ह्यः शुक्लपक्षदिने (समान) पुनर्जीवति सूर्यरश्मिभिरेवाप्यायनात्। भाव यह है कि रसविधायक चन्द्रमा का वर्णन इस मन्त्र में किया गया है। 'विधु' शब्द का चन्द्रमा अर्थ वैदिक तथा लौकिक साहित्य में प्रसिद्ध है। बहुत नक्षत्रों के संसर्ग से गति करने वाले तरुण चन्द्रमा को वृद्ध आदित्य (सूर्य) कृष्णपक्ष में निगल लेता है अर्थात् उसके रस रूपी रश्मियों को खींच लेता है। उसी देव के मेधावीपन की ये महिमा है, जिसके कारण आज कृष्णपक्ष में चन्द्रमा मरा हुआ सा है, वह कल शुक्लपक्ष में जीवित था और सूर्य रश्मियों से आप्यायित होने के कारण आने वाले शुक्लपक्ष में फिर जीवित हो जायेगा। विस्तारभय से एक ही उदाहरण और द्रष्टव्य है–

2. **अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा**

(ऋ. 10/59/9)

इस मन्त्र में द्युलोक के भेषजों की चर्चा है। सायण ने 'द्वके' पद का अर्थ 'अश्विनौ तथा 'त्रिका' का अर्थ इडा, सरस्वती, भारती किया है। सायण के अनुसार द्युलोक के भेषज अश्विनी कुमार युगल हैं और इडा, सरस्वती, भारती ये द्युलोक की देवियाँ हैं। इस मन्त्र का सायण से पूर्ववर्ती भट्टगोविन्द का भाष्य इस प्रकार है–

"द्वके– सूर्याचन्द्रमसौ, त्रिका-पर्जन्यो वायुरादित्यः"

स्पष्ट है कि द्युलोक के भेषजों की चर्चा प्रसंग में 'द्विक' के रूप में सूर्य और चन्द्रमा तथा 'त्रिक' के रूप में पर्जन्य (मेघ), वायु, आदित्य का भेषजरूप होना अधिक संगत प्रतीत होता है।[8] इसी प्रकार सायण से

पूर्ववर्ती स्कन्द, उद्गीथ, मुद्गल, आत्मानन्द आदि प्राचीन वेदभाष्यकारों के भाष्य में एवंविध अनेक स्थल हैं जो सायणाचार्य की अपेक्षा अधिक संगत हैं। वैदिक देवताओं के सन्दर्भ में भी सायण का विचार एकांगी है। परवर्ती याज्ञिकों के मतानुसार वैदिक देवताओं का स्वरूप ही सायण भाष्य में अधिक विवृत हुआ है। आत्मवादी परिव्राजक, नैदान, पूर्वयाज्ञिक मतों के साथ-साथ मीमांसक और नैरुक्त आचार्यों के भी वैदिक देवविषयक सिद्धान्त सायणीय वेदभाष्य में उपेक्षित रह गये हैं।[१]

स्वामी दयानन्द सरस्वती

उन्नीसवीं सदी के भारतीय गगन में एक महान् धर्म प्रचारक, समाज सुधारक तथा वेदोद्धारक आदित्य के रूप में स्वामी दयानन्द सरस्वती उदित हुए। उनकी समस्त धर्मप्रचार, शिक्षा प्रसार व समाज सुधार की योजना वेदों का आधार लेकर चली। जो वेदानुकूल है उसे उन्होंने मान्यता दी और वेद प्रतिकूल को त्याज्य घोषित किया। सायण, महीधर आदि के वेदभाष्यों से उन्हें सन्तोष न था अतः उन्होंने स्वयं वेदों का भाष्य करने की योजना बनायी। अपने वेदभाष्य के विषय में स्वामी जी का कथन है कि— ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों द्वारा रचित वेदशाखाएँ, पदपाठ, ब्राह्मण, वेदांग, उपांग आदि वैदिक वाङ्मय की सहायता से मैं अपने वेदभाष्य द्वारा सत्य-अर्थ का प्रकाश कर रहा हूँ। स्वामी जी आगे कहते हैं कि सायण, महीधर, उव्वट आदि द्वारा किये गये प्राचीन आर्ष परम्परा के विरुद्ध वेदभाष्य और इसके आधार पर यूरोपीय या आर्यावर्त्तीय विद्वानों द्वारा देशी-विदेशी भाषा में किये गये वेदभाष्य अप्रामाणिक हैं। मेरे वेदभाष्य में कोई भी बात अप्रामाणिक या कपोलकल्पित नहीं है।

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य की विशेषताएँ

1. **व्यावहारिक अर्थ—** मन्त्रों के व्यावहारिक अर्थ के संकेत यत्र-तत्र प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं, परन्तु कर्मकाण्डीय अर्थ के प्रचलन के कारण लोक में यह धारणा उत्पन्न हो गयी थी कि वेद का मानव जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वैदिक संहिताओं में केवल कर्मकाण्ड की बातें हैं। इस भ्रम के निवारण के लिए महर्षि ने अपने भाष्य में वेद का व्यावहारिक अर्थ विशेष रूप से प्रस्तुत किया। व्यावहारिक प्रक्रिया का मूलाधार है अलङ्कारों का प्रचुर समाश्रय। अन्य वेदभाष्यकारों ने कहीं-कहीं अलङ्कारों का प्रयोग किया परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने अपने वेदभाष्य में लगभग सभी मन्त्रों में अलंकारों का भरपूर उपयोग लेकर मन्त्रों के विविध अर्थ (पदार्थ और भावार्थ में) प्रदर्शित किये हैं। जिस-जिस मन्त्र के श्लेषादि अलङ्कारों द्वारा पारमार्थिक और व्यावहारिक दो-दो अर्थ सम्भव थे, उनके दो-दो अर्थ किये गये हैं, अन्यथा केवल व्यावहारिक अर्थ ही किया है। संक्षेप में वेद का पारमार्थिक अर्थात् आध्यात्मिक और व्यावहारिक अर्थ स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य की अन्यतम विशेषता है।

2. वैदिक वाङ्मय में वेदों के अपौरुषेय (ईश्वरीय, नित्य और अनादि) होने का सिद्धान्त प्रतिपादित है। ब्राह्मण- ग्रन्थ, मीमांसा और नैरुक्तों द्वारा यह विषय सूक्ष्म रूप में वर्णित था, स्वामी जी ने सुस्पष्ट रूप में विशदतया अपने वेदभाष्य में इस सिद्धान्त का प्रतिपालन किया है।

3. "वेदों के शब्द यौगिक या योगरूढि हैं वेद का एक भी शब्द रूढि नहीं है" स्वामी जी के वेदभाष्य की यह आधारशिला है। फलतः वेदों में लौकिक इतिहास का सर्वथा अभाव है। 'अग्नि' आदि शब्दों से किस प्रकार परमात्मा का ग्रहण होता है इसकी विशद विवेचना ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र के भाष्य में ही की गयी है। इसके समर्थन में प्रमाणों की एक माला बना दी गयी है, जिसमें ऋग्वेद से लेकर मनुस्मृति और मैत्रायणी उपनिषद् तक के प्रमाण इस माला की मणियाँ हैं। जहाँ-जहाँ उपासना का विषय है वहाँ- वहाँ अग्नि आदि शब्दों से ईश्वर का अभिप्राय है, अन्यत्र इन्हीं शब्दों से भौतिक पदार्थों का ग्रहण किया जा सकता है।

4. एक-एक शब्द के अनेक अर्थ किये गये हैं जैसे 'इन्द्र' का अर्थ परमात्मा, सूर्य, वायु, विद्वान्, राजा, जीवात्मा आदि प्रकरणानुसार ये सब अर्थ संगत होते हैं।

'यज्ञ' शब्द से धात्वर्थानुसार स्वामी जी ने विस्तृत अर्थ ग्रहण किया है। यज्ञ का 'अग्निहोत्र से अश्वमेध पर्यन्त' ही अर्थ ग्रहण नहीं किया, अपितु विद्वानों की पूजा, स्तुति, सांसारिक पदार्थों से उपयोग लेना यह भी यज्ञ का अर्थ ग्रहण किया है।

5. विशेषरूप से शतपथ, निरुक्त, निघण्टु, अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य के प्रमाणों से स्वामी जी का वेदभाष्य भरा पड़ा है।

6. वेद का संहितापाठ अपौरुषेय है। पदपाठ, मन्त्रों के ऋषि, देवता और छन्द जो वैदिक साहित्य में उल्लिखित हैं, वे पौरुषेय होने के कारण आवश्यकतानुसार परिवर्तित किये जा सकते हैं। फलतः कतिपय स्थलों पर शाकल्य से भिन्न पदपाठ, सर्वानुक्रमणी से भिन्न देवता और ऋषि भी स्वामी जी ने अपने भाष्य में प्रदर्शित किये हैं।

7. वाचकलुप्तोपमालंकार से अनेक मन्त्रों का भावार्थ स्पष्ट किया गया है। जैसे— उषा के समान स्त्री, मित्र के समान अध्यापक, वरुण के समान उपदेशक आदि।

8. कणाद,[10] मनु[11] और यास्क[12] ये तीनों आचार्य वेदार्थ को बुद्धिपूर्वक तथा तर्कयुक्त मानते हैं। कहना न होगा कि वेदों के देशी-विदेशी किसी भी भाषा में किये गये अनुवादों में कोई भी अनुवाद स्वामी जी के वेदभाष्य जैसा तर्क और प्रमाण से समन्वित नहीं है।

9. स्वामी जी के वेदभाष्य से वेदों में ब्रह्मविद्या, सृष्टिविद्या, भूगोलविद्या, खगोलविद्या, गणितविद्या, योगविद्या, मुक्तिविद्या, नौविमानादिविद्या, तारविद्या, आयुर्वेद विद्या, पुनर्जन्म, राजप्रजाधर्म, वर्णाश्रमविद्या, यज्ञविद्या, धनुर्विद्या, वाणिज्य-विद्या, कृषिविद्या आदि विषयों पर रोचक प्रकाश पड़ता है।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि वेदाविर्भाव के पश्चात् ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ही ऋषि-परम्परा अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रही है और इस परम्परा का पोषण महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य में पूर्णरूपेण किया गया है। जबकि प्रमुख वेदभाष्यकार आचार्य सायण ऋषि परम्परा को कहीं-कहीं संस्पृष्ट करते हुए विशेषतः मध्यकालीन यज्ञिय कर्मकाण्ड और समकालीन धार्मिक विश्वासों को पल्लवित करते हुए दिखाई देते हैं। पाश्चात्य विद्वान् तुलनात्मक भाषाविज्ञान, धर्म, दर्शन तथा पुरा कथाओं के आधार पर वेदों का तात्पर्यार्थ निर्धारित करते हैं। ऋषि-परम्परा का अविकल रूप से पालन और पोषण करने के कारण ऋषि दयानन्द की वेदंभाष्य-पद्धति सर्वथा प्रामाणिक कही जायेगी।

।। इत्यलमतिविस्तरेण विदांवरेषु।।

पादटिप्पणियाँ

1. वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (मनु. 2/6)
2. धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः (मनु. 2/13)
3. स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।। (निरु. 1/18)
4. अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः। धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः।। (मनु. 12/103)
5. साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत-धर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदञ्च वेदाङ्गानि च। (निरु. 1/20)
6. विल्सन-ऋग्वेद अनुवाद भाग 1, भूमिका पृ. 49-50।
7. विल्सन-ऋग्वेद अनुवाद भाग 2, भूमिका पृ. 24-26।
8. द्रष्टव्य-वेद और वेदार्थ (भट्टगोविन्द का ऋग्वेद भाष्य पृ. 195 से 201) ले. डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री।
9. विस्तार के लिए द्रष्टव्य-वेद और वेदार्थ (अनुच्छेद सप्तम-पाश्चात्य विद्वान् और वेदार्थ पृ. 49-52) ले. डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री।
10. बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे (वै. द. 6/1/1)
11. यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः (मनु. 12/106)
12. मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति। तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थ-चिन्ताभ्यूहम्। तस्माद्यदेव किञ्चानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद् भवति।। (निरु. 13/12)

❑

वेदों में नारी और सन्तति निर्माण

—डॉ० प्रियंवदा वेदभारती

समस्त प्राचीन भारतीय मनीषा एक स्वर से स्वीकार करती है कि पुरुषार्थ चतुष्टय के सम्यक् ज्ञान एवं अभिवृद्धि के लिए चार ऋषियों की ज्ञानगुहा में परमपिता परमात्मा ने चार वेदों का प्रकाश किया। ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण वेदों में जो भी विधि-निषेधात्मक संविधान उपलब्ध होता है वह सार्वकालिक है, सार्वभौम है, सकल जगत् के लिए कल्याणप्रद है। वेद तथा वैदिक ग्रन्थों में स्त्री-पुरुष में अधिष्ठित जो चैतन्यस्वरूप आत्मा है उसे शरीररूपी पुरी में निवास करने के कारण 'पुरुष' यह अन्वर्थ नाम दिया गया है। इस आत्मा का वैशिष्ट्य श्वेताश्वतरोपनिषद् में इस प्रकार वर्णित किया गया—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 5/10)

अर्थात् जीवात्मा शरीर रूप से न स्त्री है, न पुरुष है न नपुंसक। वह कर्मानुसार जिस-जिस शरीर को धारण करता है उसी लिंग वाला हो जाता है। जीवात्मा के इस वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पुरुष के आकार में स्थित जीवात्मा का जो महत्त्व है वही महत्त्व नारी के आकार में स्थित जीवात्मा का भी है।

वेद की दृष्टि में पुरुष और स्त्री, परिवार, समाज और राष्ट्ररूपी रथ के दो चक्र हैं, जिनमें से किसी एक के अभाव में या समता के अभाव में रथ का गतिमान् होना असम्भव है। तभी तो विवाह संस्कार के अवसर पर पढ़े जाने वाले मन्त्रों में कहा जाता है— **"द्यौरहं पृथिवी त्वं सामाहमस्मि ऋक् त्वम्"** पुरुष द्यौलोक है तो स्त्री पृथिवी है, पुरुष साम है तो स्त्री ऋक्। जैसे द्युलोक और पृथिवीलोक के सामञ्जस्य से सृष्टिगान होता है, जैसे— **"ऋच्यध्यूढं साम गीयते"** ऋग्वेद की ऋचाओं पर अध्यारूढ होकर सामगान किया जाता है वैसे ही पुरुष और स्त्री के सहभाव से सृष्टिगान होता है। पुरुष और नारी की शारीरिक संरचना में कुछ भेद होने के कारण गृह के कर्त्तव्यों का विभाजन तो वेद में अवश्य उपलब्ध होता है, किन्तु ऐसी कोई प्रगति, ऐसा कोई क्षेत्र जो पुरुष शरीर के लिए सुगम्य हो, प्राप्य हो, नारी शरीर के लिए बाधक या दुर्गम्य हो ऐसा निर्देश कहीं भी प्राप्त नहीं होता।

वेद की नारी न अशिक्षिता है, न अबला है, न दासी है, न केवल गृहिणी है, अपितु पुरुष के समान ही शिक्षा के समस्त अधिकारों को प्राप्त करने वाली है, आदर्श माता है, आदर्श गृहिणी है, देवी है, विदुषी है, प्रकाश से परिपूर्ण है, वीरांगना है, वीरों की जननी है, न्यायाधीश है, दुष्टों को प्रकम्पित करने वाली घोरा है, यज्ञ-विद्या एवं पुरुषार्थ चतुष्टय की मर्मज्ञ = चतुष्कपर्दा है, सार्पराज्ञी है, भूगर्भविद्यावित् है।

वीरांगना

वेदों की उदात्त निष्पक्ष विचारधारा में यदि नारी गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार क्षत्रिया है, सिंही है तो वीरिणी, वीरपत्नी, वीरसू बनकर संग्राम में जाये, विभिन्न शस्त्रों का संचालन करे, जेट विमान उड़ाये या बम वर्षा कर शत्रुओं को ध्वस्त करे। वैदिक नारी गर्जना करती है—

अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी
मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।

(ऋक्. 10/86/9)

ये तुच्छ मुझे कायर समझता है, इसे विदित नहीं कि मैं वीर की पत्नी तथा स्वयं वीरिणी हूँ। ये मरने-मारने वाले सैनिक मेरे सखा हैं। वेद की नारी आगे भी कहती है–

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।।

(ऋग्० 10/159/3)

मैं अकेली ही वीरांगना नहीं अपितु मेरे पुत्र शत्रुओं का वध कर देने वाले हैं, मेरी पुत्री भी विशेष रूप से तेजस्विनी है। मेरा पति पराक्रमशालिता में प्रसिद्ध है। महर्षि दयानन्द यजु. 16/44 के भावार्थ में लिखते हैं– "शूरवीर स्त्रियों की भी सेना होनी चाहिए। स्त्री भी युद्ध करे।"

विदुषी एवं प्रचारिका

गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मणी वेदपण्डिता, ज्ञान-विज्ञान का अधिगम करने वाली नारी को वेद के अनुसार अध्यापन एवं उपदेश का कार्य कर राष्ट्र की बौद्धिक उन्नति में योगदान देना चाहिए। इस विषय में स्थालीपुलाकन्यायेन वेद का एक मन्त्र ही पर्याप्त होगा–

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी
द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।।

(ऋग्० 1/164/41)

एक वेद, दो वेद या चारों वेदों का आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थवेद आदि उपवेदों सहित शिक्षा, कल्प, व्याकरणादि षडंगों सहित ज्ञान प्राप्त करके निर्मल बुद्धि वाली विदुषी स्त्रियाँ निर्मल जल के समान शुद्ध वचन बोलती हुई विस्तृत ज्ञानरूपी आकाश में अनेक विद्याओं का प्रचार करें। (दयानन्दभाष्यम्)

धर्मार्थकाममोक्षवित्

वेदों के अनुसार नारी केवल धर्म, अर्थ, काम को ही नहीं मोक्ष सहित पुरुषार्थ चतुष्टय को जानने वाली है तथा प्राप्त करने वाली है।[1] दूसरे शब्दों में कहा जाये तो नारी चतुर्वर्ग की प्राप्ति का साधन है। यज्ञ, व्रत, अनुष्ठान, पूजा-पाठ आदि के द्वारा वह धर्मसंग्रह करती है। पति को आय के नवीन साधन बताकर या स्वयं सहयोग कर अर्थ की प्राप्ति कराती है। पति की इच्छाओं की पूर्ति के द्वारा वह काम को सिद्ध करती है और मोक्ष के आधारभूत सत्त्वगुण, त्याग, तपस्या और आस्तिकता को पति में भी समाविष्ट करके मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करती है।

'नारी मोक्ष की अधिकारिणी नहीं', 'मोक्ष की प्राप्ति के लिए नारी का पुरुष शरीर में जन्म लेना अनिवार्य है' आदि अवैदिक मान्यताओं का वैदिक विद्वानों ने तो खण्डन किया ही है, बुद्ध, महावीर ने भी इन पर प्रबल प्रहार किया है। बुद्ध की अपेक्षा महावीर का दृष्टिकोण नारियों के प्रति उदार है। वे दृढ़ता से कहते हैं– **"अस्ति स्त्रीनिर्वाणं पुंवत्।"**

सम्राज्ञी-न्यायाधीश

"सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव (ऋग् 10/85/46) आदि मन्त्रों में जहाँ परिवार या कुटुम्ब में नारी के सम्राज्ञी रूप का उल्लेख हुआ है वहीं समाज के सामूहिक कार्यों में, न्यायालय में, राज्य की शासिका, सम्राज्ञी आदि के रूप में भी नारी का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है।

स्योनाऽसि सुषदाऽसि क्षत्रस्य योनिरसि।
स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद।।

(यजु. 10/26)

यजुर्वेदीय यह मन्त्र कहता है कि राजाओं की स्त्रियाँ न्यायविद्या एवं राजनीति की शिक्षा दूसरों को दें। जिस प्रकार राजा न्याय करे उसी प्रकार राजपत्नी भी स्त्रियों का न्याय यथोचित करें।

भूगर्भविद्यावित्

महर्षि दयानन्द अनेक वेदमन्त्रों[2] के भावार्थ में लिखते हैं कि नारियाँ भूगर्भादि विद्या को जानने वाली बनें। मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकाओं में एक ऋषिका को सार्पराज्ञी की उपाधि प्राप्त है। **"इमे वै लोका: सर्पा:"** ये लोक लोकान्तर निरन्तर सर्पणशील रहने के कारण (सर्प) कहलाते हैं, ज्ञान के द्वारा इन पर आधिपत्य स्थापित करने वाली नारी सार्पराज्ञी हुई। सार्पराज्ञी ऋषिका के द्वारा 'आयं गौ: पृश्निरक्रमीत्'...... आदि भूगोल-खगोल सम्बन्धी सूक्तों का तत्त्व दर्शन किया गया है।

ज्योतिर्वित्

यजु. 30/15 के भावार्थ में ऋषिवर लिखते हैं कि बारह युगों में संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर इन पाँच प्रकार के कालावयवों का तथा प्रभव आदि 60 मूल संवत्सरों का स्त्री-वर्ग को यथावत् ज्ञान होना चाहिए।

चिकित्सिका

नारी का चिकित्सिका रूप इस मन्त्र में अभिलषित है–

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुह:।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत।।

(यजु. 12/76)

अर्थ– हे चिकित्सिका माँ! मुझे नीरोग कर दो।

इस प्रकार विस्तार में न जाकर संक्षेप में कहा जाये तो वेदों में नारियों का शिक्षाक्षेत्र सुविस्तृत है। वेदों के अनुसार स्त्रियाँ न केवल पठन-पाठन के कार्य में अपितु शिल्पकला, न्यायाधिकार, सभा-समिति, प्रशासन, युद्ध, चिकित्सा, गृहकला तथा आयुर्विज्ञान इत्यादि विभिन्न विद्याओं में सक्षम होकर राष्ट्रभृत् यज्ञ की होत्री, उद्गात्री अध्वर्यु और ब्रह्मा बन सकती हैं। वेदों में वर्णित नारी के इस उज्ज्वल रूप को देखकर यह निस्सन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि वेद के अतिरिक्त साहित्य में या स्मृतियों में यदि कहीं नारी के विषय में हीन वचन मिलते हैं तो वे प्रक्षिप्त हैं या अपने समय की स्थिति के सूचक हैं, वे प्रमाण के योग्य नहीं।

"वेदों में नारी को हीन दृष्टि से देखा गया है या वैदिक आर्यों को कन्या का जन्म अभीष्ट नहीं था" ऐसा मानने वाले लोग अपने मत की पुष्टि में जिन दो मन्त्रों का विशेषत: उल्लेख करते हैं उनका वास्तविक अर्थ भी यहाँ उद्घाटित करना समुचित होगा–

1. "स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह

(अथर्व. 6/11/3)

उनकी दृष्टि में मन्त्र का अर्थ है 'स्त्री का जन्म अन्यत्र कहीं हो इस गर्भ से तो पुरुष सन्तान ही हो।' सब जानते हैं आयुर्वेद का मूल अथर्ववेद है। जिस सूक्त का यह मन्त्र है उसमें मात्र तीन मन्त्र हैं। जिस स्त्री के गर्भ से कन्याएँ ही उत्पन्न होती हैं इसमें उसकी चिकित्सा का वर्णन है। शमी वृक्ष पर उगे पीपल की जड़, छाल, पत्र आदि के समुचित प्रयोग से स्त्री का यह दोष दूर हो सकता है। इस प्रयोग से वह नारी पुत्र प्रसव करे, कन्या का जन्म वहाँ हो जहाँ कन्या अपेक्षित है। इस कथन से कन्या की अवाञ्छनीयता सिद्ध नहीं होती। इसी प्रकार दूसरा मन्त्र है–

2.'पिंग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्।'

(अथर्व. 8/6/15)

यह मन्त्र गर्भ-रक्षा प्रकरण का है। इसका अर्थ ये लोग करते हैं– "कि हे पिंग ओषधि? उत्पन्न होने वाले पुत्र की रक्षा करो, उसे स्त्री न बनाओ", जबकि इसका वास्तविक अर्थ है– (पिंग! रक्ष जायमानं पुमांसं स्त्रियम्। मा क्रन्) "हे पिंग ओषधे! तू उत्पन्न होने वाले गर्भस्थ शिशु की रक्षा कर, शिशु चाहे पुरुष हो या स्त्री, रोग कृमियों से वह पीड़ित न हो।" सायणाचार्य के अनुसार पिंग सफेद सरसों है। गर्भस्थ पुरुष को हे पिंग! स्त्री मत बना, यह अर्थ संगत भी नहीं होता, क्योंकि गर्भ में यदि

पुंशरीर का निर्माण हो चुका है तो उसे ओषधि आदि के माध्यम से स्त्री शरीर बनाना असम्भव है।

सन्तति निर्माण

गृहस्थ जीवन की उत्तम परिणति सुसंस्कृत सुयोग्य सन्तति के निर्माण में है। राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार चाहे– **दशास्यां पुत्रानाधेहि** (ऋग्. 10/85/45) दस पुत्रों की बात हो, चाहे– **पुमान् पुत्रो जायते** (यजु. 8/5) एक पुत्र की बात, दोनों ही परिस्थितियों में सुयोग्यता की प्राथमिकता है। पुत्र-पुत्री कैसे हों? इस विषय में वेद का कथन है– दुष्टदलनकर्त्ता, उत्तम नीति एवं वाणी के ज्ञाता, सभी ऐश्वर्यों के आश्रय, दानी, प्रशंसनीय, कष्टनिवारक, सुखवर्षी, दिग्-दिगन्तव्यापी यशवाले अद्भुत पुत्र एवं पुत्रियां हों।[3] वेद का यह भी आदेश है– **जनया दैव्यं जनम्** (ऋग्वेद 10/53/6) मनुष्य! तू दिव्य सन्तान उत्पन्न कर। वेदों के इसी संकेत का गृह्यसूत्रों में विस्तार से वर्णन है। महर्षियों ने निषेक से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त 16 संस्कार मनुष्य की आत्मा और शरीर की विशुद्धि के लिए निर्धारित किये हैं। इन सभी सोलह संस्कारों का संकेत वेदों में प्राप्त होता है।

सोलह संस्कारों के अतिरिक्त बृहदारण्यकोपनिषद् के षष्ठ अध्याय के तृतीय प्रपाठक में आया "मन्थरहस्यम्" प्रकरण भी इस सम्बन्ध में विशेष ध्यातव्य है। सन्तान को दिव्यता से सुसंस्कारित करने के लिए सर्वप्रथम माता-पिता का सुसंस्कृत होना अति आवश्यक है। तभी तो वेद ने आदेश दिया–

विवस्वन्नादित्यैष ते
सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व।
श्रदस्मै नरो वचसे दधातन
यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा
विश्वाहारपऽएधते गृहे।।

(यजु. 8/5)

हे सूर्य के समान तेजस्वी गृहस्थियो। तुम्हारा घर सोमपान करने योग्य शुद्ध, पवित्र, प्रभुभक्तों से परिपूर्ण हो, उसमें तुम सदैव सत्यवाणी का व्यवहार करते हुए प्रसन्न रहो, पति-पत्नी दोनों सुन्दरता से धर्म का पालन करो, तब तुम्हारे घर में इच्छाओं को पूर्ण करने वाली, धार्मिक, दिव्य, पुरुषार्थी सन्तति उत्पन्न होगी।

बालकों के निर्माण में यद्यपि माता-पिता दोनों का समान महत्त्व है पुनरपि गर्भ में नौ मास धारण करने के कारण तथा शैशवावस्था माता के ही सान्निध्य में व्यतीत होने के कारण **"नार्यो मूलमपत्यानाम्"** कहकर नारियों को सन्तान का मूल बताया गया है। मनु ने यह कहकर इसको और सुस्पष्ट किया–

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात् प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत् प्रयत्नतः।।

(मनु. 9/9)

अर्थात् स्त्री जैसे पति का सेवन करती है उसी प्रकार की सन्तान को उत्पन्न करती है। इसलिए सन्तान की शुद्धि के लिए प्रयत्नपूर्वक स्त्री की कुसंग से रक्षा करें। इस प्रकार जहाँ वेदों में नारियों की चर्चा विस्तार से आयी है वहीं सन्तति निर्माण के सभी मूल बिन्दु भी वेदों में विद्यमान हैं।

पाद टिप्पणियाँ

1. चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते। तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम्।। (ऋग्० 10/114/3)
2. सरस्वति देवनिदो निबर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः। उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति।। (ऋग्० 6/61/3 आदि)
3. स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्। चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः।। (ऋग्. 10/47/2)

❑❑

एक अशेष व्यक्तित्त्व : दयानन्द

—ऋतम्भरा शास्त्री

उपाचार्या आर्ष कन्या गुरुकुल नजीबाबाद

'महर्षि दयानन्द सरस्वती' पता नहीं इस नाम में ऐसा क्या है कि उसका स्मरण करते ही एक पूरा युग याद आ जाता है। वह युग जिस युग में विश्व के मानचित्र पर भारत डूबता सितारा सा दिख रहा था। जिस युग में वेदशास्त्र, धर्म एक वर्ग की बपौती बनकर रह गये थे। उन्हें पढ़े बिना ही भोली- भाली जनता को लोग धर्म के नाम पर बहकाते रहते थे। वह युग जिस युग में लोग अपना, अपनी जाति का, अपने देश का गौरव भूल चुके थे। वह युग जिस युग में बेसहारा बनी नारी जाति की पुकार को सुनने वाला कोई न था। गौयें अपने आश्रय की चाह में इधर-उधर भटक रही थीं, पर आश्रयदाता कोई न था। दलित बन्धु अपने भाइयों से बिछुड़कर गैर बनते जा रहे थे पर उन्हें गले लगाने वाला कोई न था। देश में सर्वत्र त्राहि माम्-त्राहि माम् का आर्त्तनाद सुनायी पड़ रहा था। इतिहास की दृष्टि से भारत का यह समय पतन काल का था। कहते हैं ऐसे ही समय में महापुरुषों का अवतरण होता है। कदाचित् **'सम्भवामि युगे युगे'** की वास्तविकता यही हो। ऐसे संकट काल में धर्म की स्थापना के लिए एक महापुरुष को तो आना ही था। उस सर्वगुणसम्पन्न व्यक्तित्व की सृष्टि के लिए परमात्मा भी सोच में पड़ गया। उसने आकाश की व्यापकता, बिजली की चमक, चाँद की मुस्कान, सूर्य का तेज, समुद्र की गहराई, पर्वत की ऊँचाई अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि से सार लेकर जो रचना की, वह अप्रतिम थी, अपूर्व थी, वह विधाता की इस सृष्टि की सर्वोत्तम कृति थी। उसका नाम था— दयानन्द।

दयानन्द के आगमन से सारी धरती में हलचल मच गयी। उसने जिधर भी दृष्टि डाली उधर ही क्रान्ति कर डाली। समाज का कोई भी क्षेत्र उससे अछूता न रहा। उसने मानव-मात्र को कल्याण का रास्ता दिखाया। व्यष्टि-समष्टि, विश्व, स्वदेश, तर्क—श्रद्धा, भौतिक-आध्यात्मिक आदि क्षेत्रों में 'समन्वयवाद' की जो दिशा दिखायी वह अभी भी हमारी पहुँच से दूर है। साम्यवाद पूँजीवाद पर माथापच्ची करते करते उन्हें अपनाते-अपनाते विश्व के देश परेशान हो गये पर हमारे महर्षि ने अपरिग्रह की जिस उदात्त भावना का विस्तार किया वह बलात् आरोपित न थी, सहज थी। महर्षि ने 19वीं सदी में ही उन समस्याओं का समाधान किया, जिनका तब दूर-दूर तक भी अता-पता न था लेकिन आज उन समस्याओं ने विकराल रूप धारण किया हुआ है। उन्होंने अध्यात्म, योग, देश, समाज, धर्म, राजनीति, शिक्षा, संस्कृति सभी पहलुओं पर गहन चिन्तन और मनन किया एवं समाज को नयी दिशा दी। उन्होंने कांग्रेस की स्थापना से 10 वर्ष पूर्व ही आर्य समाज की स्थापना के रूप में धार्मिक जगत् को अनुपम भेंट दी। देश पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। राजनीति के क्षेत्र में स्वदेशाभिमान को जागृत करना महर्षि दयानन्द की सूझ थी।

आज हम एक लोकतन्त्र देश के निवासी होकर लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था की प्रशंसा करते नहीं चूकते। माना कि इस व्यवस्था में कुछ अच्छाई अवश्य है पर यदि इसके बावजूद भी हमारा देश चारित्रिक, राजनीतिक, भौतिक उन्नति में असफल रहा है तो निस्सन्देह इसमें लोकतन्त्र भी कारण माना जायेगा। महर्षि ने अपनी अद्भुत दूरदर्शिता से स्वतन्त्रता के पश्चात् आने वाली इस समस्या का समाधान व्यवस्था रूप में बताकर किया था। उन्होंने राज्य को चलाने में तीन सभाओं की व्यवस्था दी। विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा और राजार्यसभा नामक इन तीन सभाओं में सदाचारी, धार्मिक विद्वान् व्यक्तियों को ही

सदस्य बनाने का अधिकार दिया और राजवर्ग की पूर्ण स्वतन्त्रता में हानि देखते हुए महर्षि ने यह भी निर्णय दिया कि राजा— जो सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के अधीन रहे। नहीं तो **"राष्ट्रमेव विश्याहन्ति।"** इसलिए एक को राज्य में स्वाधीन नहीं करना चाहिए। महर्षि ने सभी मनुष्यों को धार्मिक होने की बात कही है। वे कहते हैं कि धार्मिकता से ही राज्य की उन्नति होती है जब मनुष्य दुराचारी होते हैं तब सब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। इस प्रकार महर्षि ने जिस राजनीति की बात कही वह राजनीति नहीं राजधर्म था। उससे राजा तथा प्रजा, देश सभी का कल्याण निश्चित था। आज की स्थिति में हमारा देश पतन की किस सीमा तक पहुँचेगा कहा नहीं जा सकता। महर्षि जानते थे कि विद्वान् बनना जितना कठिन है, धार्मिक होना उतना ही सरल है। उस समय धर्म के नाम पर देश में बचा ही क्या था? भोली-भाली जनता को ठगना, जन्त्र, मन्त्र, माला, जप, टोना, छाया, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, भूत-प्रेत, डाकिनी, पिशाचिनी का मायाजाल, विधवा-विवाह निषेध, सतीप्रथा देवदासी प्रथा आदि कर्म ही धर्म के अंग बने हुए थे। और इनसे त्रस्त लोग ईसाई मुसलमान बनते जा रहे थे। धर्म के अभाव में मानव अपनी मानवता भी खो रहा था। महर्षि जानते थे कि धर्म के बिना मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं इसलिए सबसे पहले मनुष्य के विचारों को, धर्म को शुद्ध रूप देना होगा। उन्होंने धर्म के मायावी जाल पर ऐसा तीर चलाया कि सब कुछ छिन्न भिन्न हो गया और धर्म का वास्तविक रूप साफ दिखने लगा। 'व्यवहारभानु' से अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' तक कालजयी ग्रन्थों की रचना कर क्रान्ति मचा दीं। उन्होंने ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि के सम्बन्ध में जो भ्रान्त धारणाएँ चल रही थीं, जो लोग कपिल, जैमिनि आदि महर्षियों को जैन चार्वाक बौद्धों की तरह नास्तिक बताकर अपने बराबर खड़ाकर भारतीय जन-मानस में प्रवेश करना चाहते थे, जो लोग भारतीयों को नीचा दिखाकर इस पावन भूमि को मक्का, मदीना या येरूशलम बनाने पर तुले थे वे सभी महर्षि की हुंकार पर घबरा गये और अपना-अपना रास्ता ढूँढने लगे। पर महर्षि के इस व्यूह से कोई भी निकल कर भाग न सका। महर्षि ने सभी को जोरदार जवाब दिया। उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा से षड्दर्शनकारों को त्रैतवाद का, आस्तिकवाद का प्रतिपादक बताकर सभी वादों का मुँह तोड़ दिया। उन्होंने शुद्धि मार्ग बताकर भटक रही आर्य जाति को बचा लिया। एक षड्यन्त्र के तहत आज भी भारत में विधर्मी बनाये जा रहे हैं। हमें समाज में फैले इन नागफनी के काँटों को निकालना होगा, नहीं तो ये लोग भारत की धार्मिक भूमि को ऊसर कर देंगे।

धर्म की भाँति शिक्षा जगत् को भी महर्षि ने अपनी विशिष्ट ऊहा से उपकृत किया। आज संचार माध्यमों के द्वारा सबके लिए शिक्षा अनिवार्य बतायी जा रही है जिसका प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में कम ही हो पाया है। महर्षि ने शिक्षा को अनिवार्य बताते हुए राजनियम, जातिनियम बनाकर दण्डित करने की भी बात कही। इतना ही नहीं छात्रों में समानता की बात करते हुए उन्होंने सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान आसन देने की बात कही। चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो चाहे दरिद्र की सन्तान हो। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि ने प्राचीन शिक्षा पद्धति का विस्तार से वर्णन किया है। वह प्राचीन शिक्षा जिसका ध्येय महान् था वह गूढ़ थी, रहस्यों से भरी हुई थी। मात्र आध्यात्मिक ही नहीं जीवन की वास्तविकता और व्यावहारिकता से भी जुड़ी थी। उसकी तुलना में आज की शिक्षा मात्र भौतिकता का उद्देश्य बनकर ही रह गयी है फलतः मनुष्यों का चारित्रिक विकास रुक गया है, इसलिए महर्षि द्वारा प्रतिपादित उस प्राचीन शिक्षा प्रणाली को अपनाना अति आवश्यक है।

अब हम चलते हैं समाज की ओर। देखें महर्षि के सपनों में कौन सा समाज उन्नत था? हाँ तो विभिन्न अंग मिलकर जिस प्रकार शरीर को पूर्णता प्रदान करते हैं, जिस प्रकार विभिन्न लोग मिलकर परिवार का निर्माण

करते हैं। उसी प्रकार समाज के निर्माण के लिए विभिन्न वर्गों की आवश्यकता होती है। महर्षि ने व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, देश तथा विश्व सभी को एक सूत्र में पिरोने की बात कही। समाज में बढ़ रही जाति व्यवस्था को तोड़कर सहज स्वाभाविक वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन किया। आज कतिपय तथाकथित बुद्धिजीवी लोग इस व्यवस्था पर मनुवाद का मुलम्मा चढ़ाकर महर्षि मनु को बदनाम करते हैं पर वे नहीं जानते कि अपनी पिछड़ी मानसिकता के कारण वे चाहकर भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। वस्तुतः ये व्यवस्था मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव पर ही आधारित है। इसी में समाज की राष्ट्र की सर्वाधिक उन्नति निहित है।

नारियों के लिए तो जैसे महर्षि देवदूत बनकर आये थे। उन्होंने तत्कालीन अहंमन्य पण्डितम्मन्य दम्भी पुरुष समाज के शिकंजे में फँसी नारी जाति को जबर्दस्ती बाहर निकाल खुली हवा में सांस लेने का अधिकार दिलाया। उसे उसके समस्त अधिकार प्रदान किये। उसे ब्रह्मचर्य तथा विद्या-ग्रहण करने का भी अधिकार दिलाया। यह महर्षि का ही प्रताप है कि आज नारी जाति विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है नारी जाति को यह देन महर्षि कर्वे या विवेकानन्द से नहीं मिली यह तो उस फरिश्ते दयानन्द की थी। इसके लिए नारी जाति युगों-युगों तक उनकी ऋणी रहेगी।

इस प्रकार महर्षि के जीवन सागर से मोती कहाँ कहाँ से बटोरूँ? समझ नहीं पा रही हूँ वह तो एक तीर्थ है उसमें जितनी डुबकी लगायेंगे उतने ही पवित्र हो जायेंगे, हमें उतने ही मोती मिल जायेंगे। वह तो हिमालय की भाँति धीर गम्भीर है शान्त है जिसके लिए ये बाधाएँ ये विघ्न कुछ भी नहीं थे। उसने फूलों की तरह उनको सहा और स्वयं रास्ता बनाकर मानवता को नया पथ दिखाया। रास्ते के इन पत्थरों को कंकड़ों को उसने कभी बाधा नहीं माना। हिमालय की गोद में तो ये सभी कुछ होता ही है। उसने अपनी गोद में पड़े विघटनकारियों के पत्थरों को एक तरफ लगाकर बीच से धारा बहायी। जिस धारा में उसे निर्मल शान्ति मिली और जन-जन को भी शान्ति मिली। उसके उस व्यक्तित्व को जिस रूप में भी देखो वह पूर्ण मिलेगा। वह आँधी था, पत्थर था, शोला था, वह कण-कण में व्यापक परमात्मा की सृष्टि का अनोखा तत्त्व था जिसे आज तक भी संसार पूर्णतया न जान सका। उस अशेष व्यक्तित्व को देखकर सभी अचकचा गये! सच!

जलते कितने दीप बुझ गये,
चलते सूरज चाँद रुक गये।
तुमने दिया जलाया ऐसा,
आँधी जिसको शीश नवाये।।

❑

शत-शत प्रणाम

हे तुंग-हिमालय-शृंग-तुल्य उज्ज्वल महान्!
गम्भीर परम पावन चरित्र गंगा समान
हे ब्रह्मचर्य साकार दिव्य जीवन अनूप!
पाखण्ड दम्भ के लिए उग्र विद्रोह रूप
हे दया, अहिंसा, सत्य न्याय के चमत्कार
हे अबला, दीन, अनाथ, दलित के चीत्कार
हे रत्नाकर से शान्त, बिजलियों से विह्वल
हे प्रखर तेज में सूर्य चन्द्रमा से शीतल
निर्भीक तपस्वी परिव्राट् कौपीनधारी
आचार्य सुचिन्तक हे दय.नन्द ब्रह्मचारी
हे जगहित निज जीवन अर्पित करने वाले
विष पी-पी कर भी पर पीड़ा हरने वाले
हे तेजस्वी, क्रान्तदर्शी हे सत्यकाम!
युग पुरुष हमारा शत-शत है तुमको प्रणाम!

प्रस्तुति— ब्र० सुष्मिता
किरतपुर (बिजनौर)

कवितात्रयी

सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे

पूस की कई रातों के बाद,
आज घर के आंगन में धूप खिली है।
आज ही सब कामों से छुट्टी मिली है।
बहुत दिनों के बाद गौरेया के बच्चे,
आँगन में दाने चुग रहे हैं।
कुछ खरगोश लॉन में ओस चूस रहे हैं,
हम भी गुनगुनी धूप का आनन्द ले रहे थे।
कुछ बच्चे आंगन में यूं ही खेल रहे थे।
कि मैंने छोटी बालिका से
अखबार लाने को कहा,
वह नादान अनजान
तुरन्त प्रश्न हुआ,
अखबार किसे कहते हैं
शब्द और अर्थ का
अर्थात्
अखबार और अखबार नाम की वस्तु का
जब मैंने उसे बोध कराया
तो उसने अपने इस ज्ञान को
कई बार दोहराया।
वहीं बैठी दूसरी बालिका जब मुझसे पूछने लगी–
स्वतन्त्रता का क्या अर्थ है?
तब मुझे लगा शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का
मेरा ज्ञान कितना व्यर्थ है?
मैं ही क्यों? "सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे" का सिद्धान्त
बताने वाले पतञ्जलि भी मौन हैं।
क्योंकि आज के युग में किसका कौन है?
शब्द यदि अर्थ का कवच है, ढाल है,
तो समझ लीजिए उस पर चल चुकी तलवार है।
अब भाषा, संस्कृति, सभ्यता, स्वदेश, स्वाभिमान
सभी शब्द अर्थ से हट चुके हैं।
और इसीलिये हर क्षेत्र में हम चूक चुके हैं।
यह मात्र व्याकरण नहीं,
हमारे जीवन का दर्शन होना चाहिये।
शब्द और अर्थ की नित्यता का चिन्तन
और व्यवहार ही हमारा मन्तव्य होना चाहिये।
नहीं तो महर्षि के श्राप से श्रापित हो जायेंगे हम
क्योंकि अपनी सार्थकता खो देगी
महर्षि की वाणी– **सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे।।**

कुमार्य्लृतक इत्याह

सृष्टि के तीन अनादि तत्त्व
ईश्वर, जीव और प्रकृति।
आनन्द, चित् और सत्य
जीव प्रकृति के अधीन है
इसलिये परमात्मा के ज्ञान में
सारी दुनियां पराधीन है।
यह मोहिनी प्रकृति
जिसमें शक्ति की कमी है।
सभी उसके दास हैं
इसीलिये दुनियां में सभी उदास हैं।
यह ईश्वर भी कैसा है?
भोग के साधन देकर उससे हटने को कहता है!
सृष्टि के दो कोमल तत्त्व, प्रकृति और नारी
इनसे सारी दुनियां हारी।
नारी की सुन्दरता पर यदि विश्वामित्र रीझ गये,
तो बालिका की कोमलता पर पाणिनि भी रीझ गये।
अचों में लृ का निषेध करते–करते
जब पतञ्जलि महर्षि खीझ गये
तो उन्हें भी सामने लृतक बोलती
एक बालिका भा गयी।
वह अपने बचपन से पतञ्जलि को भी लुभा गयी।
और अचों में लृ पढ़ने का एक मात्र प्रयोजन बन गया
कुमार्य्लृतक इत्याह।
विवश हो गये महर्षि बालिका के आगे,
जबकि लृतक बोलते हुये सामने ही न जाने,
कितने बालक भागे।
पर नहीं बनाया उदाहरण – कुमार लृतक इत्याह।
'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः'
की प्रतिज्ञा करने वाले महर्षि भी,
प्रकृति के कितने अधीन हैं?
इसीलिये आत्मा–परमात्मा के ज्ञान में
नेति–नेति कहकर सब पराधीन हैं।

❖❖❖

कुन्तीपुत्र कर्ण

मौन सदा मौन
आन्तरिक कलह
दुर्योधन की जगह
करने चले फतह
पाया सभी कुछ
धन, सत्ता, सन्तान
पा नहीं सके तुम
कभी वरदान
तुमसे ही छिपी रही
रहस्यात्मक जिन्दगी तुम्हारी
सदा चरण चूमती रहीं
विषमताएं तुम्हारी
सत्य से अनजान तुमने
जीवन को हर तरह खेला
एक सच्चे खिलाड़ी की तरह
हार जीत चोट सब कुछ झेला
सूतपुत्र सारथि पुत्र
हर घाव सहते रहे
भाग्य के मस्तक पर पैर रख
भाग्य को कुचलते रहे
विवशताओं का लाभ
सभी को मिला
ब्राह्मण की गो–हत्या
इन्द्र को कवच दान
द्रोण की अनधिकृत शिक्षा
सभी ने मिलकर शापों के पाश में
अच्छी तरह कस लिया
और हां विस्मृति के शाप से
अभिशप्त कर्ण! क्या तुम्हें याद है
तुम्हारे और परशुराम के बीच
दूरी पैदा करता वह कीड़ा
कैसा कर रहा था नियति से क्रीडा
तुम काल की क्रूर लीला को
चुपचाप सहन करते जा रहे थे
तेरे गरम लहू से कुछ
अपशकुन के अन्देशे होते जा रहे थे
आखिर नींद खुली परशुराम की
सारी कहानी जान ली तुझ अज्ञान की
जीवन भर की चाह को
एक क्षण में नष्ट कर दिया
काल के प्रहार ने
सब कुछ ध्वस्त कर दिया
ऐ सूर्य पुत्र! हे कौन्तेय!
कितने रहस्य ओढ़े तेरे जीवन ने
जीते जी तुम कह नहीं पाये
अपनी करुण कथा
इसीलिये शान्त पड़ी हैं
जब सबकी चितायें
मरघट से उठकर चल पड़े
तुम लिखने अपनी व्यथा

—उपाचार्या ऋतम्भरा शास्त्री की लेखनी से......

❑❑

वेदानां वैशिष्ट्यम्

—ब्र० प्रतिज्ञा, लखनऊ
शास्त्री प्रथम वर्ष

सृष्टेरादौ परमकारुणिकेन परमात्मना वेदाः प्रदत्ताः। अग्नेर्ऋग्वेदो, वायोर्यजुर्वेदः, सूर्यात् सामवेद, अंगिरसश्च अथर्ववेदः आविर्भूताः। वेदानामुपवेदाः ब्राह्मणानि चापि वर्तन्ते। ऋग्वेदस्य—आयुर्वेद उपवेदः ऐतरेयञ्च ब्राह्मणम्। यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेदः शतपथञ्च ब्राह्मणम्। सामवेदस्य – गान्धर्ववेद उपवेदः साम च ब्राह्मणम्। अथर्ववेदस्य – अर्थवेद उपवेदः गोपथञ्च ब्राह्मणम्।

वेदशब्दः विद ज्ञाने, विद्लृ लाभे, विद विचारणे, विद सत्तायाम् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः करणाधिकरणयो—र्घञ्प्रत्यये कृते सिद्ध्यति। एतेषामध्ययनेन वयं विशेषप्रकारकं ज्ञानं प्राप्नुमः विद्वत्तां प्राप्नुमः सत्यासत्ययोश्च निर्णयं कर्तुं शक्नुमः। वेदातिरिक्तेषु अन्येषु शास्त्रेषु तथा सर्वप्रकारकं ज्ञानं न प्राप्यते यथा वेदेषु। वेदानामेका संज्ञा श्रुतिरपि वर्तते यतोहि प्राचीनकाले वेदज्ञाः ब्राह्मणाः श्रवणपरम्परयैव एतान् संररक्षुः।

ये जनाः प्राक्तनानि शास्त्राणि अवधानेन नाधीयते ते कथयन्ति चत्वारो वेदाः एव वेदसंज्ञया कथमुच्यन्ते, पुराणब्राह्मणादयो ग्रन्थाः कथं न वेदाः? एतस्योत्तरम् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां महर्षिदयानन्दः इत्थं ददौ— पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वेदव्याख्याना—दृषिभिरुक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वान्मनुष्यबुद्धिविरचित—त्वाच्चेति। अतो ब्राह्मणादयो न साक्षाद् वेदाः अपितु वेदस्य व्याख्यानभूता एव ग्रन्था मन्तव्याः।

वेदाः सर्वविद्यानामाकरभूताः ग्रन्थाः। एतेभ्यः एव सर्वाः विद्याः आविर्भूताः। वेदेषु – कृषिविद्या, क्षात्रविद्या, ब्राह्मविद्या, भूगर्भविद्या, अन्तरिक्षविद्या, ऋतुविद्या, रसायनविद्या, वनस्पतिविद्या, ज्योतिषविद्या, गणितविद्या, चिकित्साविद्याप्रभृतयः सर्वा अपि विद्याः प्राप्यन्ते।

वेदानधिकृत्य तैत्तिरीय ब्राह्मणे कथैका श्रूयते—भारद्वाजऋषिः ब्रह्मचर्यं धारयित्वा त्रिवर्षशतं वेदाध्ययनं चकार। वेदाध्ययने रतं जीर्णं स्थविरं पलितं शयानं भारद्वाजं दृष्ट्वा इन्द्र उपव्रज्य उवाच—भारद्वाज! यदि ते चतुर्थमायुर्दद्याम् किमनेन कुर्याः? ब्रह्मचर्यमेव एनेन चरेयमिति भरद्वाजः प्रोवाच। वेदैकनिष्ठाय तस्मै भारद्वाजाय इन्द्रः त्रीन् गिरिरूपान् अविज्ञातानिव दर्शयाञ्चकार। तेषां ह एकैकस्मात् मुष्टिमाददे, स होवाच भारद्वाज! वेदा वा एते "अनन्ता वै वेदाः"। इन्द्रवाक्यस्यास्य तात्पर्यमिदम्—भारद्वाज! त्वया अद्य यावद् यद् वेदाध्ययनं कृतं तत् मुष्टि— मात्रमेव विद्धि, वेदास्तु पर्वतसदृशाः अनन्ताः इति। कथानकमिदं वेदानामानन्त्यद्योतनाय अलम्। वेदानां सर्वज्ञानमयत्वमानन्त्यञ्च वीक्ष्यैव सर्वेऽपि महर्षयो मुक्तकण्ठं वेदान् प्रशशंसुः। महर्षिव्यासेनोक्तम्—

वेदा मे परमं चक्षुः, वेदा मे परमं बलम्।
वेदा मे परमं धाम, वेदा मे ब्रह्म चोत्तमम्।।

महर्षिमनुना उक्तम्—

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" इति। (मनु० २/६)

मनुरिदमपि निर्दिदेश—

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। (२/१३)

सर्वं ज्ञानं वेदादेव निःसृतमिति वर्णयन् महर्षिमनुः सुस्पष्टं प्रोवाच—

न वेदशास्त्रादन्यत्तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते।
निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात् सनातनात्।।

नैतावदेव, राज्यसञ्चालनेऽपि वेदज्ञानमावश्यकं येन सर्वं राज्यं सुरक्षितं, सुव्यवस्थितं चलेत्। मनुर्ब्रवीति –

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति।। (१२/१००)

वेदज्ञ एवं श्रेष्ठं सेनापत्यं राज्यं दण्डनेतृत्वं सर्वलोकाधिपत्यञ्च कर्त्तुमर्हति। अद्य अस्मद्देशीयाः नेतारः वेदान्नाधीयते न वा जानन्ति ते वेदेषु प्रोक्तानि राज्यसञ्चालनस्य मूलतत्वानि अत एव अस्य देशस्य शोचनीया दशा संवृता। वेदानामुपयोगित्वमस्मदीये व्यावहारिके, पारिवारिके, सामाजिके जीवने चापि पर्याप्तं परिलक्ष्यते। वेदज्ञानं विना अस्माकं न कुत्रापि साधीयसी गतिः। आतश्चैव अस्माकं सर्वैरपि पूर्वजैः वेदाध्ययनमनिवार्यरूपेणादिष्टम्। यदि वयं लौकिकीं पारलौकिकीञ्चोन्नतिं कामयामहे तर्हि वेदानामध्ययनं नूनमेव विधेयम्।

❑❑

वेदेषु द्वे विद्ये वर्त्तेते, अपरा परा चेति। तत्र यया पृथिवीतृणमारभ्य प्रकृतिपर्यन्तानां पदार्थानां ज्ञानेन यथावदुपकारग्रहणं क्रियते सा अपरोच्यते। यया चादृश्यादिविशेषणयुक्तं सर्वशक्तिमद्ब्रह्म विज्ञायते सा पराऽर्थादपरायाः सकाशादत्युत्कृष्टास्तीति वेद्यम्।।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका– वेदविषयविचारः)

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।

(निरुक्त १–१८)

पाणिनीयव्याकरणस्य महत्त्वम्

—**कल्पना आर्या** (बिजनौर)
शास्त्री प्रथम वर्ष

व्याकरणम् तद्वैशिष्ट्यञ्च

व्याङ्पूर्वात् डुकृञ् धातोर्ल्युटि प्रत्यये व्याकरणशब्दः सिध्यति। व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते व्युत्पाद्यन्ते प्रकृतिप्रत्ययादयो येन तद् व्याकरणमिति। शब्दव्युत्पत्तिः, उदाहरणानि, प्रत्युदाहरणानि, इष्ट्युपसङ्ख्यानादीनि व्याकरणस्य विषयाः। पतञ्जलिना स्वीये महाभाष्ये व्याकरणस्य प्रमुखानि प्रयोजनानीत्थमुक्तानि रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्।

रक्षार्थम्— वेदानां रक्षार्थमध्येयं व्याकरणम्।

ऊहार्थम्—उचितलिङ्ग-विभक्ति-प्रयोगार्थमध्येयं व्याकरणम्।

आगमार्थम्— ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च इत्यागमादेशपरिपालनार्थमध्येयं व्याकरणम्।

लघ्वर्थम्— प्रकृतिप्रत्ययादिविभागरूपेण लघुनोपायेनैव अनन्ताः शब्दाः ज्ञातुं शक्यन्ते न प्रतिपदपाठेन, अतो लघ्वर्थमध्येयं व्याकरणम्।

असन्देहार्थम्— 'स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत' इत्यादिवाक्येषु प्रयुज्यमानेषु पदेषु बहुव्रीहिः समासो वर्त्तते तत्पुरुषो वेत्यादिसन्देहनिवृत्तिरपि व्याकरणेनैव भवत्यतः सन्देहनिवृत्त्यर्थमध्येयं व्याकरणम्।

मुख्यानि प्रयोजनानि प्रदर्श्य आनुषङ्गिकाण्यपि प्रयोजनानि प्रदर्शयामास पतञ्जलिमहर्षिः— तेऽसुराः, विभक्तिं कुर्वन्ति, दुष्टः शब्दः, यदधीतम्, यस्तु प्रयुङ्क्ते, अविद्वांसः, यो वा इमाम्, चत्वारि, उत त्वः, सक्तुमिव, सारस्वतीम्, दशम्यां पुत्रस्य, सुदेवो असि वरुण इति।

अत्र ध्यातव्यमिदं भाष्यकृता प्रत्तेष्वेतेषु सर्वेषु प्रयोजनेषु भाषापरिज्ञानार्थं व्याकरणमावश्यकमित्यभिप्रेत्य नैकमपि प्रयोजनमुदाहृतम्। वस्तुतः भाषापरिज्ञानं व्याकरणस्य प्रयोजनं नास्ति, भाषामाश्रित्य तु व्याकरणं निर्मीयते। नित्येषु कूटस्थेष्वविचालिषु शब्देषु व्याकरणेन अन्वाख्यानमात्रं क्रियते। पुनरपि सति व्याकरणे भाषासु नियमविशेषप्रवृत्तिर्भवतीत्यपि सत्यम्। वर्णज्ञानं, साधुशब्दज्ञानं, शब्दनिर्माणप्रक्रियाज्ञानं सर्वं व्याकरणेनैव सम्पाद्यते। शुद्धशब्दोच्चारणमन्तरेण कथमनर्थो भवतीत्यत्र साधु बोध्यते केनचित् कविना—

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृत् शकृत्।।

अत्र प्रथममुदाहरणं 'स्वजनः' इति। अस्यार्थः स्वकीयो जनः। यद्यत्र दन्त्यसकारस्य स्थाने तालव्यशकारस्य प्रयोगो भवेत् तर्हि श्वजनः इति स्यात् तस्यार्थश्च कुक्कुरवर्गः स्यात्। द्वितीयमुदाहरणं 'सकलं करोति' ति। अस्यार्थः सम्पूर्णं करोति। यद्यत्र सकारस्य स्थाने शकारः प्रयुज्यते तदास्यार्थः अंशं करोतीति भवति। तृतीयमुदाहरणं पुनः 'सकृत् भुङ्क्ते।' अत्र सकारे प्रयोक्तव्ये शकारः प्रयुज्येत चेत् मलं भुङ्क्ते इति अनिष्टार्थः सम्पद्यते। अतश्शब्दोच्चारणे सदैव दत्तावधानैर्भाव्यम्। व्याकरणस्य महत्त्वं वैयाकरणमूर्धन्येन भर्तृहरिणा इत्थं गीयते—

आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः।
प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहुर्व्याकरणं बुधाः।।
प्राप्तरूपविभागाया यो वाचः परमो रसः।

यत्तत्पुण्यतमं ज्योतिस्तस्य मार्गोऽयमाञ्जसः।।

(वाक्यपदीयम् ब्रह्म. 11-12)

वेदाख्यस्य शब्दब्रह्मण उपकारविशेषकृत्त्वात् साक्षादुपकारकं किञ्च लोके तपस्त्वेनाख्यातानां ब्रह्मचर्याधःशयनोपवासचान्द्रायणादीनां मध्ये अभिख्याततमं तपो व्याकरणम्। इदं हि छन्दसां प्रथममङ्गम्। प्राप्तरूपविभागाया वाचः परमो रसः। साधुशब्दसमूहज्ञानस्य च सरलो मार्ग इत्यनयोः कारिकयोः संक्षिप्तार्थः।

पाणिनीयव्याकरणस्य महत्त्वम्

पाणिनेः पूर्वमनेकैराचार्यैर्व्याकरणानि विरचितानि। तद्यथा–

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकल्यं पाणिनीयकम्।।

एषु ऐन्द्र-चान्द्र-काशकृत्स्न-शाकटायनादिषु व्याकरणग्रन्थेषु पाणिनीयव्याकरणं नवमं विद्यते। तत्र पाणिनेः पूर्ववर्त्तीनि व्याकरणानि बहुकालव्ययसाध्यानि कष्टसाध्यानि चाभवन्। तेषां गुरुतां दुरूहताञ्चावलोक्य पाणिनिना अष्टाध्यायी प्रणीता। यथादित्यस्य प्रभामण्डलेन चन्द्रतारकनक्षत्राण्यभिभूयन्ते तथैव पाणिनीय-व्याकरणस्य समक्षं पूर्वलिखितानां व्याकरणानां स्थितिः सञ्जाता। यद्यपि समग्रमपि पाणिनीयाष्टकं पाणिनेःप्रतिभापाटवं प्रदर्शयति तथाप्यस्य चतुर्दश प्रत्याहारसूत्राणि पाणिनेरद्भुतवैदग्ध्यपरिचायकानीति निश्चप्रचम्। अत्र नागेशादयोऽनेके वैयाकरणाः मन्यन्ते यत् प्रत्याहारसूत्राणीमानि भगवता शिवेन ढक्कां निनाद्य पाणिनये प्रकाशितानीति। तादृशमेव च तत्र वर्ण्यते–

नृत्तावसाने नटराजराजो
ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्त्तुकामः सनकादिसिद्धा-
नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

सर्वैषा कल्पना अविचारितरमणीयेति पं. युधिष्ठिरमीमांसकाः। यः पाणिनिः सम्पूर्णं शब्दानुशासनं निर्मातुं समर्थः स चतुर्दशानां सूत्राणां प्रणयने असमर्थ आसीदिति केन कल्पयितुमपि शक्यते। अतः शिवकृपया ईश्वरकृपया पाणिनिना इयं प्रत्याहारप्रणाली आविष्कृतेत्येव सत्यम्। विषयेऽस्मिन् विशिष्टानि प्रमाणानि पं. युधिष्ठिरमीमांसकविरचिते व्याकरणशास्त्रस्येतिहासे 'ऋलृक्' सूत्रभाष्ये च द्रष्टव्यानि। पाणिनिमुनिविरचितेयमष्टाध्यायी पठने पाठने च सरला विद्यते। अस्याः प्रमुखं वैशिष्ट्यं वर्त्तते सूत्राण्यत्र वैज्ञानिकक्रमेणोपनिबद्धानीति। प्रक्रियामाश्रित्य विरचितेषु क्रमरहितेषु सिद्धान्तकौमुद्यादिग्रन्थेषु न तद् वैशिष्ट्यं विलोक्यते। अत एव तत्र व्याकरणाध्ययनं कष्टतरं मन्यते। कष्टं व्याकरणं-कष्टतराणि सामानि, द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरणं श्रूयते इत्यादीनि वाक्यानि तत्रैव श्रूयन्ते। गुरुविरजानन्द-दयानन्दप्रदर्शितेन, पं. ब्रह्मदत्तजिज्ञासुसम्प्रदायपरिबृंहितेन आर्षक्रमेण तु पाणिनीयव्याकरणम् अल्पसमयग्राह्यं सुगमं सुबोधं सरलमेव। प्रौढा अप्यनया पद्धत्या व्याकरणमध्येतुं समर्थाः किमुत बालाः। अतः साधूच्यते दर्शनकेसरिणा पं. गोपालशास्त्रिणा–

सदाध्येया सर्वैर्निगमसदृशी पाणिनिमुने-
रहो अष्टाध्यायी झटिति पदबोधप्रणयिनी।
सुपूर्णा वैज्ञानी ध्रुवमतिशयाह्लादजननी,
स्वयं स्वार्थं ब्रूते क्रम-नियम-पाठेन सुगमा।।

❑❑

रूपान्तरेण ते देवा विचरन्ति महीतले।
ये व्याकरणसंस्कारपवित्रितमुखा नराः।।

गुरुशिष्यसम्बन्धः

—ब० गार्गी (सहारनपुर)
कक्षा—11

गृ शब्दे धातोः "कृग्रोरुच्च" अनेन उणादिसूत्रेण उण्प्रत्यये कृते गुरुशब्दो निष्पद्यते। व्युत्पत्तिश्चास्य भवति गृणात्युपदिशति वेदशास्त्रविद्यामाचारं च स गुरुः।" निरुक्तकारो महर्षियास्को गुरोः पर्यायवाचिनमाचार्यशब्दं व्युत्पादयन् प्रोवाच–आचार्यः कस्मात्? आचार्य आचारं ग्राहयत्याचिनोत्यर्थमाचिनोति बुद्धिमिति वा।।

शब्दयोरनयोर्व्युत्पत्या ज्ञायते यो वेदशास्त्रम् उपदिशति, पदार्थज्ञानं कारयति, बुद्धिं विकासयति आचारं व्यवहारञ्च शिक्षयति स आचार्यो गुरुर्वा अभिधीयते।

जगति मनुष्यस्य योनिसम्बन्धिभ्योऽतिरिक्तः योऽन्यो महत्त्वपूर्णः सम्बन्धी वर्त्तते तमेव वयं 'गुरु' नाम्ना सम्बोधयामः। गुरुरेव शिष्यस्य अज्ञानान्धकारं विनाश्य विद्यया च शिष्यजीवनं प्रकाशयति। यद्यपि पितरौ बालकस्य प्रारम्भिकौ गुरू भवतः, परं गुरोर्महत्त्वं तु विशिष्टमेव। पित्रोरभावे बालकः यथा कथञ्चिद् वर्धते परं स एव बालकः योग्यगुरोरभावे अन्धकारमयं जीवनं यापयित्वा दुःखमाप्नोति। यदि बालकः प्रारम्भादेव योग्यगुरोः संसर्गं लभते तर्हि तस्य जीवनं स्वर्णमिव भवति। अतः गुरुः विद्वान् धार्मिकश्च भूयात् इत्यावश्यकम्। गुरुशिष्यावुभावपि धार्मिकौ भवेतां चेत् कल्याणं ध्रुवम्। लिखितं केनचित् कविना—

पारस केरा गुण किसा
पलटा नहीं लोहा।
कै तो निज पारस नहीं
कै बीच रहा बिछोहा।।

अर्थात् पारसमणेः स्पर्शेन लौहः स्वर्णो न भवति चेत् मणेः लौहस्य च शुद्धता सन्दिग्धा भवति। इत्थमेव यदि शिष्यः स्वकर्त्तव्यानि न पालयति अथवा विद्वत्त्वं नाधिगच्छति, तर्हि तत्र द्वौ हेतू सम्भवतः, प्रथमस्तु गुरुः विद्वान् नास्ति, द्वितीयश्च शिष्यः बुद्धिमान् आज्ञाकारी वा नास्ति, अतः गुरुणा शिष्यं प्रति तथा शिष्येण च गुरुं प्रति स्वकर्त्तव्यानि निष्ठापूर्वकं परिपालनीयानि। गुरोः धर्मात्मतया शिष्यस्य च समर्पितभावनया एक उत्तमो धार्मिको नागरिको राष्ट्राय सज्जितो भवति। प्राचीन-भारतीयसंस्कृत्याम् एतादृशानि अनेकानि उदाहरणानि समुपलभ्यन्ते यत्र उत्तमगुरुभिः स्वशिक्षायाः प्रभावेण उत्तमशिष्याः राष्ट्रकल्याणाय समर्पिताः। महर्षिदयानन्दो गुरोः विरजानन्दस्य पाठशालायां गमनात् प्राक् एकः भ्रान्तः पथिकः आसीत्। तेन मथुरानगर्याः पाठशालां सम्प्राप्य विश्रामो लब्धः। पाठशालायां त्रीणि वर्षाण्यधीत्य स एवमेव स्वगन्तव्यं प्रति प्रस्थितो न बभूव, अपितु गुरुदक्षिणाकाले गुरवे तेन एतादृशी दक्षिणा दत्ता येन भारतवर्षस्य कायापरिवर्त्तनं बभूव। महर्षिदयानन्दः स्वभावेन कियान् विनम्रः आसीदेतत् अधोलिखितया घटनया जिज्ञपयिषामि—

एकदा कुटीं सम्मृज्य दयानन्देन अवकरः एकस्मिन् कोणे एकत्रीकृतः। स अवकरोत्थापनाय भाण्डं किञ्चित् अन्वेषमाणो यदा बहिरगमत् तदैव गुरुविरजानन्दस्यागमनं तस्मिन् स्थले अभूत्, तेषां पादश्च तस्यावकरस्योपरि न्यपतत्। दयानन्दं प्रति कुपितो विरजानन्दः भृशं ताडयामास। ताडनानन्तरं विनम्रो दयानन्दो विनीतस्वरेण प्रोवाच—"गुरुवर्य! मदीयं शरीरं तु वज्रतुल्यं कठोरं वर्त्तते, किन्तु भवतो हस्तौ कोमलौ स्तः, मम ताडनानन्तरं भवतो हस्तयोः पीडा जाता स्यात्, अतस्तत्र भवतां हस्तौ शरीरञ्च निपीडयितुमिच्छामि।" एषा आसीद् दयानन्दमहाभागानां गुरुं प्रति भक्तिः। ये शिष्याः गुरुं प्रति एवम्भूतां भक्तिं

श्रद्धाञ्चादधति त एव भविष्यति काले महापुरुषा: भवन्ति। गुरूणां ताडनं भर्त्सनञ्चापि शिष्याणां गुणोत्कर्षायैव भवति अतशिश्ष्यै: सदैवामृतं मत्त्वा तद् ग्राह्यम्। महर्षिदयानन्देन व्यवहारभानुनामके पुस्तके महाभाष्यस्य कियत् सुन्दरं वचनमुद्धृतम्—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।

अर्थात् ये मातर: पितर: आचार्याश्च स्वपुत्रान् शिष्यान् वा ताडयन्ति ते स्वहस्तेन अमृतं तान् पाययन्ति ये च स्निह्यन्ति ते तान् नाशयन्ति। लालनेन दोषा: वर्धन्ते तथा ताडनेन गुणा: वृद्धिं प्राप्नुवन्ति।

आधुनिकेषु विद्यालयेषु एतादृशी भावना दुर्लभैव। अद्य व्यक्ति: अन्धो भूत्वा उपाधीनां पृष्ठे धावति। अद्यतनीनया शिक्षया केवलं मनुष्या: साक्षरा: क्रियन्ते। सभ्यसमाजं निर्मातुं नास्ति साक्षराणाम् आवश्यकता अपितु धार्मिका: विद्यावन्तो नागरिका: एव सभ्यसमाजं निर्मातुं समर्था: भवन्ति। शिक्षा सैव यया मानव: पूर्णो भवति। अद्यतनीनया शिक्षया मानवो धैर्यादिगुणेभ्य: पराङ्मुखो भवति। काम- क्रोध-लोभ-मोहादि-दुष्प्रवृत्तिषु च व्याप्तो भवति। अद्यत्वे यत्र तत्र सर्वत्र एक एव उद्घोष: श्रूयते यद् भारतम् अनुदिनं विकासमाप्नोतीति, परं क्वायं विकास:? कस्मिन् क्षेत्रे विकास:? इति न मया परिलक्ष्यते। नूनम् अस्माकं देश: विकासं प्राप्नोति स्वसंस्कृतिविस्मरणे, पाश्चात्यशिक्षाग्रहणे, दुर्व्यसन-स्वीकरणे, पाश्चात्यानाम् आचारविचारधारणे च। अद्यत्वे सर्वत्र आङ्ग्लभाषाया अध्येतारो मानवा: गौरव-मनुभवन्ति। आङ्ग्लभाषाया:, किञ्च अन्यस्या: अपि कस्याश्चिद् वैदेशिक्या भाषाया वा पठने पाठने नास्ति अस्माकं विप्रतिपत्ति: । विप्रतिपत्तिस्तदा नूनं जायते यदा सर्वे स्वभाषां स्वसंस्कृतिं स्वसभ्यतां विस्मृत्य अन्यदेशीयां भाषां संस्कृतिं सभ्यताञ्चाङ्गीकुर्वन्ति। भाषा स्वसंस्कृतेरपि आवाहिका भवतीति मनीषिणां कथनं सत्यमेव। स्वसंस्कृतिसभ्यतयोरभावे भारतदेशस्य भविष्यम् अन्धकारमयं प्रतीयते अतो देशस्य उज्ज्वलं भविष्यम् अभीप्सितकामै: मानवै: शिक्षणालयेषु प्रवृत्ता दुर्व्यवस्था अपाकरणीया। राष्ट्रनिर्माणे गुरुशिष्योर्विशिष्टं योगदानं समीक्ष्य तत्रापि विशिष्टमवधेयमित्यलम-तिविस्तरेण विदांवरेषु।।

❑❑

तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः।
न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपलभ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः।।

हिन्दी— शिष्य जन ऐसा प्रयास करें जिससे कि लोगों के द्वारा उपहास के पात्र न हों, सज्जनों से निन्दित न हों, गुरुजनों से धिक्कृत न हों, मित्रों से उलाहना के पात्र न हों और विद्वानों के शोक पात्र न हों।

अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेन उपदेशगुणाः।
गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य।।

हिन्दी— निर्मल स्फटिक मणि में चन्द्रकिरणों के समान निर्मल चित्त में उपदेश के वचन सुखपूर्वक प्रवेश करते हैं। निर्मल होते हुए भी जैसे जल कान में पड़ने पर शूल (पीड़ा) पैदा करता है, वैसे ही गुरुजनों का वचन निर्मल होता हुआ भी दुर्जन के लिए कर्णशूल उत्पन्न करता है।

(बाणभट्ट-कादम्बरी)

मानव जीवन का चरम लक्ष्य

—ब्र० उपासना (बिजनौर)
शास्त्री प्रथम वर्ष

आनन्द के उच्चतम शिखर को छू लेने की लालसा प्रत्येक मनुष्य के अन्तस्तल में विद्यमान होती है। मनुष्य जीवन-पर्यन्त आनन्द की ही खोज में लगा रहता है। किसी को वह आनन्द रत्न-द्रव्य में मिलता है, किसी को ऐश्वर्य में, किसी को भरे-पूरे परिवार में, किसी को लम्बे-चौड़े भवन में। ब्रह्मानन्द इन सब आनन्दों से ऊँचा है, पवित्र है। इसी ब्रह्मानन्द को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। नयी सभ्यता की दौड़ में आज हम इस लक्ष्य को छोड़कर किसी अनजान चौराहे पर जा पहुँचे हैं, जहाँ से लौटना कठिन प्रतीत हो रहा है, किन्तु याद रखें! मनुष्य की कामनाओं का अन्त नहीं। मात्र ब्रह्मानन्द ही वह सरोवर है जहाँ पहुँचकर मनुष्य की कामनाएँ समाप्त हो सकती हैं। इस प्रसंग में तैत्तिरीय उपनिषद् का आनन्द-मीमांसा प्रकरण भी हमारा पथ-प्रदर्शन करता है। उसके अनुसार दुनियाँ का समस्त ऐश्वर्य मात्र एक मानुष-आनन्द है। ऐसे सैकड़ों, सहस्रों, लाखों करोड़ों आनन्दों से भी बढ़कर ब्रह्मानन्द है। ब्रह्मानन्द-पिपासु माया-मुक्त होकर कृतकार्य होता है न कि माया-लिप्त होकर। मानव जितना ही संसार के मायाजाल में उलझता है, उतना ही वह दु:खी होता है और उससे उसका लक्ष्य दूर होता जाता है, अत: सांख्यदर्शन के प्रणेता कपिल महर्षि ने मानवमात्र को परामर्श दिया—

"विवेकान्नि:शेषदु:खनिवृत्तौ
कृतकृत्यो नेतरान्नेतरात्।

(सांख्य द. 3/84)

विवेक से आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक दु:खों के हट जाने पर ही मनुष्य कृतकृत्य होता है, अन्य किसी प्रकार से नहीं और वह विवेक प्रभु-भक्ति के बिना प्राप्य नहीं।' अत: सभी मनीषियों ने प्रभु-भक्ति को अनिवार्य बताया। महाराज भर्तृहरि कहते हैं—

"स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तय:।।

(वै. शतक 73)

मनुष्य का मुख्य कार्य तो ईश्वरानन्द की प्राप्ति है। शेष कर्म तो वणिजों के व्यापार-मात्र हैं।

ईश्वर-प्राप्ति का उपाय

ईश्वर प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय योग है। योग का मार्ग अत्यन्त कठिन (दुर्गम) है। '**योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:**' कहकर भगवान् पतञ्जलि ने चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा है। यह कार्य तभी सिद्ध हो सकता है जब पाँच यम-नियमों का पालन किया जाये। यम-नियम सहित अष्टांगों के परिपालन हेतु अत्यन्त सावधान होकर चलने की आवश्यकता है। जिस प्रकार पथ पर चलने वाले पथिक के मार्ग को कण्टक रूपी बाधाएँ दुर्गम बना देती हैं, उसी प्रकार ईश्वर-प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर चलने वाले साधक के योग-रूपी मार्ग में भी अनेक व्यवधान आते हैं। योग-जिज्ञासुओं को जहाँ योग के साधनों की आवश्यकता होती है, वैसे ही बाधक तत्त्वों को समझकर उनको दूर करना भी आवश्यक है। योग-साधना में आने वाले अन्तरायों को महर्षि पतञ्जलि ने इस प्रकार दर्शाया है—

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति-
भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानव-
स्थितत्त्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तराया:।।

(समाधिपाद सूत्र- 30)

अर्थात् व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य,

अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकता और अनवस्थितता ये नौ योग मार्ग के अन्तराय= विघ्न कहे जाते हैं। इन अन्तरायों की व्याख्या व्यास-भाष्य के अनुसार इस प्रकार समझनी चाहिए—

व्याधि— व्याधिर्धातुरसकरणवैषम्यम् = धातु, रस तथा इन्द्रियों की विषमता।

स्त्यान— स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य = चित्त की अकर्मण्यता।

संशय— उभयकोटिस्पृग्विज्ञानं स्यादिदमेवं नैवं स्यादिति = उभयदिक्स्पर्शी विज्ञान, जैसे 'यह ऐसा है या ऐसा नहीं है।'

प्रमाद— प्रमादः समाधिसाधनानामभावनम् = समाधि के साधन-समूह की भावना न करना।

आलस्य— आलस्यं कायस्य चित्तस्य च गुरुत्त्वादप्रवृत्तिः = शरीर तथा चित्त की गुरुतावश अप्रवृत्ति।

अविरति— अविरतिश्चित्तस्य विषयसम्प्रयोगात्मा गर्धः = चित्त की विषयभोगात्मक आकांक्षा।

भ्रान्तिदर्शन— भ्रान्तिदर्शनम् विपर्ययज्ञानम् = मिथ्याज्ञान।

अलब्धभूमिकता— अलब्धभूमिकत्वं समाधिभूमेरलाभः = समाधि की किसी भूमि की प्राप्ति न होना।

अनवस्थितता— अनवस्थितत्त्वं लब्धायां भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठा = उपलब्ध भूमि पर चित्त का स्थिर न होना।

इन सभी विघ्नों के विनाश का उपाय महर्षि पतञ्जलि ने ईश्वरप्रणिधान बताया है, सूत्र इस प्रकार है—

"ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।।

(समाधिपाद सू. 29)

ईश्वर-प्रणिधान द्वारा इन अन्तरायों का विच्छेद किस प्रकार सम्भव है यह विषय अत्यन्त गूढ़ होने के कारण विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखता है। संक्षेप में कुछ व्याख्या प्रस्तुत है—

व्याधि— रुग्ण शरीर द्वारा योग का प्रयत्न भली-भाँति नहीं हो सकता अतः कायिक उपद्रवों तथा रोगों को हित, जीर्ण तथा परिमित आहार के द्वारा दूर करना चाहिए। व्याधि नाश के लिए यही प्रकृष्ट उपाय है। इसके साथ ही ईश्वर प्रणिधान करने से सात्त्विकता तथा शुभ-बुद्धि आयेगी जिनसे योगी रोग-निवृत्त्यर्थ ठीक-ठीक उपायों का अवलम्बन करेंगे, उनका बुद्धिभ्रंश नहीं होगा।

स्त्यान— उत्तम कर्त्तव्य-ज्ञान रहने पर भी अत्यन्त चञ्चलता के कारण चित्त को ध्यानादि साधन में प्रवृत्त न करने की इच्छा होना ही स्त्यान है। अप्रीतिकर होने पर भी पूर्ण प्रयत्न करते रहने से स्त्यान नामक विघ्न नष्ट हो जाता है। योगाभ्यास में रुचि ईश्वरोपासना से ही सम्भव है। उपासना द्वारा ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों का परिज्ञान होने से साधक की ईश्वर में प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति उत्पन्न होने से वह योगानुष्ठान की ओर प्रेरित होता है।

संशय— संशय रहते हुए साधक द्वारा लक्ष्य हेतु पूर्ण प्रयत्न सम्भव नहीं अतः संशयरहित होना अत्यन्त आवश्यक है। योगाभ्यास करते समय साधक के मन में अनेक संशय होते हैं तद्यथा- ईश्वर है या नहीं, उसकी प्राप्ति सम्भव भी है या नहीं, वह साकार है या निराकार आदि-आदि। एतादृश सभी संशय ईश्वरोपासना द्वारा दूर हो जाते हैं तभी कहा गया— **"ततो न विचिकित्सति"** (यजु.) प्रकृति आदि पदार्थों में सर्वत्र व्यापक परमात्मा के सम्यक् दर्शन से सर्वथा सन्देह निवृत्त हो जाते हैं। ईश्वरोपासना के अतिरिक्त श्रवण, मनन तथा संशयहीन उपदेष्टाओं के सामीप्य भी संशयोच्छेदक समझने चाहिएँ।

प्रमाद— समाधि के साधन समूह की भावना न करना तथा आत्मविस्मृत होकर विषय में लिप्त रहना ही प्रमाद कहाता है। स्मृति प्रमाद का प्रतिपक्ष है। **"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्** (मुण्ड. 3/2/2)

परमात्मा अप्रमाद से ही लभ्य है। अप्रमाद अमृत पद और प्रमाद मृत्युपद है। ईश्वरोपासना द्वारा कालान्तर में सुखानुभूति उत्पन्न होने से साधक उत्साहित होकर योगानुष्ठान में प्रवृत्त होता है उसका प्रमाद तिरोहित हो जाता है।

आलस्य— कायिक तथा मानसिक गुरुता के कारण जो आसन ध्यानादि में अप्रवृत्ति होती है वह आलस्य है। आलस्य का मुख्य कारण तमोगुण है। ईश्वरोपासना, मिताहार, जागरण और उद्यम के द्वारा सत्वगुण का उद्भव होता है जिससे आलस्य पराभूत होता है। स्त्यान और आलस्य में भेद इस प्रकार समझाना चाहिए स्त्यान में चित्त वश में न होकर इधर- उधर घूमता है और आलस्य में चित्त तमोगुण के प्राबल्य से स्तब्धवत् रहता है।

अविरति— इन्द्रियों का विषय-भोगों के प्रति राग अविरति है। यह योग में बाधक है, इससे साधक की उपासना भंग हो जाती है। ईश्वरोपासना यहाँ भी साधक की सहायता करती है। ईश्वरध्यानजनित आनन्द से विषय-भोग की इच्छा समाप्त हो जाती है, इसके साथ ही विषयों से दूर रहकर वैषयिक संकल्प को त्यागने का अभ्यास करने से भी अविरति अर्थात् तृष्णा नष्ट होती है **'कामं संकल्पवर्जनात्'** (शान्ति प. 274/5) यह शास्त्र-वाक्य इस विषय में ध्यातव्य है।

भ्रान्तिदर्शन— यथार्थ को न जानकर निम्न पद को श्रेष्ठ पद और श्रेष्ठ पद को निम्न पद मानना भ्रान्तिदर्शन है। भ्रान्तिदर्शन दूरश्रवण, दूरदर्शन भविष्यकथन आदि अनेक प्रकार के होते हैं, जिनकी निवृत्ति ईश्वर के प्रति भक्ति और श्रद्धा के साथ योगशास्त्र के अध्ययन से तथा तदनुसार अन्तर्दृष्टि की प्राप्ति से ही सम्भव है।

अलब्धभूमिकता— मधुमती आदि योगभूमि की अप्राप्ति ही अलब्धभूमिकता है। योगभूमियों का विवरण विभूति पाद के इक्यानवें सूत्र के भाष्य में द्रष्टव्य है। ईश्वर- प्रणिधान से समाधि का यह बाधक तत्त्व भी शीघ्र ही दूर हो जाता है।

अनवस्थितता— समाधिलाभ कर पुनः उसका छूट जाना उसमें चित्त को स्थित न कर पाना अनवस्थितत्व विघ्न कहाता है। समाधि की प्राप्ति होने पर ईश्वर उसे स्थिर करने में भी सहायता करता है।

इस प्रकार ईश्वर-प्रणिधान के द्वारा ये सब अन्तराय दूर हो जाते हैं क्योंकि जिस अन्तराय का जो उच्छेदक तत्त्व है ईश्वरप्रणिधान से वह प्रकट होकर उस अन्तराय को दूर कर देता है।

चरमलक्ष्य की प्राप्ति हेतु मनुष्य को महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रदर्शित इसी मार्ग का अवलम्बन करना होगा।

❑❑

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियम्।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्।।

हिन्दी— योग को करने वाले मनुष्य तत्त्व अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिए जब अपने मन को पहले परमेश्वर में युक्त करते हैं तब परमेश्वर उनकी बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है, फिर वे परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके यथावत् धारण करते हैं।

(यजुर्वेद 11/1)

स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे। (सत्यार्थ प्रकाश)

विश्ववारा संस्कृति

—ब्र० माधुरी (शिकोहाबाद)
कक्षा—11

सुवर्णां सुशब्दां सुवाक्यां सुपादाम्।
सुबोधामदीर्घां महार्थां सुशिष्टाम्।
सुबोधां सुभाषां सुरीतिं सुवृत्ताम्।
पठेयुः सदा संस्कृतां देवभाषाम्।

हमारे देश के दो आधारभूत स्तम्भ हैं— संस्कृत और संस्कृति **"भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिश्चैव"**। संस्कृत शब्द व्याकरण के द्वारा सम् उपसर्ग पूर्वक कृञ् धातु से क्त प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है, जिसका अर्थ है शुद्ध और परिमार्जित! आदिकाल से ही हमारी भाषा संस्कृत रही है। सृष्टि के आदि में प्रदत्त वेदों का प्रादुर्भाव संस्कृत में ही हुआ है। वेदों के अतिरिक्त उपवेद, दर्शन, उपनिषद्, षडंग सभी संस्कृत भाषा में बने हैं। आदिकवि वाल्मीकि, व्यास आदि कवियों ने रामायण, महाभारत इत्यादि अपनी प्रसिद्ध कृतियों का निर्माण भी संस्कृत में ही किया है।

संस्कृत वाङ्मय बहुत ही विस्तृत व ज्ञानपूर्ण है। संस्कृत एक ऐसा सागर है, जिसमें भाषा रूपी हर नदी समाहित हो जाती है। इसीलिए संस्कृत भाषा सब भाषाओं की जननी है। जिस प्रकार जननी अपने शिशु को जिस तरह के संस्कार प्रदान करती है वह वैसा ही अच्छा या बुरा बनता है। इसी प्रकार से संस्कृत जननी और संस्कृति संस्कृत से उत्पन्न एक शिशु है। जिस तरह की भाषा होगी उसी तरह की उससे उत्पन्न आचार-विचार वाली संस्कृति होगी— **संस्कृतं संस्कृतेर्मूलं ज्ञानविज्ञान-वारिधिः। वेदतत्त्वार्थसंजुष्टं लोकालोककरं शिवम्।।** संस्कृति संस्कृत से निकलने वाला प्रवाह है जो कि संस्कृत के साथ- साथ सृष्टि के आदि से अविरल बहता चला आ रहा है। हमारी संस्कृति के आगे देवता भी नतमस्तक होकर कहते थे— **धन्यं हि भारतवर्षं धन्या भारतसंस्कृतिः। भारतीया जना धन्या धन्यास्माकं परम्परा।।** ऋषि-मुनियों द्वारा सिंचित यह देश संस्कृत भाषा का प्रचार प्रसार होने के कारण ही जगद्गुरु कहलाता था। **एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद-ग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।** (मनुस्मृति)

संस्कृति का मूल सदाचार

आचारः परमो धर्मः आचारः परमं तपः।
आचारः परमं ज्ञानम् आचारात् किं न साध्यते।

आचार हमारा परम धर्म है आचार ही हमारा परम तप है आचार ही परम ज्ञान है और आचार से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। आचरण जैसा आभूषण जिसके पास है उसे अन्य रत्नों की कोई आवश्यकता नहीं। वेद भी कहता है—

परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँऽअनु।। (यजु. 4/28)

हे अग्नि स्वरूप परमेश्वर! मुझे दुराचरण से दूर हटाकर सुमार्ग पर लगाइए। रामायण का वह प्रसंग यहाँ ध्यातव्य है— जिस समय जटायु द्वारा प्राप्त संदेश व आभूषणों को देखकर राम लक्ष्मण से पूछते हैं। उस समय जो उत्तर लक्ष्मण देते हैं, वह भारतीय संस्कृति का अनुपम आदर्श है— वे कहते हैं— **नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले। नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।** हे राम! मैं इन आभूषणों में से केवल नूपुर अर्थात् बिछुओं को ही पहचानता हूँ, क्योंकि मैं

नित्य प्रति उनके चरणों की वन्दना करता था। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र भगवान् ने अपनी वैदिक संस्कृति को ध्यान में रखते हुए, **'अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः'** का पूर्णरूपेण परिपालन किया। चौदह वर्ष का वनवास भी स्वीकार किया।

संस्कृति का आधार— संस्कृत

वेदवाणीं विना देववाणी कथम्
देववाणीं विना राष्ट्रभाषा कुतः।
राष्ट्रभाषां विना राष्ट्रभावाः कथम्
राष्ट्रभावैर्विना राष्ट्रियत्वं कुतः।।

वेद वाणी के बिना देववाणी सम्भव नहीं है, देववाणी के बिना राष्ट्रभाषा अधूरी है राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्रहित भावों की उत्पत्ति असम्भव है और राष्ट्रभाव के बिना राष्ट्रीयत्व कहाँ? राष्ट्रीय विचार हमारे अन्दर उपजें, हमारे अन्दर राष्ट्रीयता हो सके इसके लिए हमें वेदवाणी और देववाणी (संस्कृत) की महती आवश्यकता है। अन्य भाषाओं को पढ़ने का उद्देश्य केवल और केवल जीविकोपार्जन है लेकिन जिस उद्देश्य से हम इस संसार में आये हैं वह है निःश्रेयस् की प्राप्ति जो कि हमें वेद से ही प्राप्त हो सकती है। जिसके लिए संस्कृत वाङ्मय में भी कहा गया है— **'सा विद्या या विमुक्तये'** विद्या वही पढ़नी चाहिए जिसको पढ़कर आत्मोन्नति का पथ निर्दिष्ट हो सके **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'** जो ज्ञान मुक्ति का साधन नहीं वह ज्ञान ही नहीं। हमारे प्राचीन ऋषि महर्षियों ने ज्ञान के उद्देश्य को सदैव समक्ष रखा था तभी वे सर्वत्र सफल थे। आज हम जिस ज्ञान के संग्रह में दिन रात व्यस्त हैं उसके विषय में ये पंक्तियाँ नितान्त सार्थक हैं—

घिसते-घिसते पुस्तकों को
हम भी घिस गये।
धैर्य शक्ति और साहस
निराशा में पिस गये।।

आज स्वतन्त्रता के 59 वर्ष पूर्ण होने के पश्चात् भी हम पूरी तरह से स्वतन्त्र नहीं हो पाये। अंग्रेज भले ही चले गये किन्तु अंग्रेजियत हमारे देश में छोड़ गये और हम उनके बनाये सांचे में आकण्ठ ढल गये। जिसका परिणाम यह है कि आज पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर गौरव का अनुभव करते हैं। लेकिन हम यह नहीं जानते कि जो भाषा, जो संस्कृति अपने आप में खोखली व अपूर्ण है वह हमारे अन्दर संस्कृति व सभ्यता का शंखनाद कैसे कर सकती है? हमारे अन्तःकरण में राष्ट्रीयता की भावना कैसे ला सकती है? हम अपनी संस्कृति व भाषा को भूलकर उस कगार पर आकर खड़े हो गये हैं जहाँ चारों ओर जल ही जल है पार होने के लिए न कोई नाव है और न ही कोई खेवट। अगर हमें इस भंवर से निकलना है तो प्रयत्न करना होगा। अपना रास्ता अपने आप खोजना होगा। अपनी भाषा व संस्कृति का पुनः शंखनाद करना होगा—

सुवर्णा सद्वृत्ता विविधललितालङ्कृतिचणा।
गुणाढ्या निर्दोषा विबुधव्यवहाराधृतपदा।।
सुरीतिप्रख्याता भवविभवरूपाश्रितरसा।
सदेयं शर्वाणी जयतु सुरवाणीह सततम्।।

❑❑

ईश्वर में जैसा अनन्त आनन्द है उसी तरह संस्कृत भाषा में भी अनन्तानन्द है।

(पूना प्रवचन)
स्वामी दयानन्द सरस्वती

आर्य और आर्यावर्त्त

– कुमारी अर्चना 'मुजफ्फरनगर'
कक्षा– ११

गत्यर्थक 'ऋ गतौ' धातु से ण्यत् प्रत्यय और वृद्धि करने पर 'आर्य' शब्द सिद्ध होता है। 'अभिगमनीयः प्रापणीयः यः स आर्यः' अर्थात् जो सबका सेव्य है विद्यापारंगत है, श्रेष्ठ है वही आर्य है। आर्य की परिभाषा करते हुए महर्षि दयानन्द आर्योद्देश्यरत्नमाला में लिखते हैं– 'जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यविद्यादि गुणयुक्त और आर्यावर्त्त में सब दिन से रहने वाले हों उनको आर्य कहते हैं। महर्षि वेदव्यास के शब्दों में–

ज्ञानी तुष्टश्च दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालुर्नम्रश्च स्यादार्यो ह्यष्टभिर्गुणैः।।

अर्थात् जो व्यक्ति ज्ञानी, सदा सन्तुष्ट रहने वाला, मन को वश में करने वाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, दयालु और नम्र हो वह आर्य कहलाता है। प्रसिद्ध आंग्ल विचारक एमर्सन ने भी अपनी अनुभूति इस प्रकार व्यक्त की है–

Whoever is open loyal of human and affable demeanour, honourable himself and in his judment of others, faithfully to his word as to law and faithfull to god and man. Such a manis a true gentleman.

The flwering of civilization is the finished man, the man of sinse of grace of accomplishment of social power the gentleman.

अर्थात् वही व्यक्ति सभ्य और आर्य होता है जो उदार, निष्ठावान्, सत्यप्रेमी, दयालु और सरल हो, जो अपनी दृष्टि में स्वयं ऊँचा उठा हो और दूसरों का सम्मान करता हो, जो अपनी बात का धनी हो, जो परमात्मा और मनुष्य के प्रति सच्चा हो। सुसंस्कृत मनुष्य वही होता है जो बुद्धिमान हो, सुन्दर गुणों से अलंकृत हो और सामाजिक शक्ति सम्पन्न हो।

आर्यों का निवास स्थान

हिमालय और विन्ध्याचल के बीच रामेश्वर पर्यन्त सुविस्तृत भू–भाग में बसने वाले लोग आर्य कहलाते थे, क्योंकि वे श्रेष्ठ आचरण, सद्विद्यायुक्त, परोपकारी और धर्मात्मा होते थे। इसी से इनके निवास–स्थान का नाम आर्यावर्त्त पड़ा।

आर्यावर्त्त की सीमा–रेखा का निर्धारण करते हुए महर्षि मनु मनुस्मृति में लिखते हैं–

आ समुद्रात्तु वै पूर्वात् आ समुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः।।

(मनु. 2/23)

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते।।

(मनु. 2/17)

इनकी व्याख्या महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ–प्रकाश में इस प्रकार की है– "उत्तर भारत में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और

पश्चिम में सागर तथा पश्चिम में सरस्वती अर्थात् अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती अर्थात् ब्रह्मपुत्र जो नेपाल के पूर्व भाग से निकलकर दक्षिण में सागर में जाकर मिलती है, वहां तक और जो हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के बीच रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन्हें आर्यावर्त्त संज्ञा इसलिए दी गई क्योंकि यह आर्यावर्त्त आर्य अर्थात् विद्वानों व श्रेष्ठ पुरुषों ने बसाया था। इससे पूर्व इस देश का कोई भी नाम न था और न ही आर्यों से पहले इस देश में कोई बसता था।" यहां एक बात विचारणीय है कि कुछ लोग विन्ध्याचल पर्वत उसे मानते हैं जो आजकल प्रसिद्ध है, उत्तर और दक्षिण भारत को पृथक् करता है इसके विषय में पं० क्षितीश वेदालंकार की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है :– विन्ध्याचल पर्वत आधुनिक विन्ध्याचल न होकर वह पर्वत है जो रामेश्वर से प्रारम्भ होकर दक्षिण में फैला हुआ है। इसके विषय में रामायण में कहा है :– **"दक्षिणस्योदधेस्तीरे विन्ध्योऽयमिति निश्चयः।"** महर्षि दयानन्द लिखते हैं :– **"विन्ध्याचल भारत के मध्य में स्थित नहीं वरन् ठेठ रामेश्वर पर्यन्त है।"** इसके साथ ही एक और बात भी स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखती है। मनु द्वारा निर्दिष्ट **'सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्'** में सरस्वती तथा दृषद्वती ये दोनों नदियाँ कौन सी हैं? इस विषय में भी विद्वानों में एक मत नहीं, किन्तु पं० क्षितीश जी के अनुसार सरस्वती वह सिन्धु नदी है जो मानसरोवर से निकलकर भारत की पश्चिमी सीमा का निर्धारण करती हुई लद्दाख से होकर पाकिस्तान होती हुई अरबसागर में जाकर गिरती है और दृषद्वती ब्रह्मपुत्र है जो नेपाल के पूर्व भाग से निकलकर बंगाल तथा आसाम होती हुई बंगाल की खाड़ी में (बंगसागर) में जाकर गिरती है। इस प्रकार **हिमालय की मध्यरेखा से रामेश्वर पर्यन्त तथा अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक सुविस्तृत भू–भाग ही आर्यों का निवास–स्थान था।**

पाठकवृन्द! जब प्रमाणों से स्पष्ट है कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आए आर्यों का मूल निवास देश भारत ही था। फिर हमें इस देश का मूल–निवासी न बताना आक्रान्ता बताना अंग्रेजों की सोची समझी चाल थी। उन्होंने हमें विदेशी बताकर गुमराह किया है। उनकी इस चाल में बड़े–बड़े दिग्गज भी फंस गए, किन्तु कोई यह न बता सका कि आर्य कहां से आए थे? किसी ने आर्यों को मध्य एशिया का बताया और किसी ने यूरोप का मूल निवासी बताया, तो पं० बाल गंगाधर तिलक जैसे भारतीय विद्वानों ने आर्यों को उत्तरी ध्रुव का मूल निवासी बताया। मैं पूछती हूँ – यदि आर्य विदेशी थे तो उस देश के इतिहास में और वर्त्तमान जीवन में भी आर्य सभ्यता के लक्षण क्यों नहीं दिखते? पाठकवृन्द! सच बात तो यह है कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आ;। वे तो इसी देश के मूल निवासी थे आर्यों की प्रथम उत्पत्ति त्रिविष्टप् (तिब्बत) में हुई थी। कुछ समय पश्चात् आर्य वहां से चलकर हिमालय की निम्न श्रेणियों में जाकर बस गए थे। मैं कुछ प्राचीन भारतीय संस्कृति के उदाहरणों के द्वारा भी यह स्पष्ट करना चाहती हूँ कि 'आर्य' शब्द तत्कालीन लौकिक व्यावहारिक जीवन में कितना रच बस गया था। आप रामायण

उठाकर देखिये:–

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः।।

(बाल.1/16)

इस प्रकार रामायण में जहां श्रेष्ठ गुणसम्पन्न व्यक्ति को आर्य संज्ञा दी गयी वहीं अनार्य शब्द का प्रयोग दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों के लिए किया है। यथा– कैकेयी के वचनों से दुखी होकर राजा दशरथ कहते हैं–

मृते मयि गते रामे वनं मनुजपुंगवे।
हन्तानार्ये! ममामित्रे! सकामा सुखिनी भव।।

(अयो० 13/5)

"हे अनार्ये! राम के वन चले जाने पर, मेरे मर जाने पर तुम यहां सुखपूर्वक रहना"। वनवास के समय सीता हेममृग से मोहित हो राम को प्रेरित करती है:–

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः।
आनयैनं महाबाहो! क्रीडार्थं नो भविष्यति।।

(अरण्य० 43/10)

इस प्रकार अन्यत्र भी आर्य शब्द बहुधा दिखाई पड़ता है जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आर्य शब्द का मूल भारतीय संस्कृति का ही मूल है।

आर्य सभ्यता एवं उसका ह्रास–

आर्य क्योंकि श्रेष्ठ गुणों से युक्त मनुष्यों की संज्ञा है अतः आर्यावर्त्त प्राचीनकाल में तपस्वी, मनस्वी, साधक, ऋषि–मुनियों का ही देश था सभी वेदोक्त जीवन का ही निर्वाह करते थे कहीं भी अशान्ति न थी। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का सर्वत्र प्रसार था। वेदों का ज्ञान, ईश्वर का ध्यान, यज्ञ का अनुष्ठान, संस्कारी सन्तान तथा देश हित बलिदान के कारण आज का भारत उस समय जगद्गुरु कहलाता था। जितने भी आक्रमणकारी यहां आक्रमण करने आए वे सब के सब हमारी संस्कृति से प्रभावित हुए बिना न रह सके। इस प्रकार आर्य सभ्यता का प्रचार–प्रसार सर्वत्र हो रहा था। आर्यों के शासन में सर्वत्र शान्ति, सुव्यवस्था व्याप्त थी, किन्तु समय के साथ–साथ सब कुछ बदलता चला गया और महाभारत के युद्ध के साथ सब नष्ट हो गया। महाभारत के युद्ध के पश्चात् आर्यावर्त्त आर्यों से विहीन हो गया। जो जन शेष रहे उन्होंने स्वार्थ के वशीभूत होकर ऐसे–ऐसे मत सम्प्रदायों को जन्म दिया जो या तो वेदविरुद्ध थे, या वैदिक संस्कृति के ही विकृत रूप थे। लोग आलसी, प्रमादी व विषयासक्त होते चले गए। एक दिन वह भी आया जब आर्य अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को पूरी तरह भूल गए। इसी मध्यकाल में अन्धकार इतना व्यापक हो गया कि लोग अपने सही स्वरूप को भूल कर विदेशियों द्वारा बतायी गयी बातों को सुनकर भ्रान्त होने लगे। ऋषि दयानन्द ने हमें झकझोरा, हमें अपनी संस्कृति, सभ्यता और गौरव की याद दिलाई, ऐसे ऋषिवर को मेरा शत–शत नमन।

❑❑

सत्यार्थप्रकाश एक अद्भुत क्रान्तिकारी ग्रन्थ

—ब्र० सौम्या (अजमेर)
कक्षा–10

मानव के हृदय में नव चेतना तथा नव स्फूर्ति लाने वाला क्रान्तिकारी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश है। सत्यार्थप्रकाश की रचना 19वीं शताब्दी में हुई थी। महर्षि दयानन्द जी का सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ बनाने का प्रयोजन सत्य–असत्य का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसे सत्य और जो असत्य है उसे असत्य प्रतिपादन करना है। जैसा कि स्वामी जी ने स्वयं सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्द्ध की अनुभूमिका में लिखा है "इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी की हानि व विरोध करना नहीं अपितु सत्यासत्य का निर्णय करना है।"

जिस समय देश अज्ञान के घोर अन्धकार में पल रहा था। हर तरफ कुरीतियाँ व्याप्त थीं, नाना प्रकार के देशी–विदेशी मत सम्प्रदाय अपने देश में अधिकार जमा रहे थे, स्त्री और शूद्रों की दयनीय स्थिति थी, विधवाओं पर अत्याचार किये जा रहे थे, बाल–विवाह जैसी घृणित प्रथाओं का बोल–बाला था। धर्म का कहीं नामो–निशां नहीं था। उस समय भारत की दुर्दशा को देखकर महर्षि की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी।

निरख कर देश की हालत,
ऋषि का मन भी रोया था।
बजाया धर्म का डंका,
गुंजाई वेद की वाणी।।
उठाया सत्य का झंडा
अंधेरा डगमगाया था।।
अमर 'सत्यार्थ' ज्योति से
जगत् सब जगमगाया था।।

महर्षि दयानन्द की 'सत्यार्थ प्रकाश' रूपी अमर ज्योति ने हर क्षेत्र में अतुलनीय कार्य किया। यह सत्यार्थ प्रकाश मानव मात्र के लिए बहुत उपयोगी ग्रन्थ है। इसको पढ़कर मनुष्य अज्ञान रूपी अन्धकार से दूर होकर ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर बढ़ता है। इसको पढ़कर मन में उत्साह एवं आनन्द की अनुभूति होती है। पं० गुरुदत्त जी ने इसे 17 बार पढ़ा उन्हें हर बार नई बात मिली।

आनन्द सुधा–सार दया कर पिला गया।
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया।।

धन्य है महर्षि दयानन्द सरस्वती जिन्होंने विनाश की ओर जाते हुए महान् भारत को अपने उपकारों की वर्षा करके फिर से नव जीवन प्रदान किया। सत्य है! महर्षि दयानन्द जी का प्रादुर्भाव न हुआ होता तो न जाने भारत कहाँ होता। महर्षि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ–प्रकाश ने भारत को एकता और स्वराज्य का मन्त्र दिया। स्त्री और शूद्रों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे, उन्हें अधिकार दिये। जन्म–जात ऊँच–नीच तथा भेदभाव को वेद के विरुद्ध बताया। अनाथ, विधवाओं को ऊपर उठने और आगे बढ़ने का अपूर्व बल दिया। इस चमत्कारी ग्रन्थ ने अनेक लोगों को पथ–भ्रष्ट होने से बचाया और अनेक लोगों का चरित्र निर्माण किया।

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में चारों वेदों का सार लिखा है। महर्षि दयानन्द का यह ग्रन्थ सम्पूर्ण मानव जाति को प्रेरणा देता रहा है और आगे भी देता रहेगा। इसलिए किसी कवि ने कहा है कि—

सच तो यह है कि वेद का है,
सार सत्यार्थ–प्रकाश।
ज्ञान और विज्ञान का है,
भण्डार सत्यार्थ–प्रकाश।।

सत्यार्थप्रकाश एक अमूल्य निधि है। इस ग्रन्थ की जितनी प्रशंसा की जाये वह कम ही है।

भारत के महान् वैज्ञानिक डॉ० सत्यप्रकाश सरस्वती ने कहा—

'महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश भारत को ही नहीं सम्पूर्ण मानव जाति को प्रत्येक युग में नयी प्रेरणा देता रहेगा। रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से बचने के लिए यह विश्व साहित्य की अद्वितीय रचना है। सद्विचार और मानव कल्याण का पोषक एकमात्र ग्रन्थ है।'

स्वामी हरदयाल जी ने कहा—

इस महान् ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन से मेरे विचार ही बदल गये। सोती हुई जाति के स्वाभिमान को जागृत करने वाला यह ग्रन्थ अद्वितीय है।

सत्यार्थप्रकाश में 14 समुल्लास हैं। पहले दस समुल्लासों में महर्षि दयानन्द जी ने वेदशास्त्रादि प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या, ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन व्यवस्था, सत्यासत्य, राजधर्म, विद्या-अविद्या, बन्ध और मोक्ष, आचार-अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य आदि की विवेचना की है और बाद के चार समुल्लासों में पौराणिक हिन्दू, बौद्ध, जैन इन सभी विभिन्न मत-मतान्तरों और ईसाई, मुस्लिम आदि विभिन्न सम्प्रदायों की तीव्र आलोचना की है। मत-मतान्तरों एवं सम्प्रदायों की तीव्र आलोचना द्वारा महर्षि दयानन्द जी का उद्देश्य समाज तथा राष्ट्र का हित करना था। जनता को पाखण्डों तथा आडम्बरों से मुक्त करना था। वे धर्म को तर्कसंगत एवं बुद्धि सम्मत बनाना चाहते थे।

पं० दिनकर जी ने लिखा है कि—

दयानन्द ने बुद्धिवाद की जो मशाल जलाई थी, उसका उत्तर न तो मुसलमान दे सकते थे, न ईसाई और न पुराणों पर चलने वाले हिन्दू पण्डित व विद्वान्।

सत्यार्थ-प्रकाश क्रान्ति का अग्रदूत है। महर्षि दयानन्द के इस ग्रन्थ ने वीर शहीदों के खून की धारा प्रवाहित कर शारीरिक, मानसिक व आत्मिक ओज व बल का संचार किया है। जो व्यक्ति एक बार सत्यार्थ-प्रकाश को पढ़ ले वह अज्ञान अन्धकार के भ्रम में नहीं पड़ सकता। एक सामान्य कोटि का मानव इसे पढ़कर बड़े-बड़े धर्माचार्य पण्डित, पोप-पादरी, मुल्ला-मौलवी के वाक् जाल में नहीं फंस सकता। इसलिए आजादी के विजयी योद्धा स्वातन्त्र्य वीर **विनायक दामोदर सावरकर जी** कहते हैं कि—

सत्यार्थप्रकाश की विद्यमानता में कोई धर्मावलम्बी अपने मत की बड़ाई नहीं मार सकता। हिन्दू जाति की ठण्डी नसों में गरम लहू का संचार करने हारा यह अमर ग्रन्थ है।

सत्यार्थप्रकाश सामान्य मनुष्यों को देवत्व की ओर ले जाने वाला प्रकाश-स्तम्भ है इसलिए **लाला लाजपतराय** कहते हैं—

गुरुदेव दयानन्द रचित सत्यार्थ-प्रकाश मेरे जीवन में प्रकाश करने वाला सूर्य समान है।

सत्यार्थप्रकाश ने लाखों करोड़ों भूले भटके हुओं के जीवन का पथ-प्रदर्शन किया है, यही बताते हुए पादरी **सी. एफ. एण्ड्रयूज** कहते हैं—

"मैंने भारत में आकर सच्चे हिन्दू धर्म का परिचय सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय से प्राप्त किया है, क्योंकि धर्म से भटकने वालों के लिए यह एक पथ प्रदर्शक है।"

इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित इस सत्यार्थप्रकाश ने न जाने कितने लोगों को सही मार्ग बताया। इससे न जाने कितने लोगों ने अपने जीवन का उद्धार किया। इस ग्रन्थ ने न केवल भारतीय सम्प्रदायों को ही प्रत्युत विश्व के जनमानस को झकझोर दिया। यह सत्यार्थप्रकाश धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा अन्य किसी भी प्रकार की कोई समस्या हो उसका समाधान मुखर रूप से करता है। यदि सत्यार्थ प्रकाश न होता तो हम अन्धकार में फंसे होते और पूर्व में जो समस्यायें थीं वह अब भी उसी प्रकार होतीं अतः सभी समस्याओं का समाधान चाहते हैं तो हमें महर्षि का अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश अवश्य पढ़ना चाहिए। किसी कवि ने कहा है—

चाहो यदि लेना आप जग में आनन्द सच्चा,
परम पुनीत प्रभु भक्त मकरंद का।
चाहो करना निवृत्त शंकाओं को यदि तुम
अवश्य पढ़ लो सत्यार्थप्रकाश दयानन्द का।।

❑❑

स्त्रीशिक्षा का महत्व

—**ब्र० श्रेष्ठा** (आगरा)
शास्त्री प्रथम वर्ष

शिक्षा मनुष्य के जीवन का अनिवार्य अंग है। शिक्षित मनुष्य एक स्वस्थ सुन्दर समाज का निर्माण करता है। साक्षरता ही शिक्षा नहीं अपितु शिक्षा वह है जिससे मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो। यह सब वैदिक शिक्षा से ही सम्भव है। शिक्षा के क्षेत्र में नर एवं नारी को समान अधिकार प्राप्त हैं। समाज निर्माण का उत्तरदायित्व नारी के कन्धों पर है। यदि नारी शिक्षित है तो वह दो कुलों का नाम उज्ज्वल करेगी, जिस कुल में उसकी शिक्षा हुई है और जिस कुल में वह जाएगी। योग्य मातायें ही योग्य सन्तानों की निर्मात्री होती हैं। महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—

"प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता
विद्यते यस्य स मातृमान्"।

प्राचीन भारतीय नारी वेद विद्या से सुभूषित होती थी। वैदिक ऋषिका उद्घोष करती हैं— **"अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी"** (10/159/2)

अर्थात् मैं राष्ट्र की ध्वजा मस्तिष्क एवं सभाओं में विवेचन करने वाली हूँ। प्राचीन भारतीय इतिहास लोपामुद्रा, अपाला, भारती, गार्गी, मैत्रेयी आदि विदुषी एवं शिक्षित नारियों का यशोगान कर रहा है। मण्डन मिश्र एवं शंकराचार्य के बीच हुये शास्त्रार्थ की मध्यस्थता मण्डन मिश्र की पत्नी भारती ने की थी। वह एक विदुषी, धार्मिकी, सुशिक्षिता नारी थी। भारती की योग्यता से आश्चर्य-चकित होकर शंकराचार्य लिखते हैं— **"शास्त्राणि सर्वाणि षडङ्गवेदान् काव्यादिकान् वेत्ति यदत्र सर्वम्"**, भारती छह शास्त्रों एवं छह अंगों सहित चारों वेदों और सम्पूर्ण काव्यग्रन्थों को जानती है। इतना ही नहीं **"तन्नास्ति न वेत्ति यदत्र बाला"** ऐसा कोई विषय नहीं है जिसका ज्ञान उस देवी को न हो। शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ में अपने पति मण्डन मिश्र के हार जाने पर भारती ने शंकराचार्य को हराया था। यह है शिक्षित नारी का कमाल। इसी प्रकार माता मदालसा ने भी ज्ञान रूपी निधि से चार पुत्रों को-

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि
संसारमायापरिवर्जितोऽसि।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां,
मदालसा एवमुवाच पुत्रम्।।

की लोरियां देकर संसार रूपी सागर से विरक्ति कराकर वैरागी बना दिया था तथा पांचवें पुत्र को राजकीय वैभव का उपभोग कराया। वास्तव में शिक्षित नारी समाज की आधारशिला है। किसी विदेशी विद्वान् ने ठीक ही कहा है— **Give me sixty good mothers, I can give you a good nation.**

अर्थात् तुम मुझे साठ अच्छी मातायें दो, मैं तुम्हें एक अच्छा राष्ट्र दे सकता हूँ। परिवार का, समाज का, राष्ट्र का उत्थान शिक्षित नारी से ही सम्भव है। किन्तु समय के परिवर्तन के साथ-साथ नारी की स्थिति में परिवर्तन होने लगा। नारी को वेदरूपी ज्ञान से वंचित रखने के प्रयास किये जाने लगे। शंकराचार्य जी प्रश्नोत्तरी शैली में लिखित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक चर्पटमञ्जरी में लिखते हैं।

1. **द्वारं किमेकं नरकस्य?** नरक का द्वार क्या है? उत्तर दिया गया— **नारी**- अर्थात् **नारी** नरक का द्वार है।
2. **विज्ञान् महाविज्ञतमोऽस्ति को वा?** कौन सबसे महाज्ञानी है।
   उत्तर देते हुए लिखते हैं— **नार्या पिशाच्या न च वञ्चितो यः**-जो राक्षसी नारी द्वारा ठगा नहीं गया।
3. तीसरा प्रश्न करते हैं- **विश्वासपात्रं न किमस्ति?**

विश्वास के योग्य कौन नहीं है?

शंकराचार्य जी कहते हैं— **नारी—** अर्थात् नारी विश्वास के योग्य नहीं है।

इसी प्रकार सायणाचार्य तैत्तिरीय संहिता की भाष्य भूमिका में लिखते हैं—

"स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा"

अर्थात् स्त्रियों को वेदत्रयी कानों से नहीं सुननी चाहिये। इस प्रकार शंकराचार्य सायणाचार्य प्रभृति पौराणिक जगत् में प्रसिद्ध धर्मगुरुओं ने नारियों के वेद पढ़ने-पढ़ाने के अधिकारों को लुप्त कर दिया था। परिणाम यह हुआ धर्म के सभी ठेकेदारों द्वारा इनको सिद्ध वाक्य मानकर नारियों की प्रताड़ना की जाने लगी। स्त्री को पैरों की जूती कहा जाने लगा।

वही नारी जिसने अपने पति की पराजय से क्षुब्ध होकर शास्त्रार्थ किया था, वह दूसरे के हाथ की कठपुतली बनकर रह गई। सामाजिक प्रताडनाओं को मूकपशु के समान सहती रही। बाल विवाह, पर्दाप्रथा, सती प्रथा जैसी विभिन्न कुरीतियाँ ही नारी का धर्म बनकर रह गईं थी। बाल्यावस्था में ही बेमेल विवाह कर दिया जाता था। जिसका परिणाम वह जीवन पर्यन्त सहती थी। वह एक प्रकार से दासी का जीवन बिताती थी। इस प्रकार नारी का जीवन नरकमय बन गया था किन्तु परिवर्तनशील संसार में सौभाग्य से महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। ऋषि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन करते हुए किसी कवि ने क्या सुन्दर लिखा है—

उनके अलौकिक दर्शनों से
दूर होता पाप था
अतिपुण्य मिलता था तथा
मिटता हृदय का ताप था
उपदेश उनके शान्तिकारक
थे निवारक शोक के
सब लोक उनका भक्त था
वे थे हितैषी लोक के।।

महर्षि दयानन्द ने इस दिशा में क्रान्तिकारी कदम उठाकर नारी के हृदय में चेतना, जागृति, साहस एवं नवस्फूर्ति का जागरण कराया। महर्षि ने नारी को राष्ट्र-उत्थान का आधार बताया और दासी को देवी, अर्द्धांगिनी, मातृशक्ति आदि उपमाओं से अलंकृत किया। जो नारी घर की देहली से बाहर नहीं निकलती थी उसको देहली का दीपक बताया। उसके खोये हुये आत्मविश्वास और स्वाभिमान को पुनर्जीवित किया। महर्षि ने मातृशक्ति को वन्दनीया बताया। **"स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्"** के स्थान पर **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"** और **"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य:"** का उद्घोष करके वेदों का ज्ञान सबके लिये अनिवार्य बताया। इस प्रकार भारतीय नारी को उन्नति के सोपान तक ले जाने में महर्षि का योगदान सर्वाधिक रहा है। स्वामी दयानन्द की प्रगतिशील शिक्षाओं से ओत-प्रोत होकर उनके शिष्यों ने भी इस कार्य को आगे बढ़ाया।

आज पुन: भारतीय नारी प्राचीन काल की तरह किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं है। सुशिक्षित होकर सभी क्षेत्रों में मानदण्ड स्थापित कर रही है। महिला पुलिस आयुक्त किरण बेदी ने कितने ही कैदियों के जीवन को नयी दिशा एवं नया मोड़ दिया है। राजनीति के क्षेत्र में सरोजिनी नायडू, इन्दिरा गांधी, सुचेता कृपलानी, सुषमा स्वराज, मेनका गांधी, साध्वी उमा भारती आदि में सुशिक्षित एवं प्रगतिशील नारी के दर्शन होते हैं। ये नारियां राष्ट्र-निर्माण में अग्रणी रहकर नारी जाति के लिए पथ-प्रदर्शक बनी हुई हैं। आज नारी नव चेतना एवं जागृति की भावना से ओत-प्रोत है। वह अपने अधिकार एवं कर्तव्यों का पालन करने में पूर्ण समर्थ है। भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा से युक्त नारी समाज में ऐसे आदर्श प्रस्तुत करती है जिससे राष्ट्र गौरवान्वित होता है। अत: हमें भारतीय संस्कृति की गरिमा का ध्यान रखते हुए यह विचार करना चाहिए कि हमारी वैदिक शिक्षा का स्थान किसी अन्य देश की शिक्षा ने तो नहीं ले लिया? यदि ले लिया है तो उसका हमें प्रतिकार करना चाहिए। क्योंकि-

डूब गया संस्कृति का बेड़ा
तो फिर भारत क्या होगा ।
लुट गई पूंजी परम्परा की
तो फिर भारत क्या होगा ।।

❑❑

आदर्श शिक्षाप्रणाली

—**ब्र० ऋचा** (रायबरेली)
कक्षा— 11

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण किया, जिससे लोगों को जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने का सम्पूर्ण अवसर मिल सके। वे व्यक्ति के साथ समाज के अटूट सम्बन्ध को जानते थे। इसलिए उन्होंने व्यक्ति के हितों को दृष्टि में रखकर आश्रम व्यवस्था की रचना की। प्राचीन काल में शिक्षा गुरुकुलों तथा आश्रमों में ही दी जाती थी। ये आश्रम गांवों एवं जनपदों से दूर वनों या उपत्यकाओं में स्थित होते थे। वैदिक काल में छात्रों का जीवन सरल एवं कठोर अनुशासन से नियंत्रित था शिक्षा काल में शरीर को श्रम योग्य एवं सहिष्णु बनाने के लिए रहन-सहन एवं खान-पान पर पर विशेष ध्यान दिया जाता था। प्राचीन समय में गुरु शिक्षा के बदले में कोई भी शुल्क नहीं लेता था। शिक्षा समाप्ति के पश्चात् शिष्य समावर्त्तन संस्कार के समय अपनी इच्छा, श्रद्धा और सामर्थ्यानुसार गुरु दक्षिणा देता था। वस्तुतः उस समय लोगों की यह धारणा थी कि आचार्य का ऋण धन के द्वारा भी नहीं चुकाया जा सकता-

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं यद् दत्वा त्वनृणी भवेत्।।

प्राचीन काल में धन के बदले शिक्षा देने वाले अध्यापकों को बनिया कहा जाता था। उस समय ऐसे अध्यापक ही नहीं अपितु ऐसे अध्यापकों से ज्ञान प्राप्त करने वाले छात्र भी तुच्छ माने जाते थे। कालिदास ने भी कहा है—

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्-
तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्यागमः केवलजीविकायै
तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।।
(मालविकाग्निमित्रम् 1.17)

इस तरह शिक्षा के सम्बन्ध में वैदिक कालीन अवधारणाओं को देखने के बाद यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि शिक्षा के प्रति सभी धर्मों एवं सभी राष्ट्रों के लोगों की अच्छी भावनायें देखने को मिलती हैं। प्राचीन काल में हमारे ऋषि महर्षियों ने भौतिक आध्यात्मिक ज्ञान के बीच जो समन्वय स्थापित किया है वह उनके अपरिमित ज्ञान का द्योतक है। प्राचीन भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में केवल धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी विषयों को ही नहीं वरन् इनके साथ-साथ अनेक व्यावहारिक विषयों को भी सम्मिलित किया गया था। जैसे—

गुरु ने शिष्य से कहा— तुझे अब व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा के लिए राजा जनक के पास जाना होगा राजा जनक राजकाज करते हुए राजमहलों में सज्ज्ञान को प्राप्त हो गये हैं उन्हें विदेह कहा जाता है। शिष्य बड़ी उलझन में पड़ गया कि ख्यातिलब्ध गुरु के पास रहकर भी घोर तप किया किन्तु फिर भी ज्ञान न हो सका। भला राजमहलों में किस तरह का ज्ञान प्राप्त होगा। किन्तु गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके शिष्य राजा जनक के दरबार में पहुँचा। देखा राजा जनक राजकाज में व्यस्त हैं। राजमहलों में सुख-सुविधा की प्रचुर सामग्री सुलभ है। वह बड़ा हैरान हुआ कि इस विलासी राजा से न जाने क्या मिलेगा? किन्तु फिर भी राजा से अपने आने का मन्तव्य कह सुनाया। राजा जनक ने कहा कि आज तो आप राजमहलों को घूमकर देखें। कल सत्संग और ज्ञान की बातें करेंगे और एक दीपक हाथ में ले लें। राजा ने दीपक थमाते हुए कहा— देखना यह दीपक बुझ न जाये क्योंकि राजमहलों के रास्ते बड़े विकट हैं। भूल भुलैय्या में भटकने का डर है। शिष्य ने महल घूमा तो पर उसके मन में यह डर बैठा रहा कि यदि ये दीपक बुझ गया तो रास्ते से

भटक सकता है, अत: महल भली प्रकार से नहीं देख सका पूरा ध्यान दीपक सम्भालने में रहा।

सोने को सुन्दर सुकोमल बिस्तर पलंगों की व्यवस्था तो थी किन्तु शयनकक्ष में पलंग के ठीक ऊपर नंगी तलवार पतले धागे से लटकती देखकर रातभर सो न सका। शिष्य रात भर सोचता रहा गुरु ने किस मुसीबत में फंसा दिया यहाँ क्या ज्ञान मिलेगा। जान बच जाये यह क्या कम है। प्रात: शिष्य राजा जनक के पास जाकर बोला– महाशय अब क्या आज्ञा है? राजा ने पूछा रात को नींद कैसी आयी पहले यह तो बताइये? शिष्य ने कहा बिस्तर, पलंग आदि की व्यवस्था बहुत अच्छी थी, किन्तु सिर पर नंगी तलवार लटकती देखकर रातभर सो नहीं सका, इससे तो अच्छी नींद हमारे झोपड़ों में आती थी। अब सम्राट् ने कहा कि ठीक है आओ भोजन कर लें। सुस्वादु भोजन का थाल परोसकर शिष्य के सामने रखा और कहा कृपया आप भोजन कर लें, किन्तु एक संदेश आपके गुरु का आया है कि शिष्य को सत्संग में ज्ञान प्राप्त होना ही चाहिए। यदि न हो तो सूली चढ़ा दें। यह समाचार सुनकर शिष्य भोजन का स्वाद भूल गया अब तो उसको सामने सूली नजर आने लगी, बड़े बेमन से भोजन किया और उठ के चल दिया फिर हाथ जोड़कर राजा से प्रार्थना की महाराज अब नहीं करना सत्संग, प्राण बच जायें यही बहुत है।

राजा जनक ने कहा—सत्संग तो हो गया, तुम इतना भी नहीं समझ सके। शिष्य ने कहा वह कैसे? राजा ने कहा जैसे रात तुम दीपक लेकर महल का सुख न भोग सके, इसी प्रकार मुझे हर समय यह ध्यान रहता है कि यह जीवन का दीपक बुझने ही वाला है। अत: मैं रास रंग में रमता नहीं मात्र द्रष्टा बना रहता हूँ। राजकाज करता अवश्य हूँ किन्तु लिप्त नहीं होता। रात को नंगी तलवार देखकर– तुम सो नहीं सके, इसी प्रकार मुझे प्रतिपल मृत्यु का ध्यान रहता है, मृत्यु कभी भी आ सकती है। सुस्वादु भोजन में तुम्हें जिस तरह सूली का संदेश सुनकर स्वाद नहीं आया। इसी प्रकार संसार में सब कुछ चल रहा है घट रहा है किन्तु मुझे भी उस शाश्वत अन्तिम संदेश का प्रतिपल स्मरण रहता है। अत: माया, ममता, मोह, लोभ और आकर्षणों में मैं कभी लिप्त नहीं होता। मैं महल में अवश्य हूँ किन्तु महल मुझमें नहीं। ज्ञानी का यही लक्षण है कि वो संसार में अवश्य है किन्तु संसार उसमें रंचमात्र भी नहीं है। इस प्रकार शिष्य को परमज्ञान प्राप्त हुआ, और उसे व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा मिली। प्राचीन काल की शिक्षा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन कालीन शिक्षा पूर्ण व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित थी। उस समय शिक्षा ऊपर से लादी हुयी कोई चीज नहीं थी, अपितु वह आध्यात्मिक, शारीरिक आत्मिक उन्नति में पूर्ण सहायक थी। प्राचीन भारतीय शिक्षा को पाश्चात्य इतिहासकारों ने इतना अधिक विकृत कर दिया है, जबकि आज सम्पूर्ण विश्व इस शिक्षा पद्धति को श्रेष्ठ मान रहा है, किन्तु भारतीय इसे तिरस्कृत कर रहे हैं। लेकिन वह प्राचीन शिक्षा व्यवस्था ही थी जहाँ श्रीकृष्ण, सुदामा, द्रुपद एवं द्रोण एक साथ शिक्षा ग्रहण करते थे और उनमें किसी प्रकार का भेदभाव देखने को नहीं मिलता।

प्राचीन शिक्षण पद्धति के सम्बन्ध में आज समाज में बहुत ही गलत धारणायें व्याप्त हैं। लोग इसे अमनोवैज्ञानिक, अरुचिपूर्ण शिक्षक-केन्द्रित तथा तोता रटन्त आदि दोषों को देखते हुये त्याज्य मानने लगे हैं। ऐसी बात नहीं है कि प्राचीनकाल में ऋषियों को शिक्षण विधि का ज्ञान नहीं था। बिना उपयोगिता के उस समय की शिक्षा व्यवस्था इतनी सुव्यवस्थित नहीं हो सकती थी कि हजारों वर्षों की गुलामी एवं शिक्षा व्यवस्था पर बार-बार आघात पहुँचाने के पश्चात् आज भी लोगों के मन मस्तिष्क में प्राचीन शिक्षा छायी हुयी है। यही प्राचीन काल की शिक्षा प्रणाली के महत्व को प्रदर्शित करती है—

जो मृत्यु के उपरान्त सबके लिये शान्तिप्रदा
है उपनिषद्विद्या हमारी एक अनुपम सम्पदा।
इस लोक परलोक से करती वही एकत्र है
हम क्या कहें उसकी प्रतिष्ठा हो रही सर्वत्र है।।

❑❑

चरित्र : जीवन का दर्पण

कु० दीक्षा (चांदपुर)
कक्षा–10

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु।। (यजु. 4.28)

हे परमपिता परमात्मन्! आप मुझे दुराचार से हटाकर उत्तम चरित्र में स्थापित कीजिये। मैं जीवन्मुक्त महापुरुषों का अनुगामी होकर दीर्घायु से युक्त उत्कृष्ट और शुभ जीवन से युक्त होकर उत्तम मार्ग में स्थिर रहूँ।

वास्तव में चरित्र राष्ट्र की अक्षय निधि होती है, वह भी इतनी सशक्त और अद्‌भुत कि यदि देश व राष्ट्र का सर्वस्व लुट जाये और चरित्र बच जाये तो समझो नष्ट होने से सब कुछ बच गया है और यदि राष्ट्र चरित्रहीन हो गया है, तो समझना चाहिये कि सर्व सामर्थ्य सम्पन्न होते हुए भी वह राष्ट्र या समाज अपना सर्वस्व लुटा चुका है।

किसी अंग्रेजी विद्वान् ने ठीक ही कहा है–

When wealth is lost nothing is lost
When health is lost something is lost
When character is lost everything is lost

'यदि मनुष्य का धन नष्ट हो जाता है तो समझो कुछ नष्ट नहीं हुआ, यदि मनुष्य का स्वास्थ्य नष्ट हो जाये तब कुछ नष्ट होता है और यदि चरित्र नष्ट हो गया तो समझो सब कुछ नष्ट हो गया।'

नेपोलियन बोनापार्ट ने भी कहा है– **'Be a man of action and high character.'**

चरित्रहीन व्यक्ति का उद्धार तो वेद भी नहीं कर सकते हैं– **आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।**

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब–जब देश में चरित्रहीनता बढ़ी, तब–तब देश को अवर्णनीय क्षतिग्रस्त हो हजारों वर्षों तक परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ना पड़ा तथा जब देश ने चरित्र की रक्षा की तो संसार का सिरमौर विश्वगुरु कहलाया एवं विश्व को सुख शान्ति का सन्देश दिया अतः राष्ट्र का चरित्रशाली होना परमावश्यक है। चरित्र निर्माण का एक मात्र अधिष्ठान है गुरुकुल, जहाँ ब्रह्मचर्य और सदाचार की प्रदीप्त प्रखर भट्टी में राष्ट्र के भावी कर्णधारों का निर्माण होता है। जब बालक गुरुकुल में पढ़ने आता है, तब समित्पाणि होकर गुरुचरणों में जाता है और वहां चरित्र निर्माण के बारे में गुरुजन उपदेश देते हैं– **चरित्रांस्ते शुन्धामि**- मैं तेरे चरित्र को पवित्र बनाता हूँ, इस प्रकार गुरुकुलों में राष्ट्र निर्माण के सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जाती है।

किसी कवि ने चरित्र के सम्बन्ध में क्या ही सुन्दर कहा है–

मणिमुक्ता चाहूँ नहीं, नहीं चाहूँ निर्वाण।
मैं चाहूँ सच्चरित्र युक्त जीवन शुद्ध महान्।।

चरित्रवान् व्यक्ति का प्रत्येक स्थान पर आदर और सम्मान होता है। इसे एक छोटे से दृष्टान्त के माध्यम से समझाने का प्रयास कर रही हूँ–

एक बार स्वामी विवेकानन्द जी महाराज अमेरिका में शिकागो के किसी मार्ग पर भ्रमण कर रहे थे, चलते–चलते उन्होंने अपने पीछे चलने वाले एक स्त्री–पुरुष के जोड़े को देखा और अपने वस्त्र के बारे में उन्होंने यूं कहते हुए सुना– **'Look at this gentleman'** (इस महाशय को देखो)

इस कथन को सुनकर स्वामी जी समझ गये कि अमेरिका निवासी मेरे भारतीय वेश–भूषा को हीन दृष्टि से देखकर इसका मजाक उड़ा रहे हैं। अतः वे रुके और उस महिला को सम्बोधित करते हुए बोले– बहिन! इन कपड़ों को देखकर आश्चर्य मत करो– देखो इस देश के पुरुषों को तो कपड़े सज्जन बनाते हैं, परन्तु मैं जिस देश का निवासी हूँ वहाँ पर चरित्र ही मनुष्यों को सज्जन

बनाता है। इस अपूर्व बात को सुनकर वह दम्पती विवेकानन्द जी के चरणों में झुक गया। यदि आप भी कुछ बनना चाहते हैं तो चरित्रवान् बनिये। वस्तुत: चरित्र जीवन का दर्पण है। जैसे फूल, चन्दन आदि की सुगन्ध कुछ समय के लिए होती है। परन्तु चरित्र की सुगन्ध मनुष्य को अमरता प्राप्त करा देती है।

चरित्र एक ऐसी चीज है जिसकी सुगन्धि फूलों की तरह चारों दिशाओं में फैल जाती है–

एक फूल झड़ गया जमीन पर
कह गया कि देह नाशवान् है।
मगर जियो जहां सुगन्धि दे सको
अखिल विश्व ही ईश का निधान है।।

पुष्प की तरह हमें भी संसार में जीना है क्योंकि शरीर नाशवान् है–

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।।

अर्थात्- शरीर रहने वाला नहीं है। धन-सम्पदा भी अनित्य है और मृत्यु हर समय सिर पर मंडराती रहती है इसलिए शीघ्र ही धर्म-संग्रह करना चाहिए। धर्म के मार्ग पर बहुत सी विपत्तियाँ आती हैं। पर इन विपत्तियों में नहीं घबराना चाहिए। हिम्मत से काम लेना चाहिए–

जितने कष्ट कण्टकों में हैं
जिनका जीवन-सुमन खिला।
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही
यत्र-तत्र-सर्वत्र मिला।।

अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए व्यक्ति को कष्ट भी उठाने पड़ते हैं। किसी अंग्रेजी लेखक का कहना है–

Have a purpose in life and having it throw into your work such strength of mind muscles as God has given you.

अपने जीवन का लक्ष्य बनायें और उसके पश्चात् अपना सारा शारीरिक और मानसिक बल जो ईश्वर ने हमें दिया है उसमें लगा दें। हम इस उम्र में ही सब कुछ कर सकते हैं। केवल जागने की आवश्यकता है।

चट्टानों को जो चटका दे रवानी उसे कहते हैं
दिल पर नक्शा हो जाये जो कहानी उसे कहते हैं।
क्या बतायें आपको करिश्मा क्या होता है
पलट दे जो हिमालय को जवानी उसे कहते हैं।

हमें ऐसे समाज में रहना चाहिए जहां पर हम अपने कर्तव्य को पहचानते हुए गुरु के बताये हुए मार्ग पर चल सकें या उनके आदर्शों को अपना सकें। हमें समाज को ही मन्दिर समझना चाहिए। जिनका जीवन सादा हो, जो सदाचारी, धर्मात्मा, परोपकारी, अक्रोधी, संतोषी और कर्मशील हों, अपने आपको उन्हीं महापुरुषों से सम्बन्धित करना चाहिए। हमें उन महापुरुषों की जीवनी पढ़नी चाहिए, जिनका नाम इतिहास में सूर्य और चन्द्रमा की भांति चमकता है। प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए, आत्मनिरीक्षण करके देखना चाहिए कि हम मनुष्यता से ऊपर उठकर देवत्व की ओर जा रहे हैं या नहीं, अपने स्वार्थ के लिए कभी भी धर्म नहीं छोड़ना चाहिए, ईश्वर को धोखा देने का प्रयास नहीं करना चाहिए। पाप करने से सदा ही बचें और चरित्रवान् बनें। अन्त में एक कवि के शब्दों में प्रभु से प्रार्थना है-

सत्संग सेवा सत्य से प्रेरित हमारा प्राण हो।
माँ भारती के बालकों का शुभ चरित्र-निर्माण हो।

□□

धवल धाम नयनाभिराम भूकम्पों से ढह जाते हैं।
गज तुरंग वाहन पानी की बाढ़ों में बह जाते हैं।।
अन्त चिता में बड़े-बड़े बलवन्त देह दह जाते हैं।
सत्पुरुषों के चरित्र करोड़ों कण्ठों में रह जाते हैं।।

भारतीय संस्कृति में गुरुकुलों का महत्त्व

—ब्र० पवित्रा वर्मन् (बंगाल)
कक्षा- 11

विष्णु पुराण में भारतीय संस्कृति की महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति
भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा अधिक धन्य हैं। उर्दू कवि इकबाल ने भारतीय संस्कृति की महत्ता को इस प्रकार प्रकट किया—

यूनानो मिस्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,
बाकी है मगर अब तक नामो निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा।।

'वह कुछ बात' क्या है? वह बात है हमारी सभ्यता और संस्कृति। हमारी संस्कृति प्रथम संस्कृति है, प्राचीन संस्कृति है। जब तक हमारी संस्कृति और सभ्यता हमारे समक्ष रहेगी तब तक कोई देश, जाति और सम्प्रदाय हमें नष्ट नहीं कर सकता। सूर्य भी बादलों से छिप जाता है, परन्तु थोड़ी देर में बादल तितर-बितर हो जाते हैं और सूर्य फिर उसी प्रखरता से चमकने लगता है। इसी प्रकार भारतवर्ष में भी ग्रीक, हूण, शक, अफगानी, ईरानी, तुर्क, मुगल, अंग्रेज सब आये, आने वालों में शायद पच्चीस प्रतिशत ही वापस गये होंगे। बाकी यहीं रह गये। रहे ही नहीं यहीं के हो गये। सबकी सभ्यताएँ अन्ततोगत्वा मिली-जुली और भारतीय बन गयीं, इसका प्रमुख कारण यहाँ की संस्कृति ही है।

भारत की संस्कृति प्रारम्भ से ही वेदों की शिक्षा से ओतप्रोत रही है। इसी कारण यहाँ पर गुरुकुलीय पद्धति से तत्कालीन विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के आविष्कर्त्ता यहाँ के तत्त्ववेत्ता, ब्रह्मज्ञानी, तपः पूत, दिव्य-द्रष्टा, प्रत्युत्पन्नमति, कुशाग्रबुद्धि, ऋषि मुनि थे। इन्होंने वेदों की शिक्षा तथा वैदिक वाङ्मय के दिव्य सन्देशों को मानव मात्र तक पहुँचाने के प्रयास किये। इनके प्रयासों के फलस्वरूप इस देश ने संसार को जितने उत्तम और श्रेष्ठ सदाचारी विद्वान् महापुरुष दिये हैं, उतने किसी और देश ने नहीं दिये।

विश्व की नजरों में भारत

1. 'कर्नल टाड' के ये शब्द भारत के अतीत की स्वर्णिम वेला का स्मरण दिलाते हैं— "हम उन ऋषियों को अन्यत्र कहाँ पा सकते हैं जिनके ग्रन्थ प्लेटो, शेल्स और पैथागोरस के गुरु हैं। हम उन ज्योतिषियों को कहाँ प्राप्त कर सकते हैं जिनका ग्रहमण्डल सम्बन्धी ज्ञान आज भी यूरोप में आश्चर्य उत्पन्न करता है। हम उन कारीगरों और मूर्तिकारों से कहाँ मिल सकते हैं जिनके कृत्य हमारी प्रशंसा के पात्र हैं। हम उन गायकों (सामवेदी) को कहाँ देख सकते हैं जो मानवीय दुःख को आनन्द की ओर दौड़ा सकते हैं आँसुओं की मन्द मुस्कान में।

2. 'एडवर्ड कारपेंटर' के विचार हैं— इतिहास का अवलोकन हमें इस परिणाम पर पहुँचाता है कि प्राचीन काल से लेकर शॉपेनहॉवर और ह्विटमैन तक वेदों में दिये जो बीज रूप में विचार हैं वे ही प्रत्येक धर्म और प्रत्येक दर्शन-शास्त्र के प्रेरक सिद्ध हुए हैं और वर्तमान

विज्ञान इन अनादि सिद्धान्तों के लिए दृष्टान्तों और शब्द रचना का एक नवीन वस्त्र तैयार कर रहा है।

3. पश्चिम देश के प्रकाण्ड विद्वान् प्रोफेसर मैक्समूलर ने सन् 1858 में महारानी विक्टोरिया को पत्र में लिखा था— सम्पूर्ण विश्व में समस्त प्राकृतिक साधनों, सौन्दर्य, शक्ति और सम्पत्ति से समलंकृत देश मेरे विचार से भारतवर्ष ही है।

उपर्युक्त विद्वानों के विचारों से प्रमाणित होता है कि हमारी संस्कृति कितनी गौरवपूर्ण थी। इस अनुपम संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंश गुरुकुलीय परम्परा से विद्या-अर्जन करना भी है। मनुष्य अपने जन्म समय में पशु से भी गिरा होता है परन्तु प्रायः वह अपने मरण समय पर देवत्त्व को भी पार कर चुका होता है—

Man is worst animal at the time of his birth. But often becowes angel at the time of his death.

इतना बड़ा परिवर्तन कैसे आता है, किस प्रकार और कैसे मनुष्य, मनुष्यत्व व देवत्व को प्राप्त होता है, जब इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो एकमात्र उत्तर शिक्षोपार्जन ही दृष्टिगत होता है। वह शिक्षाप्रणाली जो मानव को दानवता से बचाकर देवत्व तक ले जाती है वह शिक्षा केवल भारत में विद्यमान है। यदि हम अपनी प्राचीन संस्कृति का सिंहावलोकन करें तो आश्चर्य के साथ-साथ गौरव का अनुभव करते हैं, उस गौरव को शब्दों या लेखनी से नहीं व्यक्त किया जा सकता।

किन्तु बड़े खेद की बात है कि महाभारत के युद्ध में राष्ट्र का सर्वस्व नष्ट हो चुका था, तथापि यत्र-तत्र प्राचीन संस्कृति विद्यमान थी। किन्तु आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति बहुत ही शोचनीय अवस्था तक पहुँच गयी है। मुसलमानों और अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति को जड़ से ही मिटाना चाहा। उन्होंने वेद, उपनिषद आदि की खिल्लियाँ उड़ाईं। साहित्य, इतिहास तथा हिन्दू धर्मग्रन्थों को जला दिया, इतना ही नहीं इन लौहरूपी दरिद्रों ने भारत रूपी पारसमणि को वश में रखने के लिए न जाने कितने षड्यन्त्र रचे। इन्हीं षड्यन्त्रों में एक षड्यन्त्र अंग्रेजों ने वेदों से भारतीयों की श्रद्धा समाप्त करने के लिए सन् 1835 में रचा। लार्ड मैकाले ने 1835 में मैक्समूलर को ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में नौकरी दिलवाई। इसलिए कि वह वेदों के प्रति भारतीयों में जो आस्था है, उसे नष्ट करने का प्रयास करे। लार्ड मैकाले ने जो भी कार्य भारत में किया है वह सब कार्य एक षड्यन्त्र का रूप था।

उन्होंने अपने पिता के पास सन् 1839 में एक पत्र लिखा था जिसकी मुख्य पंक्तियाँ निम्न हैं—

"English education would train up a class of person Indian in blood and colour but english is tastes in openions, in morals and in entellect."

अर्थात् अंग्रेजी शिक्षा एक ऐसे वर्ग को शिक्षित करेगी जिसका खून और रंग तो भारतीय होगा किन्तु वह अपनी रुचि, सम्मति, आचार व्यवहार और बुद्धि में अंग्रेज होंगे।

लार्ड मैकाले ही नहीं अपितु सर मोनियर विलियम, विल्सन, जैकोबी आदि प्रोफेसरों ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया। अंग्रेजों का उद्देश्य था भारतीयों को दिग्भ्रमित करना। क्योंकि अंग्रेजों की यह नीति रही—

"If you want to destory a nation. Destory its history and the nation will perish of its won accord.

अर्थात् यदि तुम किसी देश को नष्ट करना चाहते हो तो इसके इतिहास को नष्ट कर दो, फिर राष्ट्र स्वयं नष्ट हो जायेगा। इसी योजना को क्रियान्वित करने के लिए आर्थर मैक्डानल ने सन् 1899 में संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखा, जेम्स मिल जैसे पश्चिमी लेखकों ने भारत का इतिहास लिखा। जिन्हें भारत की संस्कृति के बारे में कुछ मालूम न हो, वह व्यक्ति भला भारत का

इतिहास क्या लिखेगा ? जरा देखिए इन लेखकों ने अपनी पुस्तक में क्या लिखा है—

'राबर्ट आर्गे' लिखता है— "हिन्दू खून बहाने से घृणा करते हैं ये खून देखकर ठिठक जाते हैं। यह भीरुपन इनके कमज़ोर शरीरों के कारण है। ये शरीर से इतने दुर्बल हैं कि सुदूर उत्तर के इलाकों के निवासियों के हमलों का कदापि मुकाबला नहीं कर सकते।"

जेम्स मिल लिखता है— "मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक सभ्य थे और उनके सम्पर्क से हिन्दुओं में सभ्यता का विकास हुआ।" इसी प्रकार माउट स्टुअर्ट एलफिंस्टन ने सन् 1841 में अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' में लिखा है— कि हिन्दू कायर, आलसी, अन्धविश्वासी, धूर्त, दब्बू तथा दबंग स्वभाव और बुद्धि से सर्वथा रहित हैं। खेद की बात है हम जो इतिहास आज पाठ्य पुस्तकों में पढ़ रहे हैं उनमें केवल अंग्रेजों तथा मुसलमानों का ही वर्चस्व दर्शाया गया है। ब्रिटिश सरकार ने इन्हीं लेखकों की पुस्तकें आई. सी. एस. के लिए निर्धारित की थीं। फिर विचार कीजिए हमारे रिसर्च स्कालरों की विचारधारा कैसी बन रही होगी। निश्चित ही वे सब अपने देश के महापुरुषों तथा वीरों से अपरिचित होंगे। आज के मॉडर्न जनरेशन से यदि किसी स्कूल, कॉलेज में पूछा जाये कि भगत सिंह, लाला लाजपत राय, स्वामी दयानन्द आदि का जन्म कब हुआ था तो शायद ही कोई बता पाये।

आज हमारा देश भारत स्वतन्त्र है परन्तु मानसिक रूप से परतन्त्र है। आज भारतीय अपने को भारतीय कहने में शर्म अनुभव करते हैं। आधुनिक भारत में नवयुवक-नवयुवतियों का पाश्चात्य सभ्यता की ओर झुकाव, सिनेमा, टी. वी. आदि प्रबल आकर्षण आदि को देख कर ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम अपने पूर्वजों को ही भूल गये हैं। इन सब के पीछे मेरी दृष्टि में दो कारण हैं— 1. आधुनिक शिक्षा पद्धति में आध्यात्मिकता का अभाव, 2. गुरुकुल परम्परा का लुप्त होना।

Self-reverence, self knowledge self control these three alone lead life to sovereignity.

अर्थात् विश्वास, आत्मज्ञान और आत्म संयम ये तीन, जीवन को परम शक्ति सम्पन्न बना देते हैं। आज संस्कारों के अभाव में विश्वास, ज्ञान, संयम सब कुछ लुप्त सा हो गया है।

आज हम आध्यात्मिकता को छोड़कर भौतिकता को अपना रहे हैं और प्राचीन शिक्षा पद्धति को छोड़कर आधुनिक शिक्षा से ओतप्रोत हो रहे हैं। आज गुरुकुलों का स्थान मॉडर्न स्कूलों ने ले लिया है। ऐसी विषम परिस्थिति में विषाक्त वातावरण में हम अपने देश को किस तरह विदेशी लुटेरों से बचायें, जो आज भी विडाल की भाँति ताक लगाये बैठे हैं यह विचारणीय विषय है। आज आवश्यकता है पूर्वजों के बताये हुए मार्ग पर चलकर अपनी संस्कृति को जानने की, अपने देश में उत्पन्न महापुरुषों के जीवन चरित्रों को पढ़ने की।

Great men are meleors designed to burn so that the earth may be lighted.

महापुरुष उल्काएँ हैं, जो प्रदीप्त होने के लिए रची गई हैं। हमें भी दूसरों को प्रकाश देना चाहिए। हम भी इस देश के भावी कर्णधार हैं। हमें आवश्यकता है मार्ग दर्शन करने के लिए आदर्श गुरु की जिससे हम इन्सान बन सकें।

हमने सीखा है पक्षियों की
तरह आकाश में उड़ना।
हमने सीखा है मछलियों की
तरह पानी में तैरना।।
आवश्यकता है कि हम सीख लें।
मानव बन कर धरती पर चलना।।

मेरी दृष्टि में गुरुकुल ही एक ऐसी संस्था है, जिसमें संस्कारों के साथ-साथ नैतिक ज्ञान, चरित्र निर्माण, श्रद्धा, सहनशीलता आदि की शिक्षा दी जाती है, इन सब गुणों

को अपना कर हम स्वयं प्रकाशित होने के साथ-साथ दूसरों को भी प्रकाश दे सकते हैं-

Lives of great men all remind us, that we can Make our lives sublime, and departing leaves behind us, the foot prints on the sand of time.

हमारी पूज्या आचार्या डॉ. प्रियंवदा वेदभारती जी का जीवन एक समिधा की भाँति है, जो स्वयं को जलाकर दूसरों को प्रकाशित कर रही हैं, जिन्होंने परोपकार को ही अपने जीवन में अपनाया है। महान् लोग परोपकार के कार्य किसी से प्रेरित होकर नहीं करते, स्वत: ही लगे रहते हैं। संस्कृत के कवि ने क्या ही सुन्दर कहा है-

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति,
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रजालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः।।

इस श्रेष्ठ कर्त्तव्य को To be doing good is man's most glowis task. करने के लिए आचार्या जी ने गुरुकुल रूपी पौधे को लगाया जिसमें अब फूल लगने प्रारम्भ हो चुके हैं। शनैः शनैः चारों दिशाओं में सुगन्ध फैला रहे हैं। विशेष बात तो यह है कि इस पेड़ की छाया में बहुत सारे ऐसे भी पक्षी हैं जो नीडहीन होकर नीड ढूँढ़ भी रहे हैं, और उन प्यासे पक्षियों को केवल नीड ही नहीं एक मानव बनने का अवसर प्राप्त हो रहा है।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि आप सभी इस स्मारिका को पढ़कर गुरुकुलों को समझने का प्रयास करेंगे और उनके साथ जुड़कर भारत को भव्य बनाने का संकल्प लेंगे-

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।।

अन्त में इतना और लिखना चाहती हूँ-

गौरवमयी संस्कृति हमारी।
पहचानो गौरवमय इतिहास को।।
कुसंस्कारों को मिटा डालो।
जला दो अन्धविश्वास को।।

❑❑

जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं *—दयानन्द*

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण ही शिक्षा है *—अरस्तू*

शिक्षा वह है जो हमें केवल सूचनाएँ ही नहीं देती अपितु हमारे जीवन और सम्पूर्ण सृष्टि में तादात्म्य स्थापित करती है *—टैगोर*

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण

—ब्र० दीपिका (हरदोई)
शास्त्री प्रथम वर्ष

भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः।।

ऋग्वेद 10/164/2

अर्थ— भद्र चाहने वाले मनुष्य को सर्वदा अपने से अन्य जीव-जन्तुओं पर अपनी शुभ दृष्टि रखनी चाहिए, जिससे समस्त पर्यावरण उत्तम रहे।

मानव जीवन को उन्नत बनाने या उसे आदर्श जीवन बनाने के लिए जिन आधारभूत सिद्धान्तों की आवश्यकता होती है वे सभी सिद्धान्त या आदर्श वेदों में सन्निहित हैं। मनु महाराज ने कहा है **सर्वं वेदात् प्रसिध्यति** अर्थात् वेदों में सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है। चाहे वो प्राणी विज्ञान हो या राजनीति विज्ञान, आयुर्विज्ञान या पर्यावरण विज्ञान सभी का मूल आधार वैदिक वाङ्मय ही है। वैदिक ऋषियों ने शुद्ध एवं समृद्ध पर्यावरण मानव एवं उसके विकास के लिए अनिवार्य माना है।

पर्यावरण क्या है?

(What is Environment)

पर्यावरण शब्द परि और आङ् उपसर्ग पूर्वक वृञ् वरणे धातु से बना है। जिसका अर्थ है चारों ओर का वातावरण। आवरण का अर्थ है— घेरा अतः पर्यावरण शब्द का अभिप्राय हुआ, जीव-जन्तु, पौधे, वायु ताप आदि अर्थात् वातावरण का वह परिवेश जिससे हम घिरे हुए हैं। इस प्रकार जो किसी वस्तु या प्राणी को चारों ओर से ढके हुए है उसे पर्यावरण कहते हैं। यह अपने व्यापक अर्थ के कारण तीन बातों का संकेत दे रहा है—

प्रश्न 1. कौन घिरा हुआ, 2. किससे घिरा हुआ, 3. कहाँ घिरा हुआ?

उत्तर— 1. जीव, 2. परिस्थिति, पदार्थों और शक्तियों से 3. स्थान।

जो भी बाह्य शक्ति या पदार्थ किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राणी के जीवन को प्रभावित करते हैं वे सभी पर्यावरण के अन्तर्गत आते हैं, जिन्हें हम प्रकाश, ताप, मिट्टी वायु, जल आदि नामों से जानते हैं। मानव जीवन पर पर्यावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण के बिना प्राणी का जीवन एक पल भी सम्भव नहीं है मानव पर्यावरण के साथ समायोजन करके उसे अनुकूल बनाने का प्रयास तो करता है किन्तु समायोजन के इस मायाजाल में मानव आज इतनी बुरी तरह उलझ गया है कि वह समायोजन के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता जा रहा है और पर्यावरण को विनाश के कगार पर पहुँचा रहा है।

आज हम जो भी खा रहे है वह प्रदूषित है जो भी पी रहे है वह प्रदूषित है। हम जो श्वास ले रहे हैं वह भी प्रदूषित है। आणविक विस्फोट, जहरीली गैस, कल-कारखानें आदि से आज का पर्यावरण पूरी तरह प्रदूषित हो चुका है। परिणामतः आज मनुष्य का जीवन संकट में है।

वायु— पर्यावरण के सन्तुलन हेतु वायुमण्डल में प्रत्येक गैस की मात्रा निश्चित होती है। सामान्य रूप से वायु में 21% ऑक्सीजन, 78% नाइट्रोजन, 0.03% कार्बन डाई आक्साइड तथा 1% अन्य गैसें होती हैं। वायु में अन्य जहरीली गैसों के मिलने के कारण इसकी संरचना में परिवर्तन होने से वायु प्रदूषण होता है।

किसी भी स्वचालित वाहन में 1 गैलन पैट्रोल के दहन से 3 पौण्ड नाइट्रोजन ऑक्साइड गैस निकलती है जो 5 से 20 लाख घनफुट हवा को प्रदूषित कर देती है। एक मोटर वाहन 970 किलोमीटर की यात्रा में उतना

ऑक्सीजन नष्ट कर देता है जितना एक व्यक्ति को एक वर्ष के लिए आवश्यक होता है।

जल समस्या व प्रदूषण

हमारी पृथ्वी में 72% जल है। जो कि प्रदूषण के कारण लगभग 70% प्रदूषित हो चुका है। हम अनुमान लगा सकते हैं कि आज संसार में शुद्ध जल की कितनी कमी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अनुसार आज लगभग 50% लोगों को शुद्ध पानी नहीं मिल रहा है। भारत की नदियों की भी यही स्थिति है यहाँ गंगा, यमुना जैसी पवित्र नदियों का जल भी प्रदूषित हो चुका है। सरकार इस प्रदूषण को रोकने के लिए नये पैमाने पर कानून बनाती है किन्तु इन कानूनों का उल्लंघन खुले आम हो रहा है। प्रदूषित करने वालों को कोई सजा नहीं मिल रही है।

जंगल की समस्या

चेरापूँजी जो विश्व का सबसे अधिक वर्षा का केन्द्र था, आज वही वर्षा का केन्द्र मरुस्थल में परिवर्तित हो रहा है। वन और वर्षा का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज भारत में केवल 23% क्षेत्र ही फॉरेस्ट (जंगल) विभाग के अन्तर्गत है जिसमें केवल 10-12% ही हरियाली है। आज कल-कारखानों के निर्माण के लिए जंगल की अन्धाधुन्ध कटाई लोग करते ही जा रहे हैं। जिसके कारण वनस्पति, ओषधि, पेड़-पौधे तथा प्राणी मात्र के जीवित रहने के लिए अत्यावश्यक ऑक्सीजन गैस में कमी आ रही है।

ध्वनि प्रदूषण

एक निश्चित सीमा (70 से 80 डे.) से अधिक ध्वनि मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। आज वैज्ञानिक यन्त्रों, वाहनों के हार्न, वाद्य यन्त्रों की ध्वनि, जनरेटरों की खड़खड़ाहट, आटा चक्की, सिनेमागृह, शहरी भीड़, लाउडस्पीकर आदि से जो ध्वनि निकल रही है वह मानक सीमा से अधिक होने के कारण ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न कर रही है। परिणामत: कर्णेन्द्रिय तो प्रभावित होती ही है मानव के विभिन्न अंगों पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। तद्यथा-पाचन तन्त्र एवं तन्त्रिका तन्त्र पर विपरीत प्रभाव, रक्तचाप, तीव्र हृदय गति, हार्ट अटैक, सिरदर्द, बेचैनी, चक्कर आना, जी मिचलाना, थकान, मिर्गी, सहनशक्ति की कमी, चिड़चिड़ापन, क्रोध, भ्रम, अनिद्रा, एकाग्रता में कमी आदि शारीरिक मानसिक रोग ध्वनि प्रदूषण के द्वारा हो रहे हैं।

रक्षा कवच

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नियन्त्रण हेतु पृथ्वी की सतह से ऊपर आकाश में विद्यमान वायुमण्डल में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बनडाई-आक्साइड, ओजोन आदि गैसों के मिश्रण से बनी अनेक परतें होती हैं। इन गैसों में ठोस प्राण वायु ओजोन (Ozone) नामक गैस की मात्रा बहुत कम होती है। ओजोन गैस की यह परत सभी प्राणियों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सूर्य तथा ब्रह्माण्ड में अन्य नक्षत्रों से आने वाली शक्तिशाली व पराबैंगनी किरणों (Ultravioletrays) को पृथ्वी पर आने से रोकती है साथ ही पृथ्वी पर से अन्तरिक्ष की ओर जाने वाले ताप विकिरण (इन्फ्रा रेड रेडियेशन) को वापस पृथ्वी पर भेज कर जीवों की रक्षा में सहायता करती है आज इस रक्षा कवच (ओजोन) परत में बहुत बड़ा छिद्र हो गया है। इस छिद्र के होने में सबसे खतरनाक गैस क्लोरोफ्लोरो कार्बन है। इस खतरनाक गैस का प्रयोग रेफ्रिजरेटरों, वातानुकूलित संयंत्रों, दुर्गन्धनाशक पदार्थों, प्रसाधनों, फास्ट फूड को ताजा रखने वाले साधनों, ग्रीन हाउसों में किया जाता है। यदि इसी प्रकार सब कुछ चलता रहा तो लोग कैंसर, टी. बी., आँखों में ट्यूमर आदि भयंकर रोगों से ग्रस्त हो जायेंगे और पेड़-पौधे भी प्रभावित हो जायेंगे।

वेदों में पर्यावरण एवं संरक्षण

वेदों में पर्यावरण से सम्बन्धित मन्त्र अनेक स्थानों पर मिलते हैं, **अदीनाः स्याम शरदः शतम्** की प्रार्थना करने वाले मानव को वेद भगवान् ने पर्यावरण से सुरक्षित रहने एवं प्रदूषण से बचने की चेतावनी दी है तथा उपाय भी बताये हैं—

अग्रं पिबा मधूनां
सुतं वायो दिविष्टिषु।
त्वं हि पूर्वपा असि।।

ऋग्वेद 4/46/1)

अर्थात् हे वायु! वनस्पति का सोम पान कर पर्यावरण में संतुलन कायम कर।

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन्।।

(अथर्व. 3/21/10)

अर्थात् पर्वत, जल, वायु, वर्षा और अग्नि प्रदूषण दूर करके पर्यावरण को शुद्ध करते हैं।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ
शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु
शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।।

(ऋग्वेद– 7/35/5)

हे प्रभो! जब हम प्रातः काल आँखें खोलें तब पृथ्वी लोक और द्युलोक हमारे लिए सुखकारी हों। जब हम अन्तरिक्ष की ओर आँख उठाकर देखें तो अन्तरिक्ष भी हम पर सुख की वर्षा करे। पृथ्वी की सम्पूर्ण वनस्पतियाँ हमारे लिए मंगलकारी हों। हे विश्वपते! आपकी ऐसी कृपा हो जिसमें हम ऐसे शुभकार्य करें जिनसे हमारे चारों ओर सुखों की वर्षा होती रहे।

आज संसार के वैज्ञानिक चिन्तित हैं और अनेक उपाय अपना रहे हैं किन्तु जब तक प्रत्येक व्यक्ति इसके प्रति सतर्क रहकर अपना योगदान नहीं करेगा, तब तक समाधान नहीं हो पायेगा। इसके लिए आवश्यक है कि सभी पर्यावरण के महत्त्व तथा रक्षक उपायों को गम्भीरता से समझें एवं व्यवहार में लायें। वेदशास्त्रों ने पर्यावरणीय घटकों की शुद्धता के लिए हमें एक ऐसा अमोघ उपाय प्रदान किया है जो सभी तत्त्वों पर अपरिहार्य रूप से अपना प्रभाव छोड़ता है, वह उपाय है– '**यज्ञ**'। वेदों में पर्यावरणीय तत्त्वों को यज्ञ की हवियों से युक्त कर शुद्ध रखने का निर्देश दिया गया है–

हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ आ विवासति।
हविष्मान् देवोऽध्वरो हविष्माँ अस्तु सूर्यः।।

(यजुर्वेद 6/23)

अर्थात् यज्ञीय हवियों के द्वारा हम जलों को, आकाश को, सूर्य आदि को हविष्मान् करें, जिससे उनमें शुद्धि होकर प्रदूषक अथवा हानिकर तत्त्व नष्ट हो जायें। 'तैत्तिरीय उपनिषद् के' "**विज्ञानं यज्ञं तनुते**" वाक्य से ज्ञात होता है कि यज्ञ एक विज्ञान है और इसकी प्रक्रियाएँ वैज्ञानिक हैं। आधुनिक विज्ञान इस तथ्य को स्वीकार करता है कि यज्ञ में प्रदत्त हवियां नष्ट नहीं होती अपितु स्वरूप बदलकर सूक्ष्म और व्यापक होकर तीव्र प्रभावकारी हो जाती हैं। पूना के फर्ग्युसन कालेज के जीत्राणु शास्त्रियों ने एक प्रयोग किया। उन्होंने 36 × 22 × 10 घनफुट के एक हॉल में एक समय का अग्निहोत्र किया। परिणामस्वरूप 8000 घनफुट वायु में कृत्रिम रूप से निर्मित प्रदूषण का 77.5% हिस्सा खत्म हो गया। इतना ही नहीं इसी प्रयोग से उन्होंने पाया कि एक समय के ही अग्निहोत्र से 96% हानिकारक कीटाणु नष्ट होते हैं।

इस प्रकार यज्ञ एक आध्यात्मिक उपासना का साधन होने के साथ-साथ पर्यावरण को शुद्ध करने, उसे रोग और कीटाणुरहित रखने तथा प्रदूषण रहित रखने का अप्रतिम साधन है। कदाचित् इसीलिए ऋषियों ने, साधकों ने, तत्त्ववेत्ताओं ने यज्ञ को धर्म के साथ जोड़ा, दैनिक जीवन के साथ जोड़ा जिससे मनुष्य इसका पालन अनिवार्य रूप से करें। यह एक ऐसा मोक्षसाधक परोपकारमय और पर्यावरण शोधक दैनिक अनिवार्य कर्त्तव्य है जिसे शास्त्रों में श्रेष्ठतम कर्म कहा है। हमें इस पुण्यदायक कार्य की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

❑❑

मन का चक्रव्यूह

—ब्र० शारदा (अलीगढ़)
कक्षा–10

मन आत्मा का एक ऐसा शक्तिशाली उपकरण है जिसके माध्यम से आत्मा उन्नति के शिखर पर जा सकता है और अवनति के निम्न धरातल पर भी। उन्नति के शिखर पर पहुँचने वाली महत्त्वाकांक्षा तो उत्कृष्ट, महान आदर्श को साकार करने का साहस तथा कर्मठतायुक्त अभियान है, जिसके गर्भ में स्वस्थ और संतुलित मनोवृत्ति, जागरूक चेतना, विवेकयुक्त बुद्धि रहती है, जिससे मनुष्य श्रेष्ठता को प्राप्त होता है। इसी प्रकार विकृत मन के द्वारा मनुष्य कितनी विपत्तियों में फंसा रहता है, इसका अनुमान लगाना कठिन है। मन में निम्न प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं–

मृगतृष्णा की नदियाँ

विकृत मन की महत्त्वाकांक्षा निम्नगामिनी होती है, इस दर्पण में जब मनुष्य अपनी तस्वीर देखकर उस ओर उन्मत्त होकर दौड़ता है तो परिणाम में उसकी स्थिति उस बाज की तरह हो जाती है, जो आकाश से मकान या धरती पर पड़े शीशे के टुकड़े में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उस ओर झपटता है और शीशे से टकराकर घायल हो जाता है। विकृत मन की महत्त्वाकांक्षाएँ मनुष्य को मृग–मरीचिका की तरह भटकाती हैं। ये वायु के उस झोंके की तरह हैं जो एक सूखे पत्ते को आसमान तक उठा देता है, लेकिन ज्यों ही वायु का वेग मन्द होता है पत्ता धरती पर आ पड़ता है। हमें अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के बारे में विवेकपूर्ण बुद्धि से सोचना चाहिए कि वे कितनी यथार्थ और कितनी उपयोगी हैं, कहीं उन्होंने हमें भुलावे में तो नहीं डाल रखा है? वे हमारा जीवन सही मार्ग पर ले जा रही हैं या हमें पथभ्रष्ट कर रही हैं? मन के प्रलोभनों के पीछे तो हम नहीं दौड़ रहे हैं? हम अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के पीछे उद्देश्य को तो नहीं भूल गये? वस्तुतः विषय–वासनाओं में आकृष्ट होकर जिस सुन्दर रूप पर हम मुग्ध हो जाते हैं, जिस स्वादु भोजन के लिए लालायित हो जाते हैं, जिस कोमलता के लिए हम हस्तीवत् उन्मत्त हो जाते हैं, जिस सुगन्ध के लिए हम भँवरे के समान मृत्यु का ग्रास बनना चाहते हैं– वह सब पञ्च भूतों की सृष्टि है, और कुछ भी नहीं। यह अभी है और कुछ देर में रूपान्तरित हो जायेगा।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तं निर्विषयं स्मृतम्।।

मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयासक्त मन बन्धन के लिए है और निर्विषय मन मुक्ति का साधन है। मन को निर्विषय करना या मनोनिग्रह करना महाकठिन है, इसमें बड़े–बड़े ज्ञानी महापुरुष भी डगमगा जाते हैं, परन्तु यह असम्भव नहीं है। यदि असम्भव होता तो वेदमाता का यह अमूल्य संदेश हमारे लिये न होता–

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

त्यागपूर्ण भोग मन के नियंत्रण से ही सम्भव है। वस्तुतः मन कोई बुरी चीज नहीं है। मन ईश्वर की अमूल्य देन है। मन की गति बिजली की गति से भी कई गुणा अधिक है। आकाश में विद्युत् की चमक देखी जाती है, परन्तु मन की क्रिया इतनी तीव्र होती है कि उसका अनुमान करना भी कठिन है। विद्युत् की शक्ति से आज सम्पूर्ण विश्व प्रभावित हो रहा है। विद्युत् असम्भव को भी सम्भव करने में समर्थ है पर मन की शक्ति बिजली की शक्ति से भी कई गुणा अधिक है। यदि मन को बुद्धि से नियंत्रित किया जाये तो फिर ऐसा कौन सा मनोरथ है जो पूर्ण न

हो, किन्तु इसके दूसरे पक्ष पर भी जरा विचार करें यदि वही विद्युत अनियंत्रित हो जाये तो फिर वह बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, विशाल भवन सब कुछ भस्मीभूत कर देती है। इसी प्रकार मन के अनियंत्रित हो जाने से मनुष्य को निश्चित ही इससे अधिक फल भोगना पड़ता है। यजुर्वेद के 32वें अध्याय में एक मन्त्र आता है--

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च..... (यजुर्वेद 32/11)

आत्मा मन के कारण प्रत्येक लोक में प्रत्येक दिशा में प्रत्येक योनि में विचरण करता है।

मन का नियन्त्रण कैसे?

मन के विषय में प्रायः हम कहते हैं कि मेरा मन ध्यान में पढ़ाई में रुकता ही नहीं। मन सम्बन्धी इस प्रकार के विचार अज्ञानजनित हैं मिथ्या हैं। अज्ञानता के कारण हम मन को चेतन मान बैठे हैं। वास्तविकता यह है कि मन जड़ प्रकृति से बना हुआ एक जड़ उपकरण है। मन में अपने आप कोई विचार नहीं आता है, और न ही यह स्वयं किसी विचार को उठाता है। इस जड़ मन को चलाने वाला चेतन जीवात्मा है। जिस प्रकार टेप में अनेक प्रकार की ध्वनियों का संग्रह होता है। ऐसे ही मन में भी अनेक प्रकार के विचार संस्कारों के रूप में संगृहीत रहते हैं। जब व्यक्ति अपनी इच्छा व प्रयत्न से टेप को चलाता है तो ध्वनियाँ सुनाई देने लगती हैं, अपने आप ध्वनियाँ सुनाई नहीं देती। इसी प्रकार जब जीवात्मा मन में संगृहीत संस्कारों को अपनी इच्छा व प्रयत्न से उठाता है तभी मन में विचार उत्पन्न होते हैं। यह मन के कार्य करने की एक पद्धति है।

अविद्या के कारण चेतन जीवात्मा स्वयं को मन का चालक न मानकर, मन को ही विषयों का उठाने वाला मान लेता है। मन में उठने वाले इन प्रतिकूल विषयों (विचारों को) को क्रियात्मक योग के द्वारा रोक सकते हैं। योग द्वारा ही व्यक्ति पञ्च क्लेश अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश से छूट सकते हैं। योग के द्वारा मन को नियंत्रण करने का समाधान तो आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी अध्यात्म विद्या को पढ़, सुन, समझ तथा व्यवहार में लाने से ही सम्भव है। मनुष्यों के कल्याणार्थ इन अध्यात्म विद्याओं का वर्णन हमारे पूज्य ऋषियों ने अपने दर्शनों में विस्तार से किया है।

महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योग दर्शन मानव जीवन का पथ प्रदर्शक ग्रन्थ है। इस अमूल्य ग्रन्थ में वर्णित सूत्र-- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' में चित्त की वृत्तियों को रोकने का नाम योग बताया है। योग करने के लिए व्यक्ति को शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म, शुद्ध उपासना की आवश्यकता है। योगाभ्यास किसी एक क्रिया-विशेष का नाम नहीं है, अपितु इस शब्द से योगदर्शन में बताये गये यम-नियम आदि योग के आठों अंगों— **यमनियमासनप्राणायाम-प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि** का ग्रहण करना चाहिए। विषय को बहुत विस्तार न देते हुए यदि हम इसे तीन भागों में विभक्त कर लें तो हमें अपने उद्देश्य के बारे में अनायास ही ज्ञान हो जायेगा (i) साध्य (ii) साधक (iii) साधन ईश्वर— साध्य जीव-साधक-प्रकृति साधन।।

प्रकृति से बना हुआ मन केवल साधन है साध्य नहीं इसलिए मन के पीछे भागने की कोई आवश्यकता नहीं।

❑❑

> **मानव के अन्तर में जो कुछ उत्तमतर है,**
> **उसके अभिव्यञ्जन का जीवन यह अवसर है।**
> **सुखमय वह केवल जो इस [illegible] में तत्पर है।।**

क्या थी ऋषि के सपनों की शिक्षा प्रणाली

—ब्र० स्नेहा (हरदोई)
कक्षा–11

महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली के मूलतत्व थे— (1) शहरों से दूर गुरुकुलों की स्थापना (2) आठ वर्ष तक के बालकों का प्रवेश (3) ब्रह्मचर्य-पूर्वक आश्रमवास (4) अमीर–गरीब, राजा–रंक सभी के लिए समान भोजन व रहन–सहन (5) पच्चीस वर्ष से पूर्व बालक और सोलह वर्ष से पूर्व बालिका का विवाह न होना (6) गुरु और शिष्य का पिता–पुत्र का सम्बन्ध (7) स्त्री शिक्षा अनिवार्य (8) सहशिक्षा एक अभिशाप (9) शिक्षा में संस्कृत और आर्षग्रन्थों का महत्व (10) साथ ही चिकित्साशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, भूगोल, गणित, ज्योतिष, शिल्प तथा अन्यान्य कलाओं के अध्ययन की समुचित व्यवस्था। महर्षि ने इन सभी मूलतत्वों को स्वलिखित ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' के तृतीय समुल्लास में शिक्षा विषय में बहुत विस्तारपूर्वक लिखा है। उन्होंने विद्या, गुण, कर्म और स्वभाव को सर्वोपरि महत्वपूर्ण बतलाया है। वे लिखते हैं–

"सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म स्वभाव को धारण कराना माता-पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, माणिक, मूंगा-मोती आदि रत्नों से युक्त आभूषणों को धारण करने से मनुष्य का आत्मा कभी सुभूषित नहीं हो सकता"।

"जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता है और जो सुन्दर, शील स्वभावयुक्त, सत्य भाषणादि, नियम पालनयुक्त, अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य की मलिनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दुखों को दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार में रत रहते हैं वे नर-नारी धन्य हैं. ...."।

महर्षि स्त्रीशिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन दिनों भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा निषिद्ध मानी जाती थी। कन्याओं के लिए विद्याध्ययन का प्रबन्ध न होता था और न ही कोई समाज द्वारा आपत्ति व बहिष्कार के भय से अपने घर पर भी कन्याओं को शिक्षा देने का साहस करता था। यद्यपि वैदिक काल की आर्य नारियाँ अत्यन्त विदुषी तथा शास्त्रवेत्ता भी होती रही हैं, यहाँ तक कि अनेक सूक्तों एवं मन्त्रों की द्रष्ट्री भी नारियाँ हुई हैं। ऐसे कठिन और अन्धकारमय युग में महर्षि दयानन्द ने अपने अथक परिश्रम से कठोर विघ्न–बाधाओं से दृढ़तापूर्वक जूझकर स्त्री शिक्षा को पुन: प्रचलित किया और समाज संगठन द्वारा कन्याओं को शिक्षित करने का जोरदार प्रयास किया फलत: सर्वप्रथम जालंधर में लाला देवराज जी के द्वारा 1890 में आर्य कन्या महाविद्यालय की स्थापना हुई।

इस प्रकार इस युग में स्त्रीजाति को शिक्षा से वञ्चित करने के अन्याय को तथा समाज के इस अंग के अशिक्षित रह जाने की न्यूनता को दूर करने का श्रेय महर्षि दयानन्द जी को ही है। इसके लिए नारी जाति युगों–युगों तक उस ऋषिवर की ऋणी रहेगी। महर्षि द्वारा अपनी जाति पर किये गये उपकारों को एक नारी यूँ व्यक्त करती है–

जिसने दी दिशा मुझको,
सोच को उच्च विचार दिया।
जिसने जीवन को मेरे,
वेद के सांचे में ढाल दिया।
नमन सहस्त्र उस दयानन्द को,
जिसने जीवन मेरा संवार दिया।।

महर्षि ने स्त्री शिक्षा को तो न्यायोचित प्रोत्साहन दिया परन्तु '**सहशिक्षा-प्रणाली**' का उन्होंने कड़ा विरोध

किया। महर्षि ने लड़कों-लड़कियों के लिए अलग-अलग पाठशालाओं का विधान किया तथा उन पाठशालाओं में अध्यापक व अध्यापिकायें आदि भी अलग-अलग केवल पुरुष व स्त्रियाँ ही रखे जाने का नियम भी लिखा वे कहते हैं—

आठ वर्ष के हों, तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें। जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष या भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में सब पुरुष रहें। सहशिक्षा प्रणाली हमारे भारतवर्ष में तो थोड़े वर्षों से ही प्रचलित हुई है। वास्तव में यह प्रणाली पश्चिमी देशों की ही नकल है। परन्तु अब तो उन देशों में भी इस प्रणाली के अत्यन्त घृणित और कड़वे अनुभवों के कारण अब नये-सिरे से इसके गुण-दोषों पर विचार किया जा रहा है। महर्षि दयानन्द जी बड़े दूरदर्शी थे। उनके पीछे तत्वदर्शी महर्षियों के तलस्पर्शी चिन्तन का सार था। सहशिक्षा-प्रणाली के कड़वे अनुभव जो अब किये जा रहे हैं महर्षि इसको पहले से ही जानते थे इसलिए उन्होंने सहशिक्षा-प्रणाली का कड़ा विरोध किया था।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि शिक्षा यदि मातृभाषा में दी जावे तो परिश्रम अल्प तथा लाभ अधिक होते हैं। इस तथ्य से भी महर्षि सर्वथा सुपरिचित थे। यही कारण है कि उन्होंने इस देश की मातृभाषा हिन्दी को सुप्रतिष्ठित करने के लिये एकता की सूत्रधार जैसी परिभाषा से परिभाषित किया। यद्यपि उनकी निज मातृभाषा गुजराती थी, वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, तथापि उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों का प्रणयन हिन्दी आर्य भाषा में किया। उन्होंने सम्पूर्ण आर्यावर्त्त का भ्रमण किया था तत्पश्चात् उन्होंने पाया कि हिन्दी भाषा ही सर्वग्राह्य है। महर्षि ने कहा था कि— एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना पूर्णहित तथा जातीय उन्नति का होना दुष्कर है। सब उन्नतियों का केन्द्र ऐक्य है, जहाँ भाषा, भाव, भावना में एकता आ जाती है वहाँ सागर में नदियों की भाँति सारे सुख एक-एक करके प्रवेश करने लगते हैं। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि— मेरे नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का ही प्रयोग व प्रचार हो। महर्षि के इन उद्घोषों से यह नहीं समझना चाहिए कि महर्षि दयानन्द अन्य भाषाओं के विरोधी थे या वे मात्र हिन्दी भाषा के ही पक्षधर थे। महर्षि लिखते हैं— "जब पाँच वर्ष का लड़का-लड़की हो तब उनको देवनागरी अक्षरों का अभ्यास कराना चाहिए। अन्यदेशीय भाषाओं का भी अभ्यास करना उचित है।" महर्षि अन्य भाषाओं की ग्राह्य-अग्राह्य सीमा को जानते थे अन्य भाषाएँ हमारे लिए कहाँ तक हितकर हो सकती हैं इसको वे भली भाँति समझते थे इसीलिए उन्होंने स्वमातृभाषा हिन्दी को श्रेष्ठतम मानकर अन्य भाषाओं के अध्ययन को भी उचित ठहराया। परन्तु अत्यन्त खेद और आश्चर्य का विषय है कि आज ऋषि निर्दिष्ट पथ से विमुख होकर सभी अपनी पाठशालाओं में हिन्दी को बढ़ावा न देकर विदेशी भाषा अंग्रेजी को बढ़ावा दे रहे हैं। अंग्रेजी को ही प्रथम श्रेणी से शिक्षा का माध्यम बना रखा है। निज मातृभाषा हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी का चहुँओर बोलबाला है। सर्वत्र अंग्रेजी को ही वरीयता दी जा रही है। आज हम उस शिक्षा को अनिवार्यता दे रहे हैं जो हमारे रहन-सहन, आचार-विचार, मन-मस्तिष्क को पथभ्रष्ट करने के लिए बनाई गयी। यहां तक कि हमारी पूरी अस्मिता को नष्ट करने के लिए बनाई गयी थी। जिस शिक्षा का उद्देश्य ही हमारा समूलोच्छेदन था वह शिक्षा हमारे लिए कैसे हितकर हो सकती है? आश्चर्य है कि आज भी हम इसके मोह और दासता से मुक्त नहीं हुए हैं। अंग्रेजों का राज्य समाप्त हुए 59 वर्ष से भी अधिक बीत चुके हैं भारत स्वतन्त्र हो गया है अंग्रेज चले गये परन्तु अंग्रेजियत अभी बाकी है। आज वही शिक्षा है और शिक्षा का उद्देश्य भी वही है जो परतन्त्र भारत में था। लार्ड मैकाले के शब्दों में अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य था—

"We must do our best to form a class, who may be interpreters between us and

the millions whom we govern a class of persons Indian in blood and colour but English in taste, in opinions words and Intellect."

अर्थात्- "हमें अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर ऐसा उद्योग करना चाहिए, जिससे इस देश में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो जाये जो हमारे इन करोड़ों मनुष्यों के बीच में मध्यस्थ का कार्य करे, जिन पर हम शासन कर रहे हैं, उस वर्ग का हाड़, मांस, और रक्त भले ही भारतीय हो किन्तु आचार-विचार, रहन-सहन, हृदय व मस्तिष्क अंग्रेजों के सांचे में ढल जाये"। अब आप इस उद्देश्य को जानकर स्वयं विचार कर सकते हैं कि इस शिक्षा से हम किस विकास के पथ पर अग्रसर होगें, हमारा लक्ष्य क्या होगा और हम कहाँ पहुंचेंगे ? इस शिक्षा का आधार-स्तम्भ ही लक्ष्यविहीन है, इससे नैतिक विकास की भावना आ ही नहीं सकती क्योंकि इस शिक्षा को बनाने वाले की आत्मा पक्षपात सहित थी उन्हें तो अपनी पूर्ण शक्ति सामर्थ्य लगाकर एक ऐसा वर्ग निर्मित करना था जो भारतीयों में ही मध्यस्थ का कार्य करें। उनकी इसी इच्छानुसार अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा द्वारा ठीक वैसा ही वर्ग निर्मित हो रहा है जो परोक्षरूप से अंग्रेजी एवं अंग्रेजियत पर एकाधिकार रखते हुए अन्यों को उत्कृष्ट शिक्षा से वञ्चित करने का षड्यन्त्र कर रहा है। इससे हर नागरिक अपनी योग्यता, प्रतिभा, अनुभव और क्षमता के आधार पर विकास करने में स्वतन्त्र नहीं है। उच्चवर्ग निम्नवर्ग का भेदभाव मिटाने हेतु तथा शिक्षा में समानता लाने की दृष्टि से ऋषि ने अत्यन्त उपयोगी बात लिखी "चाहे वह राजकुमार हो या राजकुमारी, चाहे दरिद्र की सन्तान हो, सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जायें। ऋषि की कितनी उत्कृष्ट सोच है। वस्तुतः ऐसा नियम ही समाज को समानता के निकट पहुँचा सकता है। आज के परिप्रेक्ष्य में ऋषि दयानन्द के ये सब सिद्धान्त अत्यन्त लाभकारी और न्यायोचित हैं। आवश्यकता केवल इसे चरितार्थ करने की है। जिस प्रकार ऋषि ने वेदोक्त मार्ग का अनुसरण करते हुए हम सबके लिए उत्कृष्ट शिक्षा-प्रणाली का मार्ग-निर्देशन किया, उसी प्रकार **"पदमनुविधेयं च महताम्"** हम भी महान् ऋषि के पदचिह्नों पर चलते हुए ऋषि के स्वप्न को साकार करें।

❖❖❖

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्त्ति गुञ्जाः।।

हिन्दी— जो जिसके गुणों की श्रेष्ठता को नहीं जानता वह सदा उसकी निन्दा करता है। जैसे भीलनी हाथी के मस्तक में उत्पन्न होने वाले मोतियों को छोड़कर घुंघची की माला को धारण करती है।

भारत में मूर्तिपूजा

—ब्र० सुशीला (बबराला, बदायूँ)
शास्त्री प्रथम वर्ष

मूर्तिपूजा का उद्‌गम

भारत की अवनति का मूल मूर्तिपूजा है। सर्वप्रथम हमारे देश में मूर्तिपूजा बौद्धों से प्रारम्भ हुई। भगवान् बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् शिष्यों ने उनके केश, वस्त्र, दाँत और अस्थियों को स्मारक के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। धीरे-धीरे इन्हीं समाधियों पर बुद्ध की मूर्तियाँ स्थापित कर दी गयीं। मूर्तिपूजा बौद्धकाल से पूर्व किसी भी रूप में प्रचलित नहीं थी, इसका सबसे बड़ा प्रमाण चीन के दो प्रसिद्ध यात्री फाहियान तथा ह्वेनसांग का यात्रा-विवरण है। फाहियान ने इस देश की सन् 400 ई. में यात्रा की। उसका कहना है कि उस समय काबुल में बौद्ध धर्म का पूर्ण विस्तार था और वहाँ 500 बौद्ध विहार थे। उसने सर्वत्र ऐसे-ऐसे विहार देखे, जिन पर लाखों रुपये व्यर्थ व्यय किये गये थे। वह सब स्थानों पर घूमता-घूमता पटना पहुँचा। पटना में उसने प्रथम बार बुद्ध की मूर्ति देखी। पटना से वह राजगृह, गया, काशी, कौशाम्बी, और चम्पा भी जो विहार की राजधानी थी गया परन्तु किसी भी तीर्थ स्थान पर एक भी हिन्दू मन्दिर नहीं देखा। इससे यह स्पष्ट होता है कि फाहियान का यात्राकाल मूर्तिपूजा का प्रारम्भिक काल है।

फाहियान काल के दो-सौ वर्ष पश्चात् सन् 640 ई. में ह्वेनसांग नामक दूसरा चीनी यात्री भारत में आया। जब वह यहाँ आया, तो उसने जलालाबाद को बौद्धों से परिपूर्ण पाया। उसने यहाँ पाँच शिवालय हिन्दुओं के देखे जिनमें 100 पुजारी थे। धीरे-धीरे बौद्धों और हिन्दुओं में परस्पर फूट पड़ने से बौद्ध मन्दिरों की क्षति होती गयी और हिन्दुओं के मन्दिर बढ़ते गये। इस यात्री ने पौलुस नगर के निकट एक ऊँचे पर्वत पर नीले पत्थर को काटकर बनायी गयी एक दुर्गा की मूर्ति देखी। वहाँ अनेकों साधु भस्म लगाये देखे। इन दोनों यात्रियों के यात्रा विवरण से **निष्कर्ष निकलता है कि फाहियान का समय बौद्धधर्म के** उत्कर्ष का समय था तथा ह्वेनसांग के यात्रा काल में बौद्धधर्म का बहुत कुछ ह्रास हो चुका था और हिन्दुओं में पौराणिकता की जड़ जम चुकी थी। इस प्रकार हिन्दू धर्म की वर्तमान मूर्तिपूजा जैन बौद्ध काल की ही देन है। फारसी भाषा का 'बुत' श ; जो स्पष्टतया बुद्ध का अपभ्रंश है वह यह भी सिद्ध करता है कि केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु ईरान आदि देशों में भी सर्वप्रथम महात्मा बुद्ध की मूर्ति की ही पूजा होती थी।

भारत का अध:पतन

यद्यपि भारत का पतन महाभारत काल में आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था तथापि महाभारत युद्ध के पश्चात् तो इस देश का सर्वतोमुखी ह्रास प्रारम्भ हो गया। धार्मिक ह्रास के प्रसंग में मैं कहना चाहूँगी कि इसी समय में महर्षि व्यास के नाम पर पुराणधारी मिथ्याग्रन्थों की रचना की गयी। मयूखप्रतिष्ठा, भास्कर आदि ग्रन्थों में जड़मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा का विधान किया गया तथा अवतार कथाओं का भी प्रचलन इसी समय हुआ। वेदों और उपनिषदों का उच्चकोटि का एकेश्वरवाद धीरे-धीरे विस्मृत हो गया और इसका स्थान नाना देवी-देवताओं ने ले लिया। वेदों में जिन अग्नि इन्द्र वरुण आदि देवताओं को परमात्मा का ही वाचक मानकर स्तुति की जाती थी वे महाभारत के परवर्ती काल में आग, वर्षा तथा जल आदि स्थूल भौतिक पदार्थों के देवता समझे जाने लगे, इनकी पूजा प्रचलित हुई और इन्हीं की शाखा-प्रशाखाओं के रूप में वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य, वाममार्ग आदि सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। मूर्तिपूजा को महिमामण्डित करने में तान्त्रिकों ने विशेष भूमिका निभाई। इन्होंने ऐसे- ऐसे श्लोक बनाकर जनता के समक्ष रख दिये—

कपटेनापि यः कुर्यात् ब्रह्मशालां सुमानद।
सम्मार्जनादि वै कर्म सोऽपि तत् फलमाप्नुयात्।।

अर्थात् जो कोई छल और कपट से भी ब्रह्मा के मन्दिर में झाड़ू लेपनादि करता है उसको भी वही फल मिलता है, जो श्रद्धा से करने वाले को मिलता है। इतना ही नहीं और देखिए–

कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत् पापं समुपार्जितम्।
पितामहघृतस्नानं दहत्यग्निरिवेन्धनम्।।

करोड़ों कल्पों में जो पाप संचित किये हैं वे ब्रह्मा जी को घृत स्नान कराने से दूर हो जाते हैं। ऐसे महिमामण्डित वाक्यों से जनता दिग्भ्रान्त हो उठी, वह सत्यासत्य के विवेक किये बिना इन्हीं मिथ्या वाक्यों को प्रमाण मानने लगी। जनता ने सोचा कि इससे अच्छा उपाय जीवन जीने का और क्या हो सकता है? जीवन भर पाप करते रहो, दूसरों को लूट-लूटकर खाते रहो, अन्त समय में ब्रह्मा की मूर्ति को घृत स्नान करा दो। भगवत् प्राप्ति के ऐसे सस्ते उपायों के आगे यम-नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार आदि अष्टांग योग की और यज्ञ-यागों की विशुद्ध प्राचीन भारतीय परम्परा से सबने मुख मोड़ लिया, सभी मूर्तिपूजा में संलग्न हो गये। नाना प्रकार के कदाचरण धर्म की आड़ में होने लगे। चारित्रिक मानसिक, आर्थिक एवं बौद्धिक कौन सा ऐसा क्षेत्र है जिसमें इस मूर्तिपूजा से ह्रास नहीं हुआ। मूर्तिपूजा के विषय में मैं 'बाबू श्री देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय' के स्वर में स्वर मिलाकर कहना चाहती हूँ कि मूर्तिपूजा ने भारत के अकल्याण की जो सामग्री एकत्र की है उसे लेखनी लिखने में असमर्थ है।

विदेशी आक्रमणों में मूर्तिपूजा की भूमिका

भारत का अपार धन-वैभव तथा यहाँ के लोगों की अकर्मण्यता और विवेकहीन मानसिकता को देखकर विदेशियों ने इस पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये। सर्वप्रथम यहाँ मुसलमान आक्रान्ता बनकर आये। सन् 712 ई. में प्रथम मुस्लिम आक्रमण हुआ। मुस्लिम राज्य को विस्तार देने में मूर्तिपूजा किस प्रकार सहायक सिद्ध हुई, इस प्रसंग में दो ऐतिहासिक घटनाएँ दर्शाना चाहूँगी। जिसमें प्रथम घटना इस प्रकार है– सन् 612 ई. में हज्जाज द्वारा भेजे गये मोहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण किया। यह ईरान बिलोचिस्तान होता हुआ छः हजार सैनिकों सहित आया। कासिम ने इस कूटनीति का सहारा लिया कि दाहिर की सेना में से कुछ लोगों को लालच देकर अपने पक्ष में कर लिया। फलतः ये शरणागत सिपाही राजा दाहिर के विपक्षी हो गये। राजा ने शेष तीस हजार सैनिकों के साथ मोहम्मद बिन कासिम का सामना किया। आठ दिन तक घोर युद्ध चलता रहा। वह भागने वाला ही था कि एक ब्राह्मण उससे जा मिला। उसने हिन्दुओं की पराजय का रहस्य कासिम को बता दिया कि मन्दिर की चोटी से झण्डा उतार दिया जाये तो हिन्दू सेना भाग जायेगी क्योंकि उनके विश्वास के अनुसार झण्डा गिरना पराजय का सूचक है। कासिम ने ऐसा ही किया। झण्डा गिरते ही दाहिर की सेना भाग खड़ी हुई। दाहिर घायल होकर गिर गया। कासिम द्वारा राजा दाहिर का सिर काटकर भाले पर लटका दिया गया। सारे मन्दिर ध्वस्त कर दिये गये। राजा के साथ किये इस विश्वासघात से भी उस गद्दार ब्राह्मण की आत्मा सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने एक पाप और किया कि राज्य के गुप्त खजाने का पता कासिम को बता दिया। इस खजाने में सोने की 40 देगें थी, जिनमें 1700 मन सोना था। इसके अतिरिक्त 6000 मूर्तियाँ ठोस सोने की थीं, जिनमें सबसे बड़ी मूर्ति का वजन 30 मन था। हीरा पन्ना मोती लाल और माणिक्य इतने थे कि कई ऊँटों पर लादकर कासिम गजनी ले गया। राज खजाने को लूटने के साथ-साथ उसने नगरों और ग्रामों को भी लूटा। हजारों स्त्री-पुरुषों को मुसलमान न बनने पर मौत के घाट उतारा।

इसी प्रकार मोहम्मद बिन कासिम के लगभग 300 वर्ष पश्चात् इस अभागे भारतवर्ष पर महमूद गजनवी ने आक्रमण किया। इसने लगातार तीस वर्ष तक भारत पर सत्रह आक्रमण किये और समस्त पश्चिमोत्तर भारत को भस्मीभूत कर दिया। इसने नगरकोट के मन्दिर को विध्वंस करके जो सम्पत्ति अपने देश भेजी, वह इतिहास के पृष्ठों में इस प्रकार अंकित है– 700 मन सोने चाँदी के बर्तन, 740 मन सोना, 2000 मन चाँदी और 20 मन हीरे मोती जवाहरात। गजनवी ने इसके पश्चात् गुजरात के सुप्रसिद्ध

सोमनाथ मन्दिर को अपना लक्ष्य बनाया। जिसमें अनगिनत बहुमूल्य रत्न जटित थे। 40 मन भारी सोने की जंजीर में एक घण्टा लटक रहा था उसमें 5 गज ऊँची शिवमूर्ति अधर में लटक रही थी, इस मूर्ति को गदा से तोड़कर उसने असंख्य रत्नों से अपने देश को मालामाल कर दिया। इस प्रकार भारत को विदेशियों के हाथ का खिलौना बनाने का सर्वाधिक श्रेय मूर्तिपूजा को ही जाता है। इसमें यत्किञ्चित् भी सन्देह नहीं कि इसी अवैदिक पूजा ने हमारे देश के अनन्त बल पराक्रम को कुण्ठित किया। भारतीयों को नपुंसक बनाया। यदि पुजारियों ने मन्दिर में प्रतिष्ठित उन मूर्तियों को चेतन न मानकर और जय-पराजय को ज्योतिषियों के हाथों में न सौंपकर अपने अद्वितीय साहस और पौरुष के साथ मुसलमानों का सामना किया होता तो भारत को ये दुर्दिन न देखने पड़ते। शारीरिक बल में विदेशियों की अपेक्षा भारतीय अधिक बलवान एवं पराक्रमी थे। प्रसिद्ध इतिहासकार बराऊँनी लिखते हैं कि– "हिन्दुओं के बराबर प्रतापशाली पठान और मुगलों में एक भी जाति न थी।" विदेशियों के आगे हिन्दू यदि पराजित हुए हैं, तो मात्र मूर्तिपूजा से, फलित ज्योतिष में विश्वास रखने से और विवेकहीन अवैदिक क्रियाकलापों से।

मूर्तिपूजा का विरोध

भारत देश की इस दुर्दशा को देखकर अनेक सन्तों-महात्माओं ने मूर्तिपूजा के विरुद्ध आवाज उठायी। सन्त कबीर का प्रसिद्ध दोहा है–

पाथर पूजे हरि मिले, तो हम पूजें पहार।
या पाथर से चक्की भली, जो पीस खाये संसार।।

कबीर की भाँति सन्त दादू ने भी कहा–

पत्थर पीवें धोइकै पत्थर पूजें प्रान।
अन्तकाल पत्थर भये भव डूबे अज्ञान।।

सन्त-महात्माओं की इसी परम्परा में महर्षि स्वामी दयानन्द का पदार्पण हुआ। महर्षि दयानन्द ने मूर्तिपूजा के विरोध में वेदों के जिस मन्त्र को प्रमुख रूपेण प्रस्तुत किया वह मन्त्र है–

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भऽइत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जातऽइत्येषः।। (यजु. 32/3)

इसका अर्थ है– जिसका महान यश है, उस परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है। हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे. .... मा मा हिंसीत्............यस्मान्न जात आदि अनेक मन्त्रों द्वारा उसके प्रसिद्ध यश का गायन हुआ है। आचार्य सायण की परम्परा के अनुयायी शुक्ल यजुर्वेद के भाष्यकार पं. महीधर ने भी इस मन्त्र का यही भाष्य किया– **"तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किञ्चित् वस्तु नास्ति।"** अर्थात् उस परमात्मा की प्रतिमा प्रतिमान उपमान योग्य कोई वस्तु नहीं है। प्रतिमा प्रतिमान के अभाव में भगवान् की मूर्ति का निर्माण और उसमें प्राण-प्रतिष्ठा दोनों ही वेद विरुद्ध हैं। महर्षि ने अपने भाषणों में कहा कि "जिस परमात्मा ने मिट्टी सुवर्ण आदि पदार्थ बनाये उन्हीं पदार्थों से तुम उसी परमात्मा की मूर्ति बनाने लगे! जिस परमेश्वर ने तुम्हारा सृजन किया तुम उसके ही सृजन कर्त्ता बन गये। जो सारी सृष्टि का पिता कहलाता है तुम उसके भी पिता बन बैठे" इन मर्मभेदी वाक्यों से भी मूर्तिपूजकों की आँखें नहीं खुलीं। उन्होंने क्रोधित होकर ऋषि पर ईंट पत्थरों की वर्षा की, काले नाग फेंके, गरल के प्याले पिलाये, गालियाँ दीं, शास्त्रार्थ में विजय होने पर भी अपमानित किया, तब भी उस धर्म के धुनी दिव्यात्मा ने सत्य के मार्ग को नहीं त्यागा।

इस प्रकार मूर्तिपूजा का विरोध दयानन्द सहित अनेक सन्त-महात्माओं ने किया किन्तु इन सबमें दयानन्द का स्वर अत्यन्त प्रखर था, कारण दयानन्द के पास न केवल युक्तियाँ थीं, बल्कि वेदों के सहस्राधिक मन्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों की सुदीर्घ परम्परा के असंख्य प्रमाण भी मूर्तिपूजा के विरोध में विद्यमान थे। हम पुनः इसी वैदिक ईश्वर भक्ति के द्वारा अपने देश की प्राचीन मान-मर्यादा एवं प्रतिष्ठा को सुरक्षित रख सकते हैं। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

❑❑

धर्म और राजनीति

—ब्र० मनीषा
शास्त्री प्रथम वर्ष, धामपुर

भारतीय संस्कृति में धर्म को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। धर्म वस्तुत: इस भारत वर्ष की संस्कृति का प्राण है। धर्म का रहस्य इतना अलौकिक है कि जिसकी आधारशिला पर मानव और यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रतिष्ठित हो रहा है। धर्म केवल पूजा-पाठ या आचार संहिता मात्र तक ही सीमित नहीं बल्कि उसकी धारणा व्यावहारिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र को पूर्ण रूपेण आलोकित करती है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता ऋषि कणाद ने धर्म की महत्ता को अत्यन्त वैज्ञानिकता से आँकते हुए कहा "यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म:।" अर्थात् धर्म वह है जो अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनों की प्राप्ति कराता है। अभ्युदय कहते हैं सांसारिक, भौतिक पदार्थों की उन्नति को और नि:श्रेयस से अभिप्राय है पारलौकिक अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति। स्थूलदृष्ट्या सांसारिक और पारलौकिक उन्नति में परस्पर विरोध प्रतीत होता है परन्तु हमारे ऋषि-मुनियों के अनुसार धर्म एकमात्र ऐसी नींव है जिसके सहारे दोनों ही मार्गों का सुगमता से निर्माण हो जाता है। "वेदोऽखिलो धर्म मूलम्" कहकर मनु महाराज ने वेद को धर्म का मूल बताया। वेद हमारे सम्पूर्ण जीवन को संचालित करने की सुन्दर व्यवस्था प्रदान करता है। इस प्रकार व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र को जो धारण करता है वह सूक्ष्म तत्त्व ही धर्म है। धारक तत्त्व को धर्म बताते हुए महाभारतकार ने भी कहा—

धारणाद् धर्म इत्याहुः
धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः
स धर्म इति निश्चयः।।

मानव एक सामाजिक प्राणी है, मनुष्य का अस्तित्व ही समाज पर अवलम्बित है। समाज के सञ्चालन में धर्म और राजनीति दोनों की महत्त्वपूर्ण उपयोगिता है। धर्म-रहित राजनीति ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार एक सूखी लता। जैसे फल की प्राप्ति सूखी लता से सम्भव नहीं, उसी प्रकार राजनीति भी धर्म के बिना असहाय है, पंगु है। दूसरे शब्दों में कहें तो समाज वह गाड़ी है जिसके दो चक्र राजनीति और धर्म हैं। एक-दूसरे के सहयोग से ही दोनों की पूर्णता है, इसलिए धर्म-निरपेक्ष राजनीति और राजनीति-निरपेक्ष धर्म ये दोनों ही परिस्थितियाँ मानव के लिए घातक हैं।

राज्य के सात अंग बताये गये हैं जो इस प्रकार हैं— 1. राजा, 2. अमात्य (मन्त्री), 3. कोष, 4. दण्ड, 5. जनपद, 6. दुर्ग, 7. प्रजा। प्राचीन-कालीन शासन प्रणाली इतनी सुदृढ़ एवं गठित होती थी कि सातों में से एक भी अंग निर्बल नहीं होता था एवं राज्य बहुत सुन्दर व सुव्यवस्थित ढंग से सञ्चालित होता था किन्तु समय ने करवट ली और आज की स्थिति से यदि प्राचीन शासन प्रणाली की तुलना करें तो स्थिति ठीक विपरीत दिखायी दे रही है। इस देश में विकास तो हो रहा है किन्तु केवल भौतिक संसाधनों का। इस कारण मानव का आन्तरिक विकास अवरुद्ध हो गया है।

प्राचीन काल के राजा आन्तरिक और बाह्य दोनों विकासों के प्रति सचेष्ट रहते थे। उनका लक्ष्य जहाँ राज्य की बाह्य सुव्यवस्था होती थी, वहीं आन्तरिक व्यवस्था भी उत्तम हो, व्यभिचार, कदाचार, भ्रष्टाचार आदि से राष्ट्र रहित हो, ये भी उनका परम-लक्ष्य होता था। "यथा राजा तथा प्रजा" के अनुसार राजा और प्रजा दोनों ही आन्तरिक तथा बाह्य रूप से राज्य को समृद्धिशाली एवं

उत्तम बनाने के लिए दृढ़ संकल्पित रहते थे। यहाँ के प्राचीन राजा-महाराजा यह सगर्व घोषणा करते थे-

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

अर्थात् मेरे राज्य में कोई चोर, जुआरी, कंजूस और मदिरापान करने वाला नहीं है, कोई भी ऐसा व्यक्ति मेरे राज्य में नहीं रहता जो नित्य-प्रति अग्निहोत्र न करता हो, जो विद्वान् के गुणों से अलंकृत न हो, कोई भी पुरुष व्यभिचारी नहीं है तो व्यभिचारिणी स्त्री के होने का प्रश्न ही नहीं।

किन्तु आज क्या कोई नेता ऐसी घोषणा कर सकता है? आज हमारे देश के प्रधानमंत्री, सांसद, विधायक, अधिकांशतः सुरा-सुन्दरी, भ्रष्टाचार आदि दुर्गुण-दुर्व्यसनों में निमग्न हैं तथा भौतिक संसाधनों से सुसज्जित भव्य प्रासाद, वाहन आदि का उपभोग कर रहे हैं। कभी वह भी समय था जब चाणक्य जैसे निर्मोही, निर्लोभी ब्राह्मण इस देश में निवास करते थे। चाणक्य गुप्तसाम्राज्य के प्रधानमंत्री थे। उनके राज्य के अपार वैभव की कल्पना हम नहीं कर सकते किन्तु उस राज्य के प्रधानमंत्री के मन का वैभव देखिए जिन्हें प्रजा के धन से लेश-मात्र भी लोभ नहीं था। उनकी कुटी का वर्णन 'मुद्राराक्षस नाटक' के प्रणेता कविवर विशाखदत्त इस प्रकार करते हैं-

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानाम्
बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिः
विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्।।

चाणक्य की कुटी में एक ओर शुष्क गोमय अर्थात् कण्डों को तोड़ने के लिए पत्थर का टुकड़ा रखा है तो दूसरी ओर ब्रह्मचारियों द्वारा लायी गयी कुशाओं का समूह और तीसरी ओर ऊपर सूख रही समिधाओं के कारण जीर्ण-शीर्ण कुटी का झुका हुआ भाग दिखाई दे रहा है। काश! आधुनिक नेता अपने पूर्वजों से कुछ शिक्षा ग्रहण करते। आज के नेताओं में और प्राचीन काल के नेताओं में जमीन आसमान का अन्तर है। एक ओर देश का दिवाला निकल रहा है तो दूसरी ओर इनके विदेशों में बड़े-बड़े खाते खुल रहे हैं। इन्हें देश की कोई चिन्ता नहीं। आज आतंकवाद, भ्रष्टाचार, शोषण, हिंसा, लूटपाट, नशाखोरी, बलात्कार, भुखमरी, बेरोजगारी, साम्प्रदायिक दंगे आदि से देश की जनता जूझ रही है पर इनके उपभोग के संसाध्नों में कोई कमी नहीं आ रही। किसी ने ठीक ही कहा है-

गाँधी बाबा के सुराज में
सुरा बचा है राज नहीं,
राज बहुत खुलते हैं पर
खुलता यहाँ रामराज नहीं।
है कैसी विडम्बना राजनीति में
नीति की कोई रीति नहीं।
और राजनैतिक नेताओं में,
नैतिकता से प्रीति नहीं।

आजादी का जो स्वप्न हमारे वीरों ने संजोया था, जिसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व मातृभूमि की बलिवेदी पर न्यौछावर कर दिया। उन बलिदानियों की कल्पनाओं में क्या ऐसा ही भारत बसा था- भ्रष्ट राजनेता, भ्रष्ट राजनीति, भ्रष्ट शासन और भ्रष्ट न्याय।

पाठकवृन्द। धर्म हमारे तपःपूत महर्षियों द्वारा अर्जित अनुभवों का, पुण्यों का सार है। इस सत्य को स्वीकार कर लेने पर ही हम सत्य-असत्य न्याय-अन्याय, ज्ञान-अज्ञान आदि में परस्पर भेद कर सकते हैं। धर्म हमारी आत्मा के साथ संपृक्त है, इसलिए धर्म को जब भी अलग करने की बात हम सोचेंगे, तो समझिए हम जीवन शून्य हो जायेंगे और राजनीति भी नीति-शून्य हो जायेगी। धर्म को विवादास्पद, हेय, निन्दित, घृणित और साम्प्रदायिकता की सीमा तक ले जाने का कार्य सत्ता के लोभी कर रहे हैं। जो भारत के आध्यात्मिक रूप और गौरव को विश्व के सम्मुख धूमिल करने का प्रयास करेगा और षड्यन्त्र करेगा, उन्हें धर्मप्राण यह देश कभी क्षमा नहीं करेगा।।

❑❑

मैं प्रधानमन्त्री की कुर्सी से बोल रही हूँ

—ब्र० सञ्जीवनी
शास्त्री प्रथम वर्ष

स्वप्न देखना बुरी बात नहीं। मैंने भी एक स्वप्न देखा कि मैं प्रधानमन्त्री पद की शपथ ले रही हूँ। शपथ में मैंने भगवान को साक्षी मानकर देश रक्षा की शपथ ली। शपथ लेकर मन्त्रिमण्डल के तमाम झगड़ों को निपटा कर जब मैं प्रधानमन्त्री की कुर्सी पर बैठी तो मेरे सामने देश की तमाम जिम्मेदारियाँ थीं। कुछ ही दिनों बाद स्वतन्त्रता दिवस आने वाला था। संयोग से पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री मुख्य अतिथि के रूप में आहूत थे। मैं सोचने लगी, देश की कुर्सी तो मुझे मिली है, किन्तु इस के साथ कितनी जिम्मेदारियाँ हैं। कैसा देश मुझे विरासत में मिला है। मैं किधर से इसका सुधार प्रारम्भ करूँ। मेरे पास प्रधानमन्त्री कार्यालय के विद्वान् अधिकारियों द्वारा तैयार किया हुआ भाषण था। मैं उस पर विचार करने लगी। भाषण क्या था जनता को लुभाने का झुनझुना था, वायदे थे, चाटुकारिता थी। मैं परेशान थी, क्या होगा इस देश का? मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्यों से मिलने का समय हो रहा था, अर्दली कई बार आ चुका था। मैंने अपने सभी कार्यक्रम रद्द कर दिये। प्रमुख अंगरक्षक को आज्ञा दी, तुम बाहर जाओ। वह जा चुका था। मैं अब प्रधानमन्त्री भवन में अकेली विचार कर रही थी यदि मैंने केवल देश-हित की बात कही तो देश मुझे मार देगा। मैंने सोचा कोई बात नहीं। जिस राष्ट्र में हम जन्म लेते हैं उसके प्रति हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने राष्ट्र का नाम उज्ज्वल करें।

"परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति राष्ट्रं समुन्नतिम्।।"

परिवर्तन संसार का धर्म है। यहाँ पर आए दिन मनुष्य मरते और जन्म लेते हैं, परन्तु जन्म लेना उसी का सार्थक है जो राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर पहुँचाता है। किसी शायर के शब्द हैं—

यूँ तो जीने के लिये लोग जिया करते हैं,
लाभ जीवन का नहीं फिर भी लिया करते हैं।
मृत्यु से पहले तो मरते हैं हजारों लेकिन
जिन्दगी उन्हीं की है जो मरकर भी जिया करते हैं।।

इस विचार से मुझे नयी ताजगी मिली, और मैं प्रातः जब लालकिले पर भाषण देने गयी तो मेरा भाषण इस प्रकार था1

सम्माननीय-------- तथा प्यारे बच्चो !

मैं आपके सामने भारत का प्रतिनिधित्व कर रही हूँ। मुझे प्रधानमन्त्री न समझकर देश का सेवक समझियेगा। जिस देश में मनुष्य जन्म लेता है, खेलता है, बड़ा होता है उसकी साँसों में जिस की गन्ध होती है वह मानव का अपना प्राणों से प्यारा देश होता है। हमें चाहिए उस प्राणप्रिय देश का नाम उज्ज्वल रखने के लिए, स्वभाषा, स्वसभ्यता, स्वसंस्कृति, स्वधर्म, स्वगौरव आदि को सम्पूर्ण जीवन में अपनायें।

भाइयो! आज सरकारी कार्यालयों में अपनी भाषा में कार्य नहीं हो रहा है। सब कार्य विदेशी भाषा, जो अपनी है ही नहीं उधार ली गयी है उस अंग्रेजी में हो रहा है। परायी चीज कष्टदायक होती है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, आजादी के ये 59 साल गुलामी से अधिक कष्टदायक हैं। जब भारत गुलाम था तो स्वभाषा के अभिमान की ज्वाला महर्षि दयानन्द जैसे महापुरुषों ने देश के कोने-कोने में प्रज्ज्वलित कर रखी थी। ऐसा लगता था कि देश के आजाद होते ही अंग्रेजों के साथ

उनकी अंग्रेजी भी विदा हो जायेगी। हमारे राष्ट्रपिता कहलाने वाले महात्मा गाँधी और हमारे प्रथम प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने सरदार वल्लभभाई पटेल को प्रधानमन्त्री बनने दिया होता तो अंग्रेजी विदा हो गयी होती।

मैं अंग्रेजी को सीखने का विरोध तो नहीं करती। मैं तो यही सोचती हूँ कि भारत में रहने वाला प्रत्येक मनुष्य सभी भाषाओं को सीखे, परन्तु ऐसा न हो कि अपनी मातृभाषा को ही भूल जाये? क्योंकि भाषा ट्रेन की पटरी की तरह होती है। जिधर पटरी जाती है, ट्रेन भी उधर ही जाती है। अगर पटरी दिल्ली की तरफ जा रही है, लाख कोशिश करने के बावजूद भी ट्रेन बम्बई की तरफ नहीं मुड़ सकती। आज हिन्दुस्तानी शिक्षा की ट्रेन को अंग्रेजी की पटरी पर दौड़ाया जा रहा है। यह ट्रेन कहाँ जायेगी? यह कुछ पता नहीं? यह ट्रेन गंगा के घाट पर जायेगी या कालिन्दी के कूल पर। यह अयोध्या की गलियों में हजार साल की यात्रा के बाद भी नहीं आ सकती। यह जाएगी और सीधी जाएगी टेम्स के किनारे या ट्राफलगर स्क्वेयर या बकिंघम के राजमहल के पास। क्यों? क्योंकि यह अंग्रेजी की पटरी पर दौड़ रही है। याद रखिये भाषा जितनी अच्छी सेविका है, उतनी ही कठोर स्वामिनी भी है। ऐसी स्थिति में महात्मा गांधी के रामराज्य का स्वप्न धरा का धरा रह जाएगा।

मैं अपने मन्त्रिमण्डल से अपेक्षा करूँगी कि जब संसद का अधिवेशन हो तब संविधान के भाषा सम्बन्धी धारा को नये ढंग से बदलने की माँग की जाए। इस भाषा संविधान में अंग्रेजी का कहीं नाम तक भी न हो, हो सके तो उसमें यह भी प्रावधान रखा जाए कि एंग्लो-इण्डियन और विदेशियों के अतिरिक्त भारत में जो भी अंग्रेजी का सार्वजनिक प्रयोग करेगा उसके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई की जाये। आज मेरे देश में जहाँ-तहाँ हाहाकार, रिश्वतखोरी, अपहरण, बेईमानी, भ्रष्टाचार, आतंकवाद का बोलबाला है।

बरबाद चमन के करने को,
जब एक ही उल्लू काफी है।
हर शाख पै उल्लू बैठा,
अन्जामे गुलिस्ताँ क्या होगा।।

मैं अपने मन्त्रिमण्डल से यह अपेक्षा करती हूँ कि वे भ्रष्टाचार को बढ़ावा न दें। अपने आय-व्यय को पारदर्शी बनायें। प्रशासनिक शिथिलता भ्रष्टाचार की जड़ है। रिश्वत के बिना फाइल हिलती नहीं और कार्य की सम्पन्नता पर प्रश्नवाचक चिन्ह बना रहता है। मैंने भी प्रधानमंत्री पद की प्राप्ति से पूर्व सामान्य नागरिक का जीवन व्यतीत किया है। इसलिये मैं जानती हूँ भ्रष्टाचार की जड़ें बहुत दूर तक फैली हुई हैं। संसद भारत का मेरुदण्ड है, जहाँ से सभी कानूनी धाराएँ लागू होती हैं, वहाँ पर भ्रष्टाचार का बोलबाला है। सर्विस के नाम पर योग्यता न देखकर रिश्वत लेकर अयोग्य व्यक्ति को उस पद पर नियुक्त कर देना यह भी एक प्रकार का भ्रष्टाचार है।

नौकरी के लिये भटकता
फिरता शिक्षित नौजवान है,
गरीबी से भूखा मरता
आज का इन्सान है।
अरे! जरा आँख खोल के देखो लोगो,
क्या यही मेरे देश का संविधान है।।

भ्रष्टाचार रोग का एक ही निदान है– मन का नीरोग होना, मन तभी नीरोग होगा, जब हम बाहर और भीतर से मन को भ्रष्टाचार की ओर ले जाने वाली पशुवृत्तियाँ छोड़ देंगे, एवं इन्द्रिय संयम द्वारा जीवन में त्यागपूर्ण भोग 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा:' की भावना को अपनायेंगे।

प्रिय सांसदो! आज पूरा भारत, भारत ही नहीं पूरा विश्व आतंकवाद के शिकंजे में जकड़ा हुआ है। जिसका कारण समुचित दण्ड व्यवस्था न होना है।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति,
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।

मनु महाराज ने दण्ड को सर्वोपरि स्थान दिया है। अगर हमारी दण्डनीति सशक्त हो जाये तो आज आंतकवाद पर नियन्त्रण हो जाये। सन् 1999 में जो आंतकवादी गिरफ्तार किये गये थे, अगर हम जागरूक होते, उन्हें उनके किये हुये की सजा मिलती तो आज भारत की स्थिति यह नहीं होती।

इसी प्रकार 22 दिसम्बर सन् 2000 में सुरक्षा व्यवस्था को धता बताकर संसद भवन में लश्कर ए-तोयबा के छह आतंकियों का अन्दर प्रवेश करना किस बात का द्योतक है? 11 सितम्बर सन् 2001 में अमेरिका के न्यूयार्क शहर में वर्ल्ड ट्रेंड सैन्टर पर जो हमला हुआ, वह भी इसी बात का द्योतक है कि हमें अभी तक आंतकवाद का जवाब देना नहीं आया।

मैं शपथ लेती हूँ कि देश हित में चाहे मेरे प्राण चले जायें। मैं आतंकवाद को जड़ से मिटाकर ही दम लूँगी। इस पद पर रहते हुये मेरे आदर्श होंगे— मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, योगिराज श्रीकृष्ण महाराज, चन्द्रगुप्त राज्य के प्रधानमन्त्री चाणक्य। इनका आदर्शमय जीवन प्राचीन काल में भी उपादेय था और आधुनिक राजनीतिक जीवन को सुधारने में भी हमारा सम्बल बनेगा। धन्यवाद!

इस प्रकार मैं अपना भाषण देकर सुरक्षा गार्डों से घिरी हुई अपने भवन में आ गयी थी। सारा मन्त्रिमण्डल मुझसे असन्तुष्ट दीख रहा था। मैं अकेली ही इस भाषण से परम सन्तुष्ट थी, क्योंकि देश हित में मुझसे बढ़िया भाषण आज तक किसी का न हुआ था। मुझे अपने आप पर गर्व हो रहा था कि मेरे दरवाजे पर खट्खट् की आवाज भी साथ ही हुई। मैं चौंकी। मेरा सपना टूट चुका था। काश! यह सपना पूरा हो जाये।

❑❑

❁ बुद्धि की शुद्धता ❁

बुद्धि तीव्र हो, यह आवश्यक है, किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं। बुद्धि शुद्ध भी होनी चाहिए। एक नगर में दो डाक्टरों ने धन कमाने का यह ढंग निकाला कि छोटे- छोटे बालकों को लालच देकर हर लिया जाये और उनके गुर्दे निकालकर बेच दिये जायें। इसके पीछे काम कर रही बुद्धि तीव्र तो अवश्य थी किन्तु शुद्ध नहीं थी। इसके विपरीत जिस व्यक्ति की बुद्धि शुद्ध हो किन्तु तीव्र न हो, उसे लोग ठगते रहते हैं। यह भी वाञ्छनीय नहीं है। अतः बुद्धि में दोनों गुण हों, वह तीव्र हो और शुद्ध भी। ऐसी बुद्धि ही उत्तम कर्मों में लगती है। इसी बुद्धि की कामना गायत्री मन्त्र में की गयी है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह सब मनुष्यों की बुद्धि को उत्तम कर्मों में प्रेरित करे ताकि सर्वत्र सुख, शान्ति, समृद्धि एवं आनन्द की वर्षा होती रहे।

आतङ्कवाद के शिकंजे में भारत

—ब्र० भावना (बबराला)
कक्षा–10

संसार शिरोमणि भारत का
यह कैसा दुःखद नजारा है?
आंतकवाद हिंसा अधर्म का
भारत में विस्तारा है।
काश्मीर में आये दिन हमले
पर हमले होते हैं
जनता क्या सैनिक भी अपने
प्राणों को यहां खोते हैं।
बड़े-बड़े नेताओं को
आंतकवाद ने मारा है।।
यह कैसा दुःखद नजारा है?

आर्यजनो!

कहाँ सो रहे हैं। आप आंतकवाद के शिकञ्जे मे कसते जा रहे हैं। आज भारत ही नहीं अपितु पूरा विश्व आंतक से भयभीत है। हमारे देश को आर्यावर्त्त तथा हिन्दुस्तान कहा जाता है। लेकिन इस राष्ट्र में रहने वालों की तरफ दृष्टिपात किया जाये तो आर्य तथा हिन्दुओं की अपेक्षा मुस्लिम जनसंख्या बढ़ी हुई दिखाई देगी।

❑ आंतकी संगठन

जब से जनरल परवेज मुशर्रफ ने पाकिस्तान की राजसत्ता अपने हाथ में ली है तब से भारत में जगह–जगह आंतक का डेरा लगा हुआ है। पाकिस्तान सरकार की देखरेख में 150 से भी अधिक आतंकी प्रशिक्षण केन्द्र चल रहे हैं, जो दर्जनों की संख्या में केवल भारत में ही अपने बुरे मनसूबों को पूरा करने में लगे हैं। इन संगठनों में कुछ कुख्यात संगठन इस प्रकार है– अलकायदा, माओवादी, सिमी, अल मंसूरियन, लश्कर–ए–तोएबा आदि। लश्कर–ए–तोएबा संगठन ने 2006 में अमृतसर में स्थित 6 अक्टूबर को स्वर्ण मन्दिर को उड़ाने की धमकी दी, 7 अक्टूबर को जम्मू कश्मीर में स्थित रघुनाथ मन्दिर रेलवे स्टेशन तथा 8 अक्टूबर माता वैष्णो देवी मन्दिर को विस्फोट कर उड़ाने की धमकी दी। इन सभी धमाकों को रोकने के लिए सुरक्षाकर्मियों को तैनात कर दिया गया है।

❑ आतंकी घटनायें तथा कुप्रभाव

14 अगस्त 1947 में पाकिस्तान विभाजन के बाद से आज तक अनगिनत आतंकी घटनायें कहर ढाती जा रही हैं। गत वर्ष 1993 में मुम्बई में एक दर्दनाक घटना घटी, जिसने सभी को बुरी तरह झकझोर दिया। इस घटना में 24 घण्टे के अन्दर 13 धमाके हुये। उसमें लाखों लोग मृत्यु के ग्रास बनें, 200 लोग घायल हुये, 27 करोड़ सम्पत्ति का भारी नुकसान हुआ। ये विस्फोट मुम्बई के जनजीवन को त्रस्त करने के साथ ही देश की अर्थव्यवस्था को तहस–नहस करने के इरादे से किया गया था। मई 2006 में भी बनारस कैंट पर आतंकी घटना हुई, इस घटना में आतंकी संगठनों ने प्रेशर कुकर के अन्दर बम रखकर विस्फोट किया। कुकर के फटने से लोग बुरी तरह घायल हुये और सहस्रों लोग कालकवलित हुये। हमारा कश्मीर भी आज असुरक्षित है। इसमें पिछले छः वर्षो से यानी 2001 से 2006 जून तक 16348 आतंकी हमले हुये, और अभी भी हो रहे हैं। इन धमाकों के कुप्रभाव से भारतीय नागरिक विलाप करते तथा तड़पते हुये चल बसते हैं।

❑ हिन्दू तथा आर्यों की जनसंख्या में कमी

सहस्रों वर्ष पूर्व हमारे देश को आर्यावर्त्त के नाम से पुकारा जाता था और आज भारत के नाम से पुकारा जाता है। जिस देश को इतने शोभनीय नामो से पुकारा

जाता था, आज उसी देश की इतनी दयनीय स्थिति हो चुकी है। कि इस देश में हिन्दू तथा आर्य दोनों धाराओं का सर्वनाश हो रहा है। नये आंकड़ों के अनुसार पाकिस्तान में मुसलमानों की संख्या 12 लाख है। जबकि भारत में 18 लाख। इस प्रकार सिद्ध होता है कि मुस्लिम जनसंख्या पाकिस्तान की अपेक्षा भारत में ज्यादा है। इतनी बढ़ती मुस्लिम जनसंख्या को बढ़ते हुये देखकर लगता है, हमारी सरकार का अस्तित्व मुसलमानों के तुष्टीकरण तथा हिन्दू विरोधियों पर आधारित है। इस नीति के चलते हिन्दू जनसंख्या में वृद्धि असम्भव है। आज मुशर्रफ का भी उद्देश्य इस्लाम धर्म को बढ़ाने का रह गया है। हम आर्यों को भी आर्य जनसंख्या को बढ़ाना चाहिये, जिससे यह देश पुनः मुसलमानों का गुलाम न बन सके और प्राचीनकाल की तरह इस भू पर आर्यों का चक्रवर्ती राज्य स्थापित हो सके।

❑ राजनेताओं को जागरूक होने की आवश्यकता!

खेद की बात है कि इतना होने पर भी हमारे हिन्दू राजनेता गहरी निद्रा में सो रहे हैं। सदियों से सोये हुये आर्यजनो! जागिये। अब जागने का समय है ऐसे में गांधीवाद (अहिंसा) का परित्याग कर इस तरह कदम उठाना चाहिये, जिस तरह एक राही अपनी मन्जिल पाने के लिये कदम उठाता है, और जब तक उस राही को अपनी मन्जिल नहीं दिखाई देती है तब तक वह चैन से नहीं बैठता। जब हम उस राही की तरह सुदृढ़ होकर कदम बढ़ायेंगे तभी हमें अपनी वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकेगी। आज सभी को देश के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है। हमारे अन्दर ऐसी दिव्य भावनाओं का संचार होना चाहिये जैसे कि-

हम राष्ट्र का नक्शा
बदलकर के ही दम लेंगे
इरादा कर चुके उसको
सफल करके की बैठेंगे
जो है अधिकार औरों का
हमें उससे नहीं मतलब
मगर जो हक हमारा है उसको
प्राप्त करके ही दम लेंगे।।

अंन्त में मैं इतना ही कहना चाहूँगी कि आज हमारे नौजवान भाई बहिनों को चाहिये कि वे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर स्वार्थ रहित होकर अपने राष्ट्र को ऊँचे शिखर पर लाने का प्रयास करें। जिस प्रकार मुसलमान अपनी कुरान का आदेश लेकर आगे चलते हैं, वैसे ही हम आर्यों को चाहिये कि हम वेद के आदेश 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' को लेकर चलने का प्रयास करें। तभी हम आंतकवाद के शिकञ्जे से छुटकारा पा सकते हैं।

❑❑

स्वदेशी राष्ट्रीय गान

जन-गण-मन सुखदायक जय हे, भारत विश्व विधाता।
पंजाब, सिंध, गुजरात मराठा, तमिल उत्कल बंग।
कश्मीर, हिमाचल, गंगा, यमुना। विन्ध्य, जलधि तरंग।
तव रक्षण हित जागें। तव हित शीश कटा दें।
गाएं तव जय गाथा। जन-गण मंगलदायक जय हे
भारत विश्व विधाता। जय हे, जय हे, जय हे।

संशोधक — आचार्य आर्य नरेश
उद्गीथ साधना स्थली, हिमाचल

आज भी संसार में मानवता है

—ब्र० प्रीति (धनौरा मण्डी)
कक्षा-10

एक दिन मैं रास्ते में अकेली जा रही थी।
जंगल घनघोर था राह सूनी पड़ी थी।

याद न जाने क्यों मुझे घर की आ रही थी।
माता-पिता ने भेजा आखिर मुझे क्यों यहाँ।।
यह बात मेरे दिल में हलचल मचा रही थी।
अचानक मैं ठहरी मैंने स्वयं को असमर्थ पाया।।
अपने आप को मैंने डॉक्टर के सामने पाया।
एक व्यक्ति ने देकर सहारा मुझे था बचाया।।
क्या कोई नारी के प्रति दयावान है

यह प्रश्न मेरे दिमाग में आया।
एक व्यक्ति मेरे सामने खड़ा था।।
आँखों में उसके स्नेह झलक रहा था।
मैंने उसको धन्यवाद देना चाहा।।

परन्तु उसने इसे कर्त्तव्य अपना बताया।
नेताओं को उसने कुर्सी का लोभी बताया।।
यज्ञ करने वालों को उसने मानव बताया।
एकता की शक्ति का मुझे महत्त्व समझाया।।
ऐसा न होने से डूबा है सम्पूर्ण देश गर्त में।
उसने इसका मुझे अनुभव कराया।।
वेद के मन्त्र गूँजेंगे कब धरातल पर।
ऐसा कहते-कहते उसकी आँखों में अश्रुपात हो आया।।
अन्त में सार मुझे तब समझ में आया।
जब उसने "स्वामी दयानन्द" को अपना गुरु बताया।।

❑❑

विद्यार्थी जीवन

—अमृता आर्या (नजीबाबाद)
कक्षा- 10

मैं एक विद्यार्थी हूँ विद्यार्थी जीवन पर ही अपना भाव व्यक्त करना चाहूँगी।

विद्यार्थी जीवन मानव मात्र की नींव होती है। यदि विद्यार्थी जीवन में हम अपने जीवन को सुव्यवस्थित कर लें तो सम्पूर्ण जीवन सफल हो जाएगा। विद्यार्थी जीवन का उद्देश्य शिक्षा प्राप्त करना है और शिक्षा का उद्देश्य है—

The aim of education is To develop in the body and in the soul all the beauty and all the perfection of which they are capable.

अर्थात्— शरीर और आत्मा में अधिक से अधिक जितने सौन्दर्य और जितनी सम्पूर्णता का विकास हो सकता हो उसे सम्पन्न करना।

शिक्षा से ही व्यक्ति को सत्यज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान ही एक ऐसा साधन है जो समाज में व्यक्ति को ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित करता है।

नेत्रहीनो यथा लोकः कृच्छ्राणि लभतेऽध्वनि।
ज्ञानहीनस्तथा लोके तस्माज्ज्ञानविदोऽधिकः।।

जैसे— नेत्रहीन मनुष्य मार्ग में अनेक कष्ट पाता है वही स्थिति इस संसार में ज्ञान रहित मनुष्य की होती है। इसलिए ज्ञानी मनुष्यों को अधिक श्रेष्ठ माना गया है और इस अमूल्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिए विद्याध्ययन करना बहुत जरूरी है। विद्याध्यन करने के मार्ग में विद्यार्थी को बहुत सावधान रहना चाहिए।

जैसे— समय का सदुपयोग, आत्मविश्वास, प्रातः जागरण, पुरुषार्थ तप करना, प्रसन्न रहना आदि मुख्य बातों पर ध्यान देना अनिवार्य है।

1. समय का सदुपयोग— विद्यार्थी को मुख्य रूप से समय का सदुपयोग करना चाहिए। किसी पाश्चात्य विद्वान ने कहा है— Time is money कि समय धन है।

खोया हुआ समय कभी वापस नहीं आता। आजकल हम सभी अपनी कलाईयों पर घड़ियाँ बाँध लेते हैं। इस घड़ी को इंग्लिश में Watch कहते हैं। परन्तु हम समय पर अपनी दिनचर्या नहीं कर पाते हैं। यदि समय का सदुपयोग नहीं कर सकते तो घड़ी बाँधना भी व्यर्थ है।

वस्तुतः— Watch का प्रत्येक अक्षर एक दिव्य संदेश दे रहा है वे संदेश निम्न हैं—

1. Watch your word— अपने वचनों की दूसरों के साथ की हुई प्रतिज्ञाओं की ओर ध्यान दीजिए। आप जो दूसरों के साथ प्रतिज्ञा करते हैं उनका पालन कीजिए।

2. Watch your actions— अपने कार्यों पर दृष्टि डालिये। क्या आप अपने कर्त्तव्य को निभा रहे हैं।

3. Watch your thoughts— अपने विचारों पर नियन्त्रण रखिये। अपने विचारों को शुद्ध और पवित्र बनाइये। दूसरों के प्रति कल्याण की भावना रखिये।

4. Watch your character— प्रतिदिन अपने चरित्र का अवलोकन कीजिये और अपने चरित्र को श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न कीजिये।

5. Watch your heart— अपने हृदय में झाँकिये। देखिये कि आपके हृदय में क्षुद्रता और संकीर्णता तो नहीं है अपने हृदय को विशाल बनाइये।

यदि हमारे जीवन में उपर्युक्त गुण नहीं है तो हाथ में घड़ी बाँधना व्यर्थ है हमें समय का सदुपयोग करना चाहिए और समय के एक-एक क्षण पर ध्यान देना चाहिए।

2. आत्मविश्वास—विद्यार्थी जीवन में आत्मविश्वास एक महत्वपूर्ण अंश है।

इसमें नहीं सन्देह जीवन
झंझटों से युक्त है।
वह ही यहाँ जय पाया है
जो आत्मविश्वास से युक्त है।।

आत्मविश्वासी के समक्ष कोई भी कार्य असम्भव नहीं रहता। जब मनुष्य के हृदय में यह विश्वास हो जाता है कि मैं इस कार्य को कर लूँगा तब संसार की कोई भी शक्ति उसे पराजित नहीं कर सकती। आत्मविश्वास एक समुद्र के ज्वार की भांति है इसके ज्वार में हिमालय जैसा महान पर्वत भी तुच्छ प्रतीत होता है, आत्मविश्वासी के सामने पर्वत भी नम जाते हैं, सागर थम जाते हैं, सरिताएँ सूख जाती हैं।

अंग्रेजी में भी एक वाक्य है–

Selftrust is the first secret of success.

आत्मविश्वास ही सफलता का पहला रहस्य है। आत्मविश्वासी व्यक्ति कभी मृत्यु से नहीं घबराते। मैं इसी विषय में एक छोटा सा दृष्टान्त देना चाहूँगी- कालोना स्टीफेन को जब उनके शत्रुओं ने कैद करके पूछा। बताओ तुम्हारा किला कहां हैं। स्टीफेन ने अपने हृदय पर हाथ रखकर कहा यहां पर है मेरा किला। यह है आत्मविश्वास कि शक्ति। हम सब विद्यार्थियों को कभी भी अपने अन्दर हीन भावना नहीं लानी चाहिए। हमें सदा विचार रखना चाहिए-

इतने ऊपर उठो की जितना आसमान है,
इतने बड़े बनो की जितना सूरज महान है।
ऐसे बढ़ो जैसे निर्झर बढ़ चलता है,
हर टीले पर चट्टानों पर चढ़ चलता है।।

3. प्रातः जागरण— प्रातः जागरण भी प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अति आवश्यक है। यजुर्वेद की एक सूक्ति भी यही सन्देश देती है–

भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वप्नम्।।
(यजुर्वेद 30/17)

जागना कल्याण के लिए है और सोना नाश के लिए है। यह एक अटल नियम है जो जागता है वह पाता है जो सोता है वह खोता है। इतिहास भी इस बात का साक्षी है। आज भारत में जितने भी महापुरुष हुए हैं यदि हम उनकी जीवनी को पढ़ते हैं तो हमें यही मालूम होता है कि उन्होंने प्रातः जागरण किया।

4. पुरुषार्थ—

मधु मक्षिका करती रही है,
रात-दिन ही काम ज्यों
मत दीर्घसूत्री बन कभी,
कर तू निरन्तर काम त्यों।
तन्द्रा तथा आलस्य में मत
खो समय को तू वृथा
कर कार्य सारे नियम से
रवि चन्द्र करते हैं यथा।।

प्रातः जागरण के साथ-साथ पुरुषार्थ करना भी विद्यार्थी के लिए अनिवार्य है।

हाथ पर धर हाथ बैठे,
रहने से हार होती है
बाहुओं की बल्ली से
नाव पार होती है
पाँव जब उठते अडिग,
विश्वास लिये राही के
तो राह देने के लिये,
क्षितिज में दरार होती है।

इन पंक्तियों पर आचरण करने से मनुष्य निःसन्देह सौभाग्यशाली बन सकते हैं। विद्यार्थी अपने जीवन में पुरुषार्थ करने पर ही परीक्षा में सफलता प्राप्त कर सकता

है। किया हुआ परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। सफलता प्राप्त होने पर तथा आपत्तियां आने पर भी पुरुषार्थ करना चाहिए।

जितने कष्ट कण्टकों में है
जिनका जीवन सुमन खिला।
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही
यत्र-तत्र सर्वत्र मिला।।

5. तप करना— इसी प्रकार तप करना भी विद्यार्थियों के लिए अति आवश्यक है।

दिवमारुहत् तपसा तपस्वी।
(अथर्व० 13/2/25)

तपस्वी तप से ही ऊपर उठता है। तप का सामान्य सा अर्थ है अपनी इन्द्रियों को वश में करना तथा अपनी मंजिल की ओर अग्रसर होना। विद्यार्थियों को अपनी इन्द्रियों को वश में रखना आवश्यक है। ये ही इन्द्रियां हमें कुसंगति तथा नाना दुर्व्यसनों से युक्त करती हैं।

विद्यार्थी जीवन ही प्रत्येक व्यक्ति की नींव है। आधुनिक युग में चुनौतियों से भरे क्षेत्र में प्रसन्न रहना भी एक कला है। बढ़ती प्रतिस्पर्धा आदि से भी विद्यार्थी तनाव महसूस करते हैं। तनाव से मुक्त व्यक्ति ही संसार को कुछ दे सकते हैं। प्रसन्नता तो चन्दन है। दूसरों के माथे पर लगाने से अपनी अंगुलियां ही महक उठती हैं।

मैं अन्त में इतना ही लिखना चाहूंगी कि हम सभी इन बातों को ध्यान में रखते हुए प्रसन्नता के साथ अपने लक्ष्य के प्रति अग्रसर हों क्योंकि-

इस जीवन का उद्देश्य नहीं है,
विश्रान्त भवन में टिके रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक,
जिसके आगे राह नहीं है।।

❑ ❑

आलस्यं मदमोहौ च चापल्यं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।

हिन्दी— आलस्य, नशा, मूढ़ता, चपलता, व्यर्थ इधर उधर की बातें करना, जड़ता= कभी पढ़ना, कभी नहीं पढ़ना, अभिमान और लोभ ये विद्यार्थियों के सात दोष हैं। जिस विद्यार्थी को सुख चैन करने की इच्छा है उसको विद्या कहाँ और जिसका चित्त विद्या ग्रहण करने में लगा है उसको विषय सम्बन्धी सुख कहाँ? इसलिए विद्यार्थी विषय सुख से सर्वदा पृथक् रहें।

(महाभारत, उद्योगपर्व— विदुरप्रजागर)

विद्याविहीनः पशुः

—ब्र० मनीषा आर्या (मुम्बई)
कक्षा-9

किसी भी वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना विद्या कहलाता है। विद्या शब्द चार धातुओं से बनता है। विद सतायाम्, विद विचारणे, विद ज्ञाने और विद्लृ लाभे। हम जानते हैं कि विद्या से विहीन प्राणी पशु के समान है अत: सर्वत्र विद्या का महत्व है। विद्या अनेक प्रकार की होती है। जैसे— योग विद्या, संगीत विद्या, धनुर्विद्या आदि। विद्याएँ कभी नष्ट नहीं होती हैं। यह अनश्वर धन है। विद्या धन को तस्कर चुरा नहीं सकते दु:खदायी शत्रु भी इसका तिरस्कार नहीं कर सकते। विद्या धन वह धन है जो मरने पर भी जीवात्मा के साथ-साथ ही जाता है। अन्य सारे सांसारिक ऐश्वर्य यहीं रह जाते हैं। कहा गया है—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं
प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी
विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने
विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं
विद्याविहीनः पशुः।।

अर्थात्— विद्या मनुष्य की शोभा है। विद्या ही मनुष्य का गुप्त धन है। विद्या भोग्य पदार्थ यश और सुख देने वाली है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विदेश यात्रा में विद्या कुटुम्बी-जनों और मित्रों के समान सहायक होती है। विद्या ही सबसे बड़ा देवता है। विद्या से युक्त मनुष्य का ही राजाओं और राज सभाओं में सत्कार, सम्मान होता है। धन का नहीं। वास्तव में देखा जाये तो विद्या हीन मनुष्य पशु के तुल्य है।

वास्तव में विद्या श्रेष्ठ धन है। अन्य सब धनों का मूल विद्या है। यह दान करने से दोगुनी बढ़ती है और बाँटने से घटती नहीं। विद्या ऐसा उत्तम धन है कि जिसका दान करने से नाश नहीं होता और जिसको राजा, चोर व दायाद (हिस्सेदार) आदि नहीं ले सकतें। अगर, अच्छी प्रकार विद्या पढ़ी जाये तो उसका नाश सम्भव नहीं अगर अच्छी प्रकार न पढ़ी जाये तो उसका नाश सम्भव ही है। जिन मनुष्यों की बुद्धि नही है तो भी विद्या के बिना उसका कोई भी कार्य सम्भव नही और यदि बुद्धि हो और विद्या न पढ़ी हो, तो ऐसी विद्याहीन बुद्धि से भी कोई लाभ नहीं।

If you want to got good
First you take education,

अर्थात्— अगर आप कुछ अच्छा पाना चाहते हैं तो आपको सर्वप्रथम विद्या से परिपूर्ण होना होगा। विद्या अर्जित करने के लिए उत्तम ब्रह्मचारी, उसे शिक्षा देने के लिए उतने ही योग्य, श्रेष्ठ तथा उत्तम से उत्तम गुरु की आवश्यकता होती है। इस प्रकार जब तीन शिक्षक अर्थात्- माता, पिता, आचार्य उत्तम होते हैं तभी शिष्य ज्ञानवान् बन सकता है।

वह सन्तान बड़ी भाग्यशाली है जिसके माता-पिता धार्मिक हैं। जितना माता से सन्तान का उपकार होता है, उतना किसी से नहीं होता। जितना माता बालक का हित चाहती है उतना अन्य कोई भी नहीं। माता अपना कर्त्तव्य तब तक नहीं छोड़ती जब तक बालक की सम्पूर्ण विद्या समाप्त नहीं हो जाती। माता तब तक सुशीलता का समय-समय पर उपदेश करती रहती है। कहा जाता है—

"मातृदेवो भव" माता देवता के समान है। तथा माता के साथ-साथ **"पितृदेवो भव"** पिता भी देवता के समान है। क्योंकि पिता भी सन्तान की प्रत्येक प्रकार की उन्नति के लिए दिन-रात परिश्रम, चिन्तन, मनन करते हैं। जो माता-पिता अपने बालक को उत्तम शिक्षा नहीं देते उनके लिए कहा गया है–

माता शत्रुः पिता वैरी
येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये
हंसमध्ये बको यथा।।

वे माता-पिता बालक के महा शत्रु हैं जो उन्हें विद्या नहीं पढ़ाते। विद्याहीन बालक विद्वानों की सभा में वैसे ही नहीं शोभायमान होते, जैसे हंसों के बीच में बगुला। यह माता-पिता का परम धर्म है कि वे उन्हें सभ्य और शिक्षित बनायें।

बालक के तीसरे शिक्षक हैं गुरु। प्रत्येक गुरु के पास सब प्रकार के विद्यार्थी आते हैं। उनमें से कुछ मूर्ख, कुछ सामान्य, तो कुछ अति उत्तम विद्यार्थी होते हैं। मूर्ख विद्यार्थी उन्हें कहते हैं जिन्हें कुछ भी नहीं आता है और सामान्य विद्यार्थी वे होते हैं, जो न अधिक मूर्ख न अधिक ज्ञानी होते हैं और सबसे अन्तिम और सबसे उत्तम विद्यार्थी वे होते हैं जो तेज से, ओज से उस परम पिता का आशीर्वाद पाकर अपने गुरु से विद्या रूपी अमृत ग्रहण करते हैं। जिसके माता-पिता और आचार्य अधिक लाड़ नहीं करते, परन्तु ताड़ना अवश्य करते हैं वे ही विद्यार्थी विद्या ग्रहण करने के योग्य हैं। गुरु अपने शिष्य का कभी भी बुरा नहीं चाहते हैं। इसलिए शास्त्र कहते हैं–

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।।

अर्थात्– जो आचार्य अपने शिष्य को ताड़ना देते हैं, वे मानो उस शिष्य को अमृत पिलाते हैं और जो आचार्य अपने शिष्य का लाड़ करते हैं। वे मानों उसी शिष्य को अपने ही हाथों से जहर पिलाते हैं। इससे शिष्य के अन्दर दोष उत्पन्न होते हैं।

मेरे विचार में हमें आर्यावर्त्त देश की प्राचीन सभ्यता को कायम बनाने के लिए पाणिनि के प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी जिसमें आठ अध्याय तथा तीन हजार नौ सौ अठहत्तर सूत्र हैं। उसका अध्ययन अध्यापन अवश्य करना चाहिए। अन्त में मैं अपनी सहपाठिनी बहनों से ऋषि के शब्दों में कहना चाहती हूँ–

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः।
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये।
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः।।

अर्थात्– जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता है और जो अभिमान, अपवित्रता से रहित अन्य लोगों की मलिनता का नाश करते हैं, सत्योपदेश विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों को दूर करते हैं। सुभूषित वेद विहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहने वाले वे नर-नारी धन्य हैं। इसलिये आप मन लगाकर विद्याध्ययन करें।

मेरी इच्छा है कि मैं उत्तम शिक्षिका बनूँ। पाणिनि का व्याकरण शास्त्र अवश्य पढ़ूँ। पाणिनि महर्षि ने बड़े ही तप से व्याकरण शास्त्र का निर्माण किया है उसी प्रकार हमें भी तप और त्याग से व्याकरण का अध्ययन करना चाहिये।

❑❑

हम कितने शिक्षित हैं?

—ब्र० इडा आर्या (लक्सर)
कक्षा - 11

मनुष्य संसार के इस कार्यक्षेत्र में सर्वांगीण उन्नति के बिना सफल नहीं हो सकता। जिसमें शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा शब्द 'शिक्ष विद्योपादाने' धातु से 'अ' तथा स्त्री वाचक 'टाप्' प्रत्यय करने से सिद्ध होता है। शिक्षा का विश्लेषण करते हुए महर्षि दयानन्द जी स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखते हैं कि शिक्षा अर्थात् जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटे उसे शिक्षा कहते हैं। शिक्षा को अंग्रेजी भाषा में 'एज्युकेशन' कहते हैं। यह लैटिन शब्द 'एज्यूकेयर' से बना है जिसका तात्पर्य है, जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमताओं का पूर्ण सदुपयोग। एक मनीषी का कथन है कि शिक्षा जीवन का शाश्वत मूल्य है।

शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों एवं मनीषियों की जितनी परिभाषाएँ हैं उन सबका समन्वित अर्थ व्यक्ति के समग्र विकास से ही है। प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट के अनुसार– "शिक्षा व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास है जिस पर वह पहुँच सकता है।" शिक्षाशास्त्री रस्क भी इन्हीं विचारों से सहमत हैं। तभी तो वे कहते हैं कि "शिक्षा का उद्देश्य हमारी शारीरिक आत्मिक तथा बौद्धिक उन्नति करना है।"

यह सब प्राप्त करने के लिए ही हम अपना सम्पूर्ण जीवन विद्या प्राप्ति में लगा देते हैं। "शिक्षा से हमारा चरित्र रूपी दीपक प्रकाशित होता है।

शिक्षा के बिना मनुष्य पशुतुल्य है। लेकिन शिक्षा केवल पुस्तकें पढ़ना ही नहीं अपितु उसे अपने जीवन में नैतिक तथा सामाजिक रूप से ग्रहण करना है। हमारे जीवन का निर्माण हमारी शिक्षा के आधार पर ही होता है। यदि हमारा जीवन नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा से परिपूर्ण है तो वह आदर्श जीवन है और यदि भौतिक शिक्षा को ही अपनाये तो वह भोग प्रधान जीवन ही कहलायेगा। शिक्षा हमारे जीवन का वह महत्वपूर्ण पहलू है जो हमें ही नहीं अपितु राष्ट्र और समाज को नई दिशा देती है व राष्ट्र की अनेक बुराइयों को नष्ट कर राष्ट्र को सर्वोत्कृष्ट तथा विकासोन्मुखी बनाती है। स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा है।

Education is not the amount of information that is put into your brain and remains there undigested. All your life. We must have life building man making character building. Assimilation of ideas if you have assimilated give good ideas and made them your life and character you have more education on than any who has got by heart a whole library.

इसका भावार्थ यह है कि शिक्षा कोई ऐसा धन नहीं है जो केवल मस्तिष्क में ही रहे। यदि हम मानव बनना चाहते हैं, अपने चरित्र का निर्माण करना चाहते हैं तथा अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं तो हमें उन लोगों से अधिक विचार करना चाहिए जो केवल अपने मस्तिष्क में पुस्तकालय ही रखते हैं।

❑ प्राचीन शिक्षा प्रणाली

हमारी शिक्षा प्रणाली इतनी प्रकाशमयी थी कि जो भी इसके सम्पर्क में आया वही प्रकाशमय हो गया। इसी शिक्षा को पाकर त्रेता युग में राम 'मर्यादा पुरुषोत्तम'

बन गये, द्वापर में श्रीकृष्ण योगिराज बन गये। हमारी शिक्षा का दृष्टिपात करके फ्रांस देश के निवासी 'जैकालियट साहब' अपनी पुस्तक 'दि बाईबिल इन इण्डिया' में लिखते हैं। "सब गुणों और विद्या का भण्डार आर्यावर्त्त देश है। हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्यावर्त्त देश की पूर्वकाल में थी वैसी ही हमारे देश की भी कीजिए।"

हमारा देश विद्या का भण्डार था। अरस्तू जैसे दार्शनिक भी इस देश के सन्तों के चरणों में विद्या प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त किया करते थे। इसी सर्वांगीण शिक्षा को आधार मानते हुए मनु महाराज ने घोषणा की थी—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

❑ शिक्षा में पतन

संसार में किसका समय है
एक सा रहता सदा।
है निशि दिवा सी घूमती
सर्वत्र विपदा-सम्पदा।।

महाभारत काल के पश्चात् हमारे देश का धार्मिकता तथा नैतिकता का फला-फूला वृक्ष मुरझाने लगा। भारतीय जीवन आशा और निराशा के झूले में झूलने लगा, चारों और आपत्तियों के बादल छा गये, न जाने कितनी ही समस्यायें जीवन झकझोर देने के लिए उत्पन्न हो गयी। सारे देश में अशान्ति और असन्तोष की बाढ़ सी आ गई। विश्व प्रांगण में पशुता के नग्न नृत्य को देखकर मानवता कराह उठी। हमारे देश की दशा दिन-प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही है, विषमता का विष रोग सारे भारतीय समाज को निस्तेज तथा निष्प्राण कर देता है। भारत जैसे देश में इस प्रकार का नैतिक पतन वास्तव में बड़ी लज्जा तथा कष्ट की बात है। प्रश्न उठता है कि हमारा ऐसा पतन क्यों हुआ? पतन का कारण स्पष्ट है, शैक्षणिक पतन के कारण ही हमारी यह दशा हुई। शिक्षा की उन्नति के साथ भारत उन्नति के शिखर पर चढ़ा और शिक्षा के पतन के साथ ही अवनति के गर्त में गिरा। सारी विषमता, असन्तोष तथा भ्रष्टाचार का मूल समुचित शिक्षा प्रणाली का अभाव है। शिक्षा जो हमारी समस्याओं के लिए समाधान मानी जाती थी वह विधि और व्यवस्था के लिए स्वयं एक दुर्दान्त समस्या के रूप में राष्ट्र के सामने खड़ी है। देश की दुर्दशा का कारण चाहे किसी भी दृष्टिकोण से देखें उसके मूल में शिक्षा का ही अवमूल्यन दृष्टिगोचर होता है।

❑ आधुनिक शिक्षा प्रणाली

हम अपनी शिक्षा प्रणाली को भूलकर एक ऐसी प्रणाली का अनुसरण कर रहे हैं जो कि यूरोपीय पद्धति की नकल है और यह हमारे लिए लाभप्रद नहीं है और यह भी देखने में आ रहा है कि इस प्रणाली में केवल साक्षरता को स्थान दिया जाता है। भारतीयों को क्लर्क बनाने वाली मैकाले की आधुनिक शिक्षा पद्धति को मैं शिक्षा नहीं कह सकती, हाँ साक्षरता अवश्य कह सकती हूँ। शिक्षा को ग्रहण कर व्यक्ति शिक्षित बनता है जबकि आधुनिक शिक्षा प्रणाली का सर्वोच्च उद्देश्य जनसाधारण को साक्षर बनाने का संकल्प है। तभी तो राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का आविर्भाव हुआ। इस प्रसंग में यह नहीं भूलना चाहिए—

"साक्षरा विपरीताश्चेत् राक्षसा एव केवलम्"

साक्षर शब्द को उल्टा करने पर राक्षस शब्द बन जाता है। यदि शिक्षा में सदाचार को न जोड़ा जाए तो ऐसी शिक्षा राक्षसों का ही निर्माण कर सकती है, मनुष्यों, देवों और ऋषियों का नहीं। साक्षरों की मतिभ्रष्ट हो जाने से वह अपने गुण, कर्म, धर्म को त्याग कर राक्षसत्व का आचरण करने लगता है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण आपके समक्ष है कि संसार उग्रवाद, आंतकवाद के विध्वंसों से त्राहि-त्राहि कर रहा है। जिसका एक ही निदान है 'शिक्षा

की सर्वांगीणता'। लेकिन साक्षरता के लिए हम केवल छात्रवर्ग को ही दोषी नहीं ठहरा सकते बल्कि इसका उत्तरदायित्व अध्यापकों पर भी है। शिक्षकगण जातिवाद, क्षेत्रवाद तथा धन आदि एकत्रित करने के चक्र में फँसे हुए हैं। यह शिक्षा जगत् न होकर एक व्यापारिक मण्डी की भांति बनता जा रहा है। हम सोचते हैं कि इस शिक्षा को पाकर हमारा भविष्य उज्जवल बनेगा किन्तु आज की शिक्षा को देखकर लगता है कि हमारे जीवन का निर्माण स्वप्न बन कर ही रह जाएगा।

आजकल हम देख रहे हैं कि मनुष्य भौतिकता से सम्पन्न होने पर भी अशान्त है, हीन भावना से ग्रस्त है। यह आध्यात्मिक शिक्षा की कमी के कारण ही हो रहा है। किसी ने ठीक ही कहा है मनुष्य आकाश में उड़ना सीख गया, समुद्र की सतहों पर चलना सीख गया, पाताल की गहराई तक पहुँच गया लेकिन खेद है कि उसे जमीन पर चलना नहीं आया।

वास्तव में आज एक ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो मनुष्य के उत्थान में सहायक होने के साथ ही साथ उसमें कृतज्ञता, विवेक, पुरुषार्थ तथा सेवा भाव भर सके और मनुष्य को प्रत्येक अवस्था में सुखी प्रसन्न तथा प्रमादहीन बना सके, शिक्षा तो वह है जिससे मनुष्य का तन, सबल और मन स्वच्छ पवित्र हो तथा वह छल-प्रपंच से रहित होकर परोपकारी, बुद्धिमान तथा राष्ट्र का एक सुयोग्य नागरिक बन सके। शिक्षा ऐसी हो जिससे हमारी आत्मा को गति मिले, मानवता का प्रसार हो तथा हम विद्यार्थियों का मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक तीनों शक्तियों का विकास हो।

हम बनेंगे अच्छे विद्वान्,
है यही हमारा सपना।
आप दीजिए हमें आशीर्वाद,
ताकि हो सके ये अपना।।

❑❑

यह साम्प्रतिक शिक्षा हमारे सर्वथा प्रतिकूल है,
हममें हमारे देश के प्रति द्वेष मति की मूल है।
हममें विदेशी भाव भरके वह भुलाती है हमें,
सब स्वास्थ्य का संहार करके वह रुलाती है हमें।।

होती नहीं उससे हमें निज धर्म में अनुरक्ति है,
होने न देती पूर्वजों पर वह हमारी भक्ति है।
उसमें विदेशी मान का ही मोहपूर्ण महत्त्व है,
फल अन्त में उसका वही दासत्व है, दासत्व है।।

(राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त)

महान् क्रान्तिकारी शहीद भगतसिंह

—ब्र० अरुषी आर्या (मुजफ्फर नगर)
कक्षा— 9

महान् क्रांतिकारी शहीद भगत सिंह का जन्म 27 सितम्बर 1907 दिन शनिवार को हुआ था। उनके जन्म के समय उनके पिता किशन सिंह व चाचा अजीत सिंह दोनों जेल में थे। जेल में किशन सिंह को भगत सिंह के जन्म का समाचार मिला तो वे बहुत प्रसन्न हुए। भगतसिंह इतने भाग्यशाली थे कि उनके जन्म के समय पिता किशन सिंह को 50 रुपये की जमानत पर छोड़ दिया गया और चाचा अजीत सिंह को मांडले जेल से रिहा कर दिया गया। भगत सिंह का पूरा परिवार फिर से इकट्ठा हो गया। उनका पूरा परिवार देशभक्त था। बड़ा भाई जगत सिंह जो पिता व चाचा के पश्चात् घर पर रहता था, दुर्भाग्य से उसे एक बार टाइफाइड बुखार हुआ। उन दिनों न तो कोई डॉक्टर होता और न घर पर कोई बड़ा था जो दवाई लाता। एक छोटा-सा दस वर्ष का बच्चा और कुछ देहात की औरतें। कौन लाता दवाई ? इस बुखार ने धीरे-धीरे क्षय रोग का रूप धारण कर लिया। संकट पर संकट आता है। वे इस संसार से चले गये। दुःख पर दुःख, किशन सिंह के मन पर उस समय गहरी चोट लगी जब उनके बड़े बेटे जगत सिंह की मृत्यु का समाचार मिला। जगत सिंह के छोटे भाई भगत सिंह पढ़ने में बहुत तेज थे। उसके शिक्षक किशन सिंह से कहा करते थे— "आपका बेटा बड़ा होकर बहुत नाम करेगा।" यह बात उन दिनों की है जब कांग्रेस का अधिवेशन कानपुर में हुआ था। भगत सिंह कॉलेज के राजनैतिक मित्र यशपाल और सुखदेव के साथ वहाँ गये थे, वहीं से उनके मन में देशभक्ति की भावना और प्रबल हो गयी।

एक बार इतिहास के प्रोफेसर सांधी अपना व्याख्यान सम्राट् अशोक के बारे में दे रहे थे कि अपनी पुरानी आदत के कारण बीच-बीच में ऊँघने लगते। भगत सिंह, यशपाल और सुखदेव का मन क्लास में नहीं लग रहा था। परन्तु प्रोफेसर के सामने वे बाहर भी नहीं जा सकते थे। तभी भगत सिंह ने खड़े होकर पूछा— "सर क्या यह सच है कि अंग्रेज लोग भारत में पहले भिक्षु बनकर आये और फिर शासक बने।" उस समय प्रोफेसर सांधी अशोक के इंसाफ के बारे में बता रहे थे। उन्हें इस प्रश्न को सुनकर बहुत क्रोध आया और जोरदार आवाज में बोले मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है मेरे व्याख्यान के बीच में मत बोला करो। तुम हो कि सुनते ही नहीं। उनकी पूरी बातें सुनने से पहले ही सुखदेव उठकर जाते हुए बोले 'सर'! यह भगत बहुत नालायक लड़का है। आप तो 'शाहजहाँ' के बारे में पढ़ा रहे थे और यह अंग्रेजों की बात लेकर बैठ गया। 'शाहजहाँ'! तुम पागल तो नहीं हो गये मैंने तो किसी शाहजहाँ का नाम नहीं लिया सांधी साहब जोर से चिल्लाये। तभी यशपाल उठकर बोले सर ये दोनों पागल है। मैं तो दोनों से कह रहा था कि सर मोहम्मद तुगलक के बारे में बता रहे हैं। शॅट अप! प्रोफेसर सांधी चीख उठे और इतनी जोर से चिल्लाये कि पूरी कक्षा उनकी ओर देखने लगी। तुम सब के सब पागल हो मैं तुम्हें नहीं पढ़ा सकता और वे क्लास छोड़कर चले गये। विद्यार्थी जोर-जोर से हँसने लगे। इन्होंने सांडर्स को गोली मारकर लाला लाजपत राय की मौत का बदला लिया। 3 मार्च 1931 को भगत सिंह के परिवार वाले सभी लोग आखिरी मुलाकात करने आये। इस मुलाकात में दादा जी, माता, पिता, चाचा जी व भाई थे। इनमें सबसे दुःखी दादा जी थे। जिन्होंने इस वंश में सबसे पहले क्रान्ति का बीज बोया था। आज वह बीज वृक्ष बनकर काटा जा रहा था। दादा जी ने भगत सिंह के पास जाकर उनकी पीठ पर हाथ फेरा। वे कुछ कहना चाहते

थे। मगर उनका दिल इतना भर आया कि जबान कहते-कहते रुक गयी और आँसुओं का तूफान बाँध तोड़कर बाहर आया। भगत सिंह ने अपनी माँ से कहा "माँ जी, दादा जी अब अधिक समय तक जीवित नहीं रहेगें। अब आप बंगा में जाकर उनके पास रहना। बस आप मेरी मौत का गम न करना। मैं कभी नहीं मरूँगा। एक भगत मरेगा तो लाखों भगत जन्म लेंगे, माँ जी आप मेरी लाश लेने मत आना। कुलवीर को भेज देना क्योंकि मैं नहीं चाहता कि आपको रोता देखकर लोग कहें कि क्रांतिकारी भगत की माँ रो रही है। इतनी बात कहकर भगत सिंह इतना जोर से हँसे कि सब लोग उन्हें आश्चर्य से देखने लगे।"

23 मार्च 1931 की सुबह उस दिन भगत सिंह की आयु 23 वर्ष 5 माह 26 दिन थी 27वाँ दिन प्रारम्भ हो रहा था। भगत से जब अंतिम बार खाने को पूछा गया तो उन्होंने अपने मन-पसन्द रसगुल्ले मँगवाये। उनके चेहरे पर जरा भी उदासी नहीं थी। वे बड़े मजे से खा रहे थे। जिनको उनके साथ मृत्युदण्ड मिला वे कॉलेज के पुराने साथी सुखदेव व राजगुरु थे। भगत ने देखा जेल के बड़े-बड़े अधिकारी अकड़कर खड़े थे। इसमें से एक बोला भगत तैयार हो जाओ तुम्हें फाँसी देने का हुक्मनामा आ चुका है। भगत सिंह लेनिन की पुस्तक को पढ़ते-पढ़ते अपना बायाँ हाथ उनकी ओर उठाते हुए बोले- ठहरो एक क्रांतिकारी दूसरे क्रांतिकारी से मिल रहा है। उनकी आवाज रोबदार थी। जिसे सुनकर उनमें से किसी को भी बोलने का साहस न था। इस पुस्तक के खास पृष्ठ को पढ़कर उन्होंने बन्द करके छत की ओर उछाल दिया और तेजी से उठ खड़े हुए। फाँसी देते समय भगत ने कहा- न तो हथकड़ियाँ लगायी जायें, न हमारे चेहरों को फाँसी के समय नकाब में छुपाया जाये। जेल अधिकारियों ने उनकी बात मान ली। भगत सिंह बीच में खड़े थे और सुखदेव व राजगुरु दायें बायें खड़े थे। तब तीनों एक स्वर में गाने लगे-

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।।

बैरकों में बंद सारे कैदी रो रहे थे- संध्या के 7 बजकर 33 मिनट पर,

नौजवानों जब कभी तुम्हारे दिल में खटके।
हमें भी याद कर लेना भूले-भटके।।

□□

जीता जागता राष्ट्रपुरुष

भारत जमीन का टुकड़ा नहीं, जीता जागता राष्ट्र पुरुष है।
हिमालय इसका मस्तक है, गौरीशंकर शिखा है।
कश्मीर किरीट है, पञ्जाब और बंगाल दो विशाल कन्धे हैं।
विन्ध्याचल कटि है, नर्मदा करधनी है।
पूर्वी और पश्चिमी घाट, दो विशाल जंघायें हैं।
कन्याकुमारी इसके चरण हैं, सागर इसके पग पखारता है।
पावस के काले काले मेघ, इसके कुन्तल केश हैं।
चाँद और सूरज, इसकी आरती उतारते हैं।
यह वन्दन की भूमि है, अभिनन्दन की भूमि है।
हम जियेंगे तो इसके लिए, मरेंगे तो इसके लिए।

(अटल बिहारी वाजपेयी)

आजादी के इतिहास का एक पृष्ठ

—कु० विदुषी आर्या (विशाखापट्टनम्)
कक्षा—9

धन सम्पदा से ही कोई राष्ट्र बड़ा नहीं बनता। कल-कारखानों की संख्या से भी राष्ट्र बड़े नहीं बनते। नदियों-नालों व पर्वतों से भी राष्ट्र की शोभा नहीं बढ़ती। राष्ट्र की शोभा बढ़ती है वीरों, उत्तम नागरिकों, दार्शनिकों तथा बुद्धिजीवियों से। हमारा भारत देश शक्तिशाली देश है। इसने अपने पतन के काल में भी कई क्रान्तिकारियों कवियों, लेखकों और कलाकारों को जन्म दिया। असंख्य वीरों के बलिदानों के फलस्वरूप हम इस समय भारत में स्वतन्त्रता पूर्वक जी रहे हैं किन्तु आधुनिक काल में यह भ्रम फैल रहा है कि "भारत ने रक्त का एक बिन्दु बहाये बिना स्वराज्य प्राप्त किया।" यह मिथ्या प्रचार कर के राजनेताओं ने इतिहास को बिगाड़ा है। भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, चन्द्रशेखर, राजेन्द्र लाहिड़ी, रोशन सिंह व अशफाक उल्ला खाँ आदि का खून पानी नहीं था। स्वतन्त्रता संग्राम में क्रान्तिकारियों का बहुमूल्य योगदान है। इन्हीं क्रान्तिकारियों में से एक थे रामप्रसाद बिस्मिल। उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए जो कार्य किये हैं वे सराहनीय हैं।

इस महान् क्रान्तिकारी का जन्म 4 जून 1897 ई. को मैनपुरी में हुआ था। सात वर्ष की उम्र में पिता द्वारा अक्षर-बोध कराया गया और उसके पश्चात् मौलवी साहब के मकतब में उर्दू पढ़ने के लिए भेज दिया। जब बिस्मिल उर्दू का चौथा दर्जा पास करके पाँचवीं में आये उस समय उनकी अवस्था चौदह वर्ष की थी। उनमें एक-दो खराब आदतें पड़ गयीं थीं। वे सिगरेट पीने लग गये थे तथा चोरी करने लग गये थे। कभी-कभी भांग भी पी लेते थे। इन सब आदतों से उनके पिता जी बहुत नाराज रहते थे। उनके घर के पास देव मन्दिर था। उसके पुजारी बड़े सच्चरित्र व्यक्ति थे। प्रसाद उस मन्दिर में जाने लगे। पुजारी के उपदेशों का असर बड़ा ही उत्तम पड़ा। वे अधिकतर समय स्तुति-पूजा तथा पढ़ाई में बिताने लगे। स्कूल में भर्ती होने के थोड़े ही दिनों में एक सहपाठी श्रीयुत सुशील चन्द्र सेन से स्नेह हो गया। सुशील जी भी देव-मन्दिर में आने लगे। सुशील जी ने बिस्मिल की स्तुति-पूजा करने की प्रवृत्ति को देखकर उनसे कहा कि आप संध्या किया कीजिए। उन्होंने उनसे सन्ध्या के विषय में पूछा तो उन्होंने महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश दे दिया।

सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन ने उनके जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया। वे कुछ ही दिनों में कट्टर आर्यसमाजी बन गये। जब वे सातवें दर्जे में थे तब सनातनधर्मी पण्डित जगत् प्रसाद जी शाहजहाँपुर पधारे। उन्होंने आर्यसमाज का खण्डन करना शुरू किया। आर्य समाजियों ने भी इसका विरोध किया फिर पण्डित अखिलानन्द जी को बुलाकर शास्त्रार्थ कराया। शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ। उस शास्त्रार्थ में बिस्मिल का विशेष योगदान रहा। उनके पिताजी पौराणिक थे। उन्हें ये सब पसन्द नहीं था। इसी कारण अक्सर पिता-पुत्र में बहस होती रहती थी। एक दिन इसी विषय को लेकर रामप्रसाद घर से निकल गये। इस प्रकार उनका बाल्यकाल समाप्त हुआ। तत्पश्चात् जब वे नवीं कक्षा में आये तो उन्होंने देश से सम्बन्धित पुस्तकें पढ़ीं तथा आर्यकुमार सभा में स्वामी सोमदेव जी के प्रवचन आदि सुनकर उनके दिलमें स्वदेश प्रेम जाग उठा। वे इस देश को पूर्णतया स्वतन्त्र कराना चाहते थे और वेदवाणी प्रत्येक मनुष्य को सुनाना चाहते थे। उन्हें अपने स्वप्नों को पूर्ण करने के लिए

हथियारों की जरूरत थी और हथियारों के लिए पैसों की लेकिन पैसे आते कहाँ से। इसके लिए उन्होंने योजना बनायी। क्योंकि न कोई दान देता न कोई कर्ज। लेकिन किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति उन्हें अभीष्ट भी नहीं थी। उन्होंने सोचा यदि लूटना है तो सरकारी माल क्यों न लूटा जाये। पूर्ण तैयारी होने के पश्चात् उन्होंने लखनऊ में काकोरी स्टेशन में रेल को रोका तथा सरकारी खजाना लूट लिया। अब पैसों की जरूरत तो पूरी हो गयी किन्तु इस कार्य में उनसे थोड़ी त्रुटि हो गयी और वे अंग्रेजों के नजरों से बच न सके। वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—

मैंने जो संगठन किया था, उसमें किसी और में मुझे कमजोरी न दिखाई देती थी। कोई भी किसी प्रकार की त्रुटि न समझ सकता था। इसी कारण आँख बन्द किये बैठे रहे। किन्तु आस्तीन में साँप छिपा हुआ था, ऐसा गहरा मुँहमारा कि चारों खाने चित्त कर दिये।

जिन्हें हम हार समझे थे गला अपना सजाने को।
वही अब नाग बन बैठे हमीं को काट खाने को।।

उन्होंने जिन नवयुवकों को लिया था उनमें से एक थे बनारसीलाल। उन्हें उनके ऊपर थोड़ा सन्देह था। वह सही निकला। क्योंकि उनका रहन-सहन कुछ इस प्रकार था—

वे जब दूसरे सदस्यों के साथ रहते थे तब उनसे कहा करते थे कि— मैं जिला संगठनकर्त्ता हूँ। मेरी गणना अधिकारियों में है। मेरी आज्ञा का पालन किया करो। मेरे जूठे बर्तन मला करो। कुछ विलासिता प्रिय भी थे— जैसे प्रत्येक समय शीशा, कंघा और साबुन साथ रखते थे। बिस्मिल सोचा करते थे कि यदि ऐसा व्यक्ति जेल में जाये तो कैसे रह पायेगा। फिर भी सबके कहने पर अपनी पार्टी में सदस्य के रूप में ले लिया। जब अधिकतर लोग गिरफ्तार कर लिये गये तो बिस्मिल ने उन्हें हरकरननाथ के पास भेज दिया किन्तु जब वे रायबरेली आये तो गिरफ्तार कर लिये गये, अब तक मुकदमा चल रहा था लेकिन गवाही न होने के कारण सजा नहीं मिल पा रही थी। अंग्रेजों ने गवाही के लिए इन सबको बहुत यातनाएँ दीं लेकिन किसी ने सत्य नहीं बताया परन्तु जब बनारसीलाल गिरफ्तार हुए तो उन्होंने सारी सच्चाई बता दी। अब क्या होना था आखिरी सजा फाँसी। इस षड्यन्त्र में 32 लोग गिरफ्तार किये गये। इनमें से 28 लोगों को सजा देनी थी उनमें से 10 लोगों को छोड़ दिया गया और 18 लोगों को सजा हुई और रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, रोशन सिंह, अशफाक उल्ला खाँ, इन चारों को 19 दिसम्बर 1927 ई. सोमवार (पौष कृष्ण 11, सम्वत् 1984 वि.) को 6 बजे प्रातः फाँसी की सजा सुनाई गयी। पं. रामप्रसाद बिस्मिल आत्मकथा में लिखते हैं—

"नवयुवको! मेरा अन्तिम सन्देश यही है कि रिवाल्वर या पिस्तौल को अपने पास रखने की इच्छा को त्यागकर सच्चे देश सेवक बनो। पूर्ण स्वाधीनता उनका ध्येय हो और वे वास्तविक साम्यवादी बनने का प्रयत्न करते रहें। फल की इच्छा छोड़कर सच्चे प्रेम से कार्य करें, परमात्मा सदैव उनका भला ही करेगा।" और अन्त में कहते हैं कि—

यदि देश हित मरना पड़े मुझको सहस्रों बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊँ कभी।
हे ईश भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।।

❑ ❑

स्वतन्त्रता संग्राम में महर्षि दयानन्द का योगदान

—ब्र० पूर्णिमा (झारखण्ड)
कक्षा—10

1857 की प्रसिद्ध क्रान्ति के पश्चात् भारत में गुलामी की जंजीर कसती जा रही थी। विदेशी अंग्रेज सरकार ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि यहाँ देशभक्ति और स्वतन्त्रता का नाम लेना अपनी मौत को निमन्त्रण देना था। ऐसी दशा में महर्षि दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने राष्ट्रीय जागरण में ऐसी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से कार्य किया कि विदेशी सरकार की आँख तब खुली जब समूचे देश में देशभक्ति की भावना जागृत हो गयी और लोग स्वतन्त्र भारत के सपने देखने लगे। इसका कारण यह था कि ऋषि ने धर्म के आधार पर देशभक्ति की चेतना दी थी। स्वामी जी ने कहा था कि— विदेशी शासन यदि माता-पिता के समान कृपा दृष्टि, न्याय और प्रियाचरण करता हो तो भी स्वराज्य के समान कभी भी अच्छा नहीं होता। उनकी इस घोषणा की पुष्टि में थियोसोफिकल सोसाइटी की श्रीमती एनीबेसेण्ट ने लिखा है कि महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने "भारत-भारतीयों का है" ऐसा नारा लगाया। वायसराय नार्थब्रुक को सन् 1872 में दृढ़ता पूर्वक यह कहने का साहस केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती का था कि "मैं नित्य प्रात: सायं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मेरा देश परायी दासता से मुक्त हो।" वायसराय ने अगले दिन ही इस बागी फकीर की रिपोर्ट लन्दन के गुप्तचर विभाग को दे दी, जिसमें लिखा था— "स्वामी दयानन्द सरस्वती जी देश के सबसे बड़े विद्वान् और सुधारक हैं। जो राजनीति और धर्म को पृथक्-पृथक् नहीं मानते हैं। जिसने दैनिक प्रार्थना पुस्तक 'आर्याभिविनय' में लिखा है— हमें चक्रवर्ती राज्य प्राप्त हो, हमारे स्वराज्य की उन्नति हो, हम सौ वर्ष तक अदीन होकर जीयें। उनके प्रचार का मुख्य उद्देश्य देश का शासन विदेशियों के हाथों से छुड़ाकर भारतीयों को सौंपना है, इस विद्रोही फकीर पर कड़ी नजर रखी जाये।"

महर्षि दयानन्द जी तथा आर्यसमाज द्वारा भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में जो अनुपम कार्य किया गया उसकी राष्ट्र के महापुरुषों एवं नेताओं ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।"

1. श्याम जी कृष्ण वर्मा— "मैंने राष्ट्र, जाति तथा समाज की जो सेवा की है उसका श्रेय महर्षि दयानन्द को प्राप्त है। मैंने जो कुछ प्राप्त किया है उसमें सबसे बड़ा हाथ उस सर्वहितैषी, वेदज्ञ और तेजस्वी युग द्रष्टा का है। उस स्वतन्त्र विचारक का शिष्य होने में मुझे अभिमान है।"

2. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक— "ऋषि दयानन्द ऐसे नक्षत्र थे जो भारतीय आकाश पर अपनी अलौकिक आभा से चमके और गहरी निद्रा में सोये हुए भारत को जागृत किया। 'स्वराज्य' के वे सर्वप्रथम सन्देशवाहक तथा मानवता के उपासक थे।"

3. पंजाब केसरी लाला लाजपत राय— "स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरू माना है। वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्य समाज मेरी धर्म की माता है इन दोनों की गोदी में मैं पला। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना, बोलना और कर्त्तव्य पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे संस्था में बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ दिया।"

4. सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन्— "स्वामी दयानन्द एक महान् सुधारक और प्रखर क्रान्तिकारी महापुरुष तो थे ही साथ ही उनके हृदय में सामाजिक

अन्यायों को उखाड़ फेंकने की प्रचण्ड अग्नि भी विद्यमान थी। उन्होंने हमें यह महान् सन्देश दिया कि हम सत्य की कसौटी पर कसकर ही किसी बात को स्वीकार करें।"

5. दादा भाई नौरोजी— मैंने स्वराज्य शब्द को सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों से सीखा। मुझे स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से स्वराज्य की लड़ाई में प्रेरणा मिलती है।"

6. फ्रैंच लेखक रोम्यां रोलां— "राष्ट्रीय पुनर्जागरण जो इस समय दीख पड़ रहा है। इसके लिए स्वामी दयानन्द ने प्रबल शक्ति के रूप में कार्य किया।"

7. वीर सावरकर— "महर्षि दयानन्द स्वाधीनता संग्राम के योद्धा और हिन्दू जाति के रक्षक थे। स्वतन्त्रता के संग्राम में आर्य समाजियों का बड़ा हाथ रहा। महर्षि जी का लिखा अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दू जाति की रगों में उष्ण रक्त का संचार करने वाला है।"

8. एक अंग्रेज लेखक— "किसी भी आर्यसमाजी की खाल को खुर्च कर देखो तो अन्दर छुपा हुआ क्रान्तिकारी देशभक्त महर्षि दयानन्द ही दिखाई देगा।"

इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने, उनके अनुयायियों ने, उनके उत्तराधिकारी आर्यसमाज ने, भारतमाता की स्वतन्त्रता के लिए जो अनुपम कार्य किया है वह इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है।

❑❑

क्रान्तिदूत दयानन्द

घनघोर तिमिर का वक्ष चीर
भू पर उतरी थी एक किरण
सन्देश सबेरे का लाई
हम करते उसका अभिनन्दन।।

जञ्जीरों से जकड़े स्वदेश को
राह दिखाई थी तूने
जिसको न काल भी बुझा सके
वह शमा जलाई थी तूने।।

घनघोर तिमिर के आँगन में
तू बीज उषा के बोता था
आवाज लगाई थी तूने
जब सारा भारत सोता था।।

तू अगर न आता महाजाति का
हो जाता सहसा विनाश
वेदों की धरती पर विदेश की
संस्कृति करती अट्टहास।।

❑❑

गाय की उपयोगिता एवं संरक्षण

—**ब्र० श्रद्धा** (मुजफ्फरनगर)

कक्षा—10

गाय मनुष्य के जीवन का अवलम्ब है। हिन्दू धर्म में भिन्न–भिन्न विचारों के अनेकों गुरु व देवता हैं लेकिन गाय सभी की पूजनीय है। गौमाता मनुष्य मात्र की ही नहीं अपितु देवताओं की भी माता, बहन, पुत्री है जो इस अथर्ववेद के मंत्र द्वारा स्पष्ट होता है—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा मामनागामदितिं वधिष्ट।

अथर्व. 8/101/15

अर्थात् गाय रुद्रों की माता है, वसुओं की पुत्री व आदित्यों की बहन है। वेद के इस मन्त्र में गाय को माता, बहन, पुत्री की संज्ञा दी गयी है। जो भारतवर्ष ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार की सर्वोत्तम सात्विक उपमायें हैं और अनादिकाल से वेद के द्वारा सम्बोधित होती रही हैं।

गाय और इतिहास

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के पूर्वज महाराजा दिलीप ने गोवंश की सेवा करके ही पुत्ररत्न की प्राप्ति की थी, उसी का परिणाम था कि रघु, अज, दशरथ, राम जैसे प्रतापी राजा इस वंश में हुए। राजा दशरथ के समय में गाय का कितना सम्मान था इसके लिए वाल्मीकि रामायण का एक श्लोक प्रस्तुत है—

गवां शतसहस्रं च ब्राह्मणेभ्यो नराधिप।
एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्दिश्य धर्मतः।

(बालकाण्ड, 72/22)

श्री राम, लक्ष्मण आदि चारों भाइयों के विवाहोत्सव की प्रसन्नता में महाराज दशरथ ने अपने एक–एक पुत्र के मङ्गल के लिए धर्मानुसार एक–एक लाख गौयें ब्राह्मणों को गाय दान में दीं। इन गौओं के सींग सोने के पन्नों से मढ़े हुए थे। वे दुधारु थीं तथा उनके साथ सुन्दर बछड़े भी थे। प्रत्येक गाय के साथ दूध दोहने वाले कांसे के पात्र भी थे ऐसा था दशरथ और रामचन्द्र जी का युग।

महाभारत काल में दुर्योधन के पास हजारों गायें थीं। पाण्डवों के सबसे बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर के राज्य में हजार से अधिक भाग गायों के थे, प्रत्येक भाग में आठ–आठ लाख गायें थी, योगिराज श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज ने भी एक राजकुमार होते हुए गाय की सेवा की, गाय की सेवा के कारण ही वे गोपाल भी कहलाये। श्री कृष्ण की दो प्रमुख वस्तुएँ थी। एक बांसुरी दूसरी गाय।

गाय और मुसलमान

हमारा इतिहास साक्षी है कि हिन्दू ही नहीं मुसलमान भी गोमाता को पूजनीय मानते थे। अकबर अपने दिन का प्रारम्भ गाय को प्रणाम कर और नमाज अदा करके करता था। आज जो मस्जिद बाबरी मस्जिद के नाम से जानी जाती है उस मस्जिद के बादशाह तैमूर वंशीय अहीरुद्दीन बाबर ने युद्ध में मृत्यु के समय अपने वसीयत नामे में जमादि–उल–अव्वल हिजरी 930 में पुत्र हुमायूँ को एक पत्र में लिखा कि अगर हिन्दुओं का दिल जीतना चाहते हो तो विशेष रूप से गोहत्या बन्द करवा देना क्योंकि गोहत्या के चलते तुम हिन्दुओं का दिल नहीं जीत सकते। यह वसीयत नामा आज भोपाल के ग्रन्थालय में सुरक्षित है इसी वसीयत नामे के निर्देश के कारण हुमायूँ ने गो हत्या बन्द करवा दी। यहाँ तक कि जहाँगीरे आलम जहाँपनाह के काल में भी गोहत्या बन्द थी। फ्रांस से आये यात्री बर्नियर ने भारत यात्रा का वर्णन करते हुये लिखा है— "गोवध उस समय मनुष्य वध जैसा दण्डनीय अपराध था।"

गाय और स्वामी दयानन्द

जब भारत विदेशी शासन के दानवी, क्रूर पंजों में जकड़ा हुआ था और विवश होकर अपनी सांस्कृतिक धरोहर को लुटता हुआ देख रहा था। तब उस विलक्षण संयासी ने हिन्दू (आर्य) जाति में व्याप्त अनेक अन्धविश्वासों, कुरीतियों को नष्ट करने के लिए साहसिक अभियान चलाया। ब्रिटिश काल में गो वंश का नाश जिस निर्ममता के साथ किया जा रहा था, उसे देख कर महर्षि का गो भक्त हृदय असीम वेदना से कराह उठा, स्वामी जी ने गो रक्षा के लिए बहुत कार्य किये और अपनी इस वेदना को स्वलिखित 'गोकरुणानिधि' पुस्तक में व्यक्त किया। वे लिखते हैं– "तू इन पशुओं पर दया क्यों नहीं करता? ये निरपराध मारे जाते हैं क्या इन पर तेरी प्रीति नहीं है। क्या इनके लिए तेरी न्याय सभा बन्द हो गयी है। क्यों नहीं इनकी पीड़ा समझने के लिए ध्यान देता? क्यों नहीं इनकी पुकार सुनता?" स्वामी जी के इन शब्दों से ही उनकी आन्तरिक पीड़ा व्यक्त हो रही है। महान् आश्चर्य की बात है कि वह दयानन्द जिसने बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर प्रभु की न्याय व्यवस्था पर सन्देह व्यक्त नहीं किया। वह गोवंश के क्षरण से इतना व्यथित हो गया कि प्रभु की न्याय व्यवस्था पर सन्देह करने लगा। वह एक ऐसा विरक्त संन्यासी था जिसने स्वयं की सुरक्षाओं, व्यवस्थाओं को ठुकराकर गोवंश तथा पशुबलि की रक्षा के लिए ब्रिटिश शासकों के द्वार खटखटाने में भी संकोच नहीं किया। गोशाला खुलवाने के लिए स्वामी जी ने सतत प्रयत्न किये। रेवाड़ी के महाराज राव युधिष्ठिर सिंह ने एक गोशाला स्वामी जी के कहने पर स्थापित की जो आधुनिक भारत की प्रथम गोशाला थी। उस समय स्वामी जी ने गोरक्षा पर बल न दिया होता तो सम्भवत: गोवंश आज जीवित न रहा होता। आज फिर उसी तीव्र गति से या कहिए उससे चौगुनी गति से गोहत्या हो रही है इसे फिर से न रोका गया तो मानव विनाश सम्भव है।

वर्तमान भयावह स्थिति

यह कैसी विडम्बना है कि आजादी के 59 वर्ष बाद भी इस देश के हिन्दू भिक्षा माँगने वालों की तरह अपनी सरकार से अपने देश के नेताओं से गोरक्षा की माँग कर रहे हैं जैसे ये हमारा अधिकार न होकर सरकार से अनुग्रह का प्रश्न हो। जिसकी हम पूजा करते थे, पूजा करते हैं उस गाय को आज इस बेदर्दी से मारा जा रहा है कि जिसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। उस स्थिति को याद करते हुए शरीर काँप उठता है। यह मूक प्राणी हम से कुछ कह रहा है। इसकी मूकवाणी को हम उसकी अश्रुभरी आँखों में पढ़ सकते हैं। राष्ट्रकवि पं. मैथिलीशरण गुप्त ने उसे इस प्रकार पढ़ा था–

दाँतों तले तृण दाब कर दीन गायें कह रहीं,
हम पशु तथा तुम हो मनुज, पर योग्य क्या तुमको यही?
हमने तुम्हें माँ की तरह दूध पीने को दिया,
देकर कसाई को हमें तुमने हमारा वध किया।।
क्या वश हमारा है भला हम दीन हैं बलहीन हैं
मारो कि पालो कुछ करो तुम हम सदैव अधीन हैं
प्रभु के यहाँ से भी कदाचित्, आज हम असहाय हैं
इससे अधिक हम क्या कहें हा! हम तुम्हारी गाय हैं।।

आज भारतवर्ष में करोड़ों रुपयों का गोमांस विदेशों में भेजा जाता है। इस देश में अनेक बड़े–बड़े बूचड़खाने स्थापित हो चुके हैं। सन् 1947 में 300 बूचड़खाने भारत में थे किन्तु अब भारत में 370' 4 बूचड़खाने हैं जिनमें सूर्योदय से पहले चार लाख गाय गौत के घाट उतार दी जाती हैं। लगभग 2 करोड़ गायें, बैल, बछड़ों की हत्या हर वर्ष होती है। अल कबीर कत्ल खाने का कत्ल खाना 300 एकड़ कृषि योग्य उर्वरक भूमि पर 'अलकबीरी मांस व गोमांस निर्यात लिमिटेड' द्वारा स्थापित किया गया। यहाँ 6000 गायें प्रतिदिन कटती हैं जिनका 20000 हजार टन मांस ईरान और कुवैत देशों को निर्यात होता है। इस मांस को विदेशों में सस्ते दामों में निर्यात करके

वहाँ से महँगे-महँगे चमड़े के जूते, पर्स, बैल्ट, बैग आदि आयात किये जाते हैं। हम सभी अपने ही देश के जीवित पशुओं की खाल से बनी उपर्युक्त वस्तुओं को महँगे दामों में खरीदकर धड़ल्ले से उपयोग करते हैं और अपनी शान समझते हैं।

वैज्ञानिकों के अध्ययन

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो चुका है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारे शासकों ने गोवंश को नष्टकर भारत को चमड़े और मांस की मण्डी में परिवर्तित करने की योजना बनायी और खेती के लिए गोबर जैसी खाद के स्थान पर रासायनिक खादों को अपनाया। शीघ्र ही इसके दुष्परिणाम सामने आने लगे। देश ही नहीं विश्व के वैज्ञानिकों ने इसे स्वीकार किया है कि गोमाता का दूध ही नहीं मूत्र भी अमृत है। इसमें कैंसर जैसे घातक रोगों से मुक्ति दिलाने के तत्त्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। जापान की राजधानी टोक्यो में वैज्ञानिकों ने मवेशियों के गोबर से पैट्रोल निकालने का दावा किया है। टोक्यो में यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर एण्ड टेक्नालॉजी में एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग विषय के प्रोफेसर शिबुसावा व उनकी टीम ने यह सिद्ध करके दिखाया कि गाय का गोबर किसी खनिज-पदार्थ से कम नहीं है। प्रति 100 ग्रा. गोबर से 1.4 मिली लीटर पैट्रोल प्राप्त किया जा सकता है।

आज सर्वत्र यह चिन्ता व्याप्त है कि मनुष्य और जीव-जगत् को सर्वनाश से बचाने का कोई न कोई मार्ग खोजना होगा। स्वदेश ही नहीं अपितु विदेश के अनेक विचारक अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विनाश के इस दुष्चक्र से बचने का एक ही रास्ता है और वह रास्ता गोवंश की रक्षा के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। अगर कुछ नहीं किया गया तो सृष्टि इन बड़े-बड़े विनाशों के बजाय इन छोटे-छोटे भूकम्पों से नष्ट हो जायेगी।

दिल्ली विश्वविद्यालय के तीन वैज्ञानिकों ने प्रकृति के अन्तःसम्बन्धों के वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध कर दिया है कि संसार में आने वाले भूकम्प का एक महत्त्वपूर्ण कारण थलचर जलचर और नभचर पशुओं तथा अन्य प्राणियों की अन्धाधुन्ध हत्या है। ये तीन वैज्ञानिक हैं— डॉ. मदनमोहन बजाज, डॉ. श्रीविजयराज सिंह और श्री एम. एस. एम इब्राहिम। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रकृति बहुत सहनशील व संवेदनशील है जो कि हमारे द्वारा किये गये कुकर्मों को भी सहती हुई शान्ति की शिक्षा निरन्तर देती है किन्तु जब हमारी गलतियाँ सीमा पार कर जाती हैं तो वह अपना रौद्र रूप भी प्रकट करती है। यह रौद्र रूप भूकम्प तथा अन्य प्राकृतिक विपदाओं के रूप में सामने आते हैं अतः गाय हमारे जीवन के समस्त सुखों की आश्रय स्थल है। गाय ही यज्ञ अन्न आदि का आधार है उसके बिना धरती पर जीवन सम्भव नहीं।

❑❑

पाला तुमको गोशाला ने तुमने उसे भुला डाला,
जिसने जीवन दिया उसी को पहुँचाया रे वधशाला?
कहो हिन्दुओ? यही दूध का तुमने मूल्य चुकाया है?
सुख से सोये तुम, रोती है हाय! तुम्हारी गोशाला।।

(गोशाला— आचार्य स्वामी श्री धर्मेन्द्र)

My thoughts about the Satyarth Prakash

– M. Manjari (A.P.)
Class-9th

'Satyarth Prakash' is written by Swami Dayanand Saraswati. He had explained about many subj like Truth, Dharma etc. For getting more knowledge about this subject we should read this book and get more knowledge about these subject. In middle age the Pouranik Pandits had made the wrong meanings of the Mantras of Veda and said that the girl should not read Vedas and the of the girl should be done before etc. These wrong things are made Pandits and they said that written in Vedas the whole world had bee believed it. That time the Swami Dayanand Saraswati had proved that the things what they had said are wrong he proved that the girls can also read and can become great Vidushi like Gargi, Apala, Ghosha etc. These all things we can know from this book 'Satyarth Prakash' about which I want to express my views. Swami Dayanand had divided this book into 14 parts in each part we can know about new subjects. Now these are the 14 different subjects. It is also called as sammullas.

1. Is an exposition of 'Om' and other names of God.
2. Treats of the up-bringing of children.
3. Treats of Brahmcharya the duties and qualifications of scholars and teachers, good and bad books and the scheme of studies.
4. Treats of marriage and married life.
5. Treats of Vanaprastha (the order of Asceticism).

   and of Sanyas Ashram (the order of Renuciation).
6. Treats of Raj Dharma (Science of Government).

   Treats of the Veda and God.

   Treats of the creation, sustenance and Dissolution of the Universe.

   Treats of knowledge and ignorance d emancipation and bondage.
10. Treats of conduct desirable and undesirable and of Diet-Permissible and forbidden.
11. Contains a criticism of the various religions and sects prevailling in India.
12. Treats of Charwak, Baudha (Buddhist) and jain religions.
13. Treats of christianity.
14. Treats of Muhammadanissm.

These all subjects are written in the form of Shloks and at the bottom of the Shlok he had given the meaning of each Shlok.

1. The exposition of 'Omkar' and names of God :- The main important

name of God is 'Om', because from this name only we can make many name ... there are A,U, M with A there are Virat, Agni, Vishw etc. with U there are Hiranyagarbha, Vayu Thijas etc. with M, Eshwar, Aditya, Prajya etc. that is why it is an important name of God and about many other name.

2. Treats of up- bringing of children :- In every family there will be children every child must be educated in the middle age some Pandits of Pouranik had made the wrong definations of the Mantras and Shloks and they had decided that the girls will not read the Vedas but Swami Dayanand had written in the Satyarth Prakash and proved that the girls can also read then they had given the right every child should be educated in good way the truth studies are gurukul studies in gurukul we can learn not only studies but also the good habits which will come useful in further life.

3. Brahmcharya the duties and qualifications of Students and teachers, good and bad books and the scheme of studies :- The every girl and boy should go to the gurukul after eight years. The parents should do yajyopavit Sanskar and the second yajyopavit Sanskar will be done by the guru and the boys and girls should read in other places the distance between the girls gurukul and boys gurukul should be minimum 4 to 2 km. had given abu... we should do Yajnya etc.

4. Treats of marriage and Married In this sammullas Dayanand Saraswati had given the name 'Duhita' for the Kanya because the Kanya should be married to a far place this reason he had given the name 'Duhita' after this he had described about the age in which the girl should be marrie and with which type of man should she marrie etc. and the age differance between the girl and boy and many more things about the Grihast Ashram and Swami Dayanand has given many more ...ns to the girl and boy how ... the home.

5. Treats of Vanprasth and of Sanyas Ashram :- Having completed his Brahmacharya, let a man enter Grihastha and thereafter, Vanprasth and lost of all become a Sanyasi. This is the consecutive order of the different stages of life and some more points about it.

6. Treats of Raj Dharma :- In this sammullas Dayanand saraswati had explained about the Raja. How should be the Raja and how he should teach the pupil of his country. He should take care of the environment of the country welfare of the country etc. If each Raja will follow that rules then the country will be in right way.

7. Treats of Veda and God :- In this sammullas Dayanand Saraswati had explained that Eshwar is one and he is Sarvevyapak, Sarvantaryami, Ajar, Amar, Nithy etc and he is body less that is why he is every where in the universe.

8. Treats of the creation, sustenance and Dissolution of the Universe :- In this sammullas he had explained about the world's creation and the present situation and dissolution. Till now the universe's age has been half finished after some million years the universe will be Dissolved.

9. Treats of knowledge and ignorance Emancipation and Bondage :- In this sammullas we realise the nature of Vidya true knowledge and of Avidya good moral life and Divine Contemplation-Simultaneously Conquers death by Virtue of Avidya and obtains Immortality by Virtue of Vidya. Virtuous life and contemptation of God is called vidya.

10. Treats of Conduct - Desirable and Undesirable, Diet - Permissble and for bidden :- In this sammullas we treat about the desitable conduct the lperformance of righteous actions, refinement of speech and manners, association with men of learning and piety, and love of all true knowledge etc. and undesirable conduct.

11. An Examination of the Different Religious Prevailing in Aryavarta :- In this sammullas we read about the previous India which was called as Aryavarta. Which is not now and many more things.

12. An Exposition and a Refulation of the Charvaka. The Buddhistic and the jain faiths all of which are Atheistic :- In this sammullas we can read about the three differe types of religions they are Charvaka, Buddhist, Jainistic etc.

13. An Examination of the Doctrines of Christianity :- In this sammullas swami Dayanand Saraswati had explained the good and bad things from the Bible which is the Holy Book of the Christians.

14. An Examination of the Doctrines of Mohamedan religion :- In this sammullas Dayanand Sarawati had said that wrong things should be removed from the Quran etc.

In this way Swami Dayanand had done more fortunes in 8 to 10 years if the people will not kill him who became jellous on him he would do more things for the world. Wake up and we should also become like Swami Dayanand. By Saying this I am Keeping full stop to my writing.

❑❑

उठ जाग जाग ! मेरे कुमार

उठ जाग जाग ! मेरे कुमार !
ओ बाल सूर्य, ओ दिव्य ज्योति!
टुक खोल आँख, पलके उघार।। उठ जाग..............................
ओ जननी के अभिमान जाग!
निज देश जाति के प्राण जाग!
ओ जीवन के अरमान जाग!
संस्कृति के गौरव गुमान जाग।।
तेरे जगने से नव प्रभात का कण-कण में फिर हो विहार। उठ जाग............
अपने वैभव से परिचित हो!
जग को निज पौरुष दिखला दे!
अपनी गौरव गरिमा फैला!
रश्मि समूह निज चमका दे।।
तेरे चरणों में लोट-लोट जाये धरती का अन्धकार। उठ जाग.................
हे जल-कण तू है महासिन्धु!
तुझको गर्जन करना होगा!
मेरे वामन ! तुझ विराट् का!
जग को पूजन करना होगा।।
तेरे भ्रू इंगित में बन्दी, जग का स्मित क्रन्दन चीत्कार। उठ जाग..............
राणा प्रताप का साहस तू।
अभिमन्यु का पौरुष महान्।
तू दयानन्द की दिव्य दृष्टि।।
तू राम-कृष्ण सा गुण निधान!
तू वज्र तुल्य भीषण प्रहार।।
उठ जाग जाग ! मेरे कुमार।।

प्रस्तुति– श्री गोविन्दराम ध्यानी
अधिष्ठाता– गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ

❖❖❖

गुरुकुल का दशवर्षीय इतिवृत्त

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः।

हे तेजः पुञ्ज स्वाङ्गवत् प्रिय प्रभो ! आप दानशील परोपकारी आत्मसमर्पण करने वाले उपासक का कल्याण करते हो। यह आपका सत्य नियम है।

नारी शिक्षा हेतु उत्सर्गीकृतकाय स्त्रीरत्नों में जाज्वल्यमान स्त्रीरत्न सुविख्यात वेदव्याकरणविदुषी आचार्या **डॉ. प्रज्ञा देवी जी** एवं उनकी अनुजा **पं. मेधा देवी जी** ने विदुष्मती काशी नगरी में अपने गुरुवर्य विद्वद्वरेण्य पदवाक्यप्रमाणज्ञ **पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी** की पुण्य स्मृति में "पाणिनि कन्या महाविद्यालय" की स्थापना कर आर्य जगत् में विशिष्ट गौरव अर्जित किया है। इसी गुरुकुल की आद्य स्नातिका डॉ. प्रियंवदा वेदभारती एवं उनकी अनुजा ऋतम्भरा शास्त्री ने अपनी गरिमामयी गुरुपरम्परा को अक्षुण्ण रखने हेतु ब्रह्मर्षि कण्व की तपःसाक्षिणी पुण्यतोया मालिनी नदी के तट पर अधिष्ठित बिजनौर जनपद के नजीबाबाद नगर के आर्य समाज आदर्श नगर में 'गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ' का सूत्रपात अनेक स्थानीय विशिष्ट महानुभावों की उपस्थिति में आषाढ़ कृ. चतुर्दशी संवत् 2053 रविवार 14 जुलाई सन् 1996 को 6 ब्रह्मचारिणियों से किया। यद्यपि गुरुकुल का सम्पोषण आर्यसमाज आदर्श नगर की प्रधान स्तम्भ सम्मान्या बहिन संतोषबाला जी, उनकी पूज्या माता कलावती देवी जी, भ्राता ब्र. श्री राजेन्द्र आर्य, माननीय श्री सेठ दीपचन्द जी किरतपुर, श्री डॉ. विष्णुमित्र जी तथा श्री गोविन्द राम ध्यानी जी आदि द्वारा भली प्रकार हो रहा था तथापि स्वल्प समय में ही विस्तृत होते इस विद्यामन्दिर को आर्यसमाज आदर्श नगर के संकुचित स्थान में महती व्याकुलता का अनुभव होने लगा। इसकी व्याकुलता को दूर करने हेतु जो संघर्ष यात्रा प्रारम्भ हुई वह आगामी पृष्ठों पर अङ्कित है।

❑ *वामन से विराट् की यात्रा*

प्रथम विक्रमण— सरकार या अन्य किसी विशिष्ट साहाय्य के अभाव में मात्र सामाजिक सहयोग के बल पर किसी संस्था को मूर्त्त रूप देना अत्यन्त श्रम-साध्य कार्य है। निस्सन्देह एतादृश कार्यों का दायित्व प्रभुदेव स्वयं लेते हैं और स्वयं ही इसका संचालन करते हैं। आचार्यावृन्द एवं 30 कन्याओं का अध्ययनाध्यापन, भोजन, विश्राम, क्रीडादि मात्र 100 गज के निर्मित भवन में जब असम्भव हो गया तो प्रभु के प्रेरणा रूपी प्रयास भी प्रारम्भ हो गये। आर्य जगत् एवं नजीबाबाद के गौरव लब्धप्रतिष्ठ संन्यासी स्वामी वेदमुनि परिव्राजक जी के नेतृत्व में डॉ. ओम्पाल आर्य, श्री सन्तोष बाला आर्या आदि ने गुरुकुल योग्य भूखण्ड यत्र-तत्र देखने आरम्भ कर दिये। अन्त में गंगनहर के किनारे कोतवाली मार्ग पर स्थित साढ़े तीन बीघे के भूखण्ड पर दृष्टि स्थिर हुई और डेढ़ लाख रुपये में यह क्रय कर लिया गया। भूमिक्रय हेतु जिन भ्रातृवर्य का अविस्मरणीय सहयोग हमें प्राप्त हुआ वे हैं— एन. टी. पी. सी. शक्तिनगर जि. सोनभद्र (उ. प्र.) में कार्यरत आदरणीय **ब्र. श्री राजेन्द्र आर्य**। आप द्वारा एक लाख रुपये का सहयोग प्राप्त हुआ। आप वैदिक धर्म के अनन्य सेवक, लेखक, धुन के धनी, स्वाध्यायशील, व कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। भूमिक्रय के पश्चात् इस नवीन परिसर में वसन्त पञ्चमी 21 जनवरी

1999 के दिन गुरुकुल का विधिवत् शिलान्यास श्रद्धेय **स्वामी वेदमुनि परिव्राजक** जी की **अध्यक्षता** में तथा प्रसिद्ध आर्य विद्वान् एवं महोपदेशक **डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री जी** की समुपस्थिति में गुरुकुल **हितैषियों** द्वारा किया गया।

द्वितीय विक्रमण— शिलान्यास के तत्काल पश्चात् ही भवन-निर्माण रूपी समस्या प्रादुर्भूत हुई, जिसके समाधान हेतु कतिपय महानुभाव असिधाराव्रत लेकर इस क्षेत्र में कूद पड़े। प्रसिद्ध दानवीर, धर्मपरायण, याज्ञिक एवं गुरुकुल के प्रधान माननीय **श्री दीपचन्द आर्य किरतपुर** ने अपने पद एवं गरिमा के अनुरूप बहुत कुछ भार अपने ऊपर लेकर हमें चिन्तामुक्त किया। आपने स्वयं तथा अपने परिचय के आधार पर 12 × 14 के पाँच प्रकोष्ठ गुरुकुल भूमि में बनाने का संकल्प लिया। आपके साथ आपकी धर्मपरायणा पत्नी श्रद्धेया माता कौशल्या देवी जी का भी सर्वात्मना सहयोग गुरुकुल को प्राप्त होता रहा। (15 अक्टूबर सन् 2002 को गुरुकुल परिवार इस वात्सल्य से सदैव के लिए वञ्चित हो गया।) शनैः शनैः मुरादाबाद, नजीबाबाद, मेरठ, लुधियाना, दिल्ली, अमरावती, मुम्बई आदि के गणमान्य महानुभावों की भी आहुतियाँ इस सारस्वत महायज्ञ में पड़ने लगीं। धन संग्रह के लिए यात्राएँ भी पर्याप्त की गयीं। परिणामतः स्वल्प समय में ही 12 × 14 के 8 कमरे, रसवती (पाकशाला) एवं भोजनालय बनकर तैयार हो गये। जल की व्यवस्था के लिए जलयन्त्र = सबमर्सिबल पम्प लगाया गया। विद्युत् व्यवस्था हेतु पृथक् ट्रान्सफार्मर की व्यवस्था गुरुकुल को पर्याप्त धनराशि देकर करनी पड़ी। इन सब कार्यों में प्राचीर (बाउण्ड्री वाल) का कार्य अत्यन्त व्ययसाध्य कार्य था। व्ययसाध्य होने पर भी यह अनुपेक्षणीय था अतः यथाकथञ्चित् कार्य प्रारम्भ किया गया, विशेष धन के अभाव में मात्र 9" की $7\frac{1}{2}$ फुट ऊँची दीवार ही गुरुकुल के चारों ओर हो सकी है। सुरक्षा की दृष्टि से इसे अभी और ऊँचा करना है, कँटीले तार लगाने हैं, प्लास्टर तो आज भी शेष है। गुरुकुल भूमि पर निर्मित इन भवनों में आर्य समाज आदर्श नगर से गुरुकुल का स्थानान्तरण 2 अगस्त सन् 2001 को हुआ। इस प्रकार गुरुकुलीय कन्याओं ने एवं आचार्यावृन्द ने गुरुकुल स्थापना काल के पाँच वर्ष बाद निज भूमि-भवन में श्वास ली।

(ख) ऊपरी मञ्जिल की प्रगति— स्थानान्तरण के पश्चात् भी निर्माण का कार्य रुका नहीं, जैसे-जैसे दानी महानुभावों की राशियाँ प्राप्त होती गयीं, चलता रहा। 2001 से 2006 की अवधि में दूसरी मञ्जिल में 48 × 12 का एक बृहत् प्रकोष्ठ तथा साथ ही 18 × 12 का दूसरा प्रकोष्ठ बनकर तैयार हुआ। इन दोनों प्रकोष्ठों के विशेष प्रेरणास्रोत **स्व. श्री सियाराम सिंह** प्रधान आर्योपप्रतिनिधि सभा मेरठ थे। आज उनकी भौतिक काया इस संसार में नहीं है किन्तु उनका यशःशरीर गुरुकुल के साथ सदैव विद्यमान रहेगा। इन दो प्रकोष्ठों के अतिरिक्त ऊपरी मञ्जिल में तीन और प्रकोष्ठ— **श्रीमती रक्षा गुप्ता** एवं **श्री सतीशचन्द्र गुप्ता मुरादाबाद, महात्मा श्याममुनि जी बागपत** और **श्री रोशन लाल सिंघल बैंगलोर** द्वारा बनवाये गये। ऊपरी मञ्जिल में एक विशाल हॉल "स्वामी श्रद्धानन्द भवन" भी बनाया गया है। इस विशिष्ट भवन हेतु अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी के पौत्री पति **आचार्य पं. धर्मवीर जी विद्यालंकार** ने गुरुकुल को तीन लाख का विशिष्ट सहयोग प्रदान किया। गुणागार आचार्य प्रवर **"दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्"** मनूक्त इस ब्राह्मण लक्षण के भी साक्षात् प्रतिपालक थे। 2003 में गुरुकुल के वार्षिक महोत्सव में आर्य वानप्रस्थाश्रम की अनेक माताओं के साथ पधारकर न केवल आचार्य जी ने अपने गरिमामय व्यक्तित्व एवं वक्तृत्व से महोत्सव की गौरव वृद्धि की, कन्याओं को आशीर्वाद दिया, प्रत्युत भूमिविस्तार की चिन्ता कर अत्यन्त आत्मीयता भी प्रदर्शित की। आचार्य जी वस्तुतः भू विस्तार हेतु ही यह राशि देना चाहते थे

किन्तु प्रतिवेशी कृषकों के आग्रहिल रूप को जानकर वे क्षुब्ध हो गये और भवन हेतु स्वीकृति प्रदान कर दी। 'स्वामी श्रद्धानन्द भवन' गुरुकुल का भव्य आदर्श-भवन बने, एतदर्थ वे पुनः राशि प्रदान करने हेतु समुद्यत थे, उपयोगी निज परामर्श भी प्रदान कर रहे थे कि- **"हा हन्त! हन्त! नलिनीं गज उज्जहार"** 27 फरवरी 2005 के दिन वे चिरनिद्रा में विलीन हो गये। पूज्य **आचार्य धर्मवीर जी** एवं उनकी धर्मपत्नी **श्रीमती पुष्पशोभा विद्यालङ्कृता जी** का यह बहुमूल्य आशीर्वाद गुरुकुल को चिरकाल तक गौरवान्वित एवं आप्यायित करता रहेगा।

(ग) कार्यालय एवं अतिथिकक्षों का निर्माण— सन् 2002 में गुरुकुल की आवश्यकता को देखते हुए उत्तराभिमुख एक कार्यालय और तीन अतिथिकक्षों का निर्माण हुआ। कार्यालय के निर्माता शामली के प्रसिद्ध दानशील महानुभाव **श्री रघुवीर सिंह आर्य** हैं और शेष तीन अतिथिकक्षों के निर्माण कराने वाले- पू. माता **लक्ष्मी देवी जी चाँदपुर, श्री उमेशचन्द्र आर्य मुरादाबाद, श्री शान्तिप्रकाश- प्रेमसुधा रस्तोगी हसनपुर (मुरादाबाद) पू. माता कौशल देवी गुप्ता** तथा **पू. माता सीता अरोड़ा** आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर हैं। इन अतिथि कक्षों के निर्माण की भव्यता में दिल्ली के आदरणीय **श्री मुंशीराम सेठी जी** का दो लाख रुपये का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ इसलिए हम उपरिनिर्दिष्ट सभी दानदाताओं के साथ आदरणीय सेठी जी के विशेष आभारी हैं।

मुख्य-द्वार की भव्यता हेतु **माता वीरबाला जी** तथा श्रद्धेय पिता **श्री प्रेमबिहारी आर्य**, आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर द्वारा 50000 रु. का विशिष्ट सहयोग प्राप्त हुआ तथा गेट के साथ ही परिचय कक्ष हेतु आदरणीय **प्रो. आनन्दस्वरूप आर्य** रुड़की द्वारा 38850 रु. की राशि प्राप्त हुई। इन दोनों धन-राशियों के कारण मुख्य द्वार की भव्यता पूर्वापेक्षा बढ़ी है, पर अभी भव्यता हेतु और प्रयास करना शेष है।

(घ) यज्ञशाला— यज्ञशाला के निर्माण हेतु गुरुकुल के प्रधान श्री दीपचन्द जी 2003 से ही प्रयत्नशील थे किन्तु 2006 में यज्ञशाला का कार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका। इस कार्य में जहाँ प्रधान जी के परिवार के सदस्यों- **श्रीमती शशि सिंघल कोटद्वार, श्री ओमप्रकाश रन्धर नजीबाबाद** आदि ने सहयोग दिया, वहीं आर्यसमाज दयालपुरा करनाल के प्रधान श्री **सुभाषचन्द्र चौधरी** तथा **श्रीमती उषा चौधरी** (करनाल) से भी 51000 रु. की आहुति यज्ञशाला के निमित्त प्राप्त हुई। यज्ञशाला के निर्माण हेतु दो लाख रुपये का विशेष सहयोग माननीय **श्री कुलदीप सूरी** योग निकेतन ऋषिकेश से प्राप्त हुआ। आपने सपत्नीक 2006 के वार्षिकोत्सव में 'सामवेद पारायण यज्ञ' के यजमान बनकर यज्ञशाला का उद्घाटन किया। यज्ञशाला को भव्यता प्रदान करने हेतु भ्रातृद्वय **श्री विजय गोयल श्री सुन्दर गोयल** के साथ-साथ सरलचित्त धर्मपरायण कर्त्तव्यनिष्ठ **श्री वेदप्रकाश मिगलानी जी** का भी निःस्वार्थ सहयोग प्राप्त हुआ। आप आर्यजगत् के प्रसिद्ध दानवीर **श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री जी** के मामाश्री हैं। यज्ञशाला के समस्त सहयोगियों दानदाताओं के प्रति गुरुकुल परिवार कृतज्ञता प्रकट करता है।

(ङ) सौर ऊर्जा संयन्त्र— उत्तर प्रदेश में बिजली के संकट को देखते हुए वैकल्पिक व्यवस्थाएँ अनिवार्य हैं। गुरुकुल में प्रत्येक कमरे में इन्वर्टर का कनेक्शन और दो डोमेस्टिक सौर ऊर्जायें पहले से ही विद्यमान थीं, किन्तु इनके द्वारा छत और प्रांगण का अन्धकार दूर करना असम्भव था। उस अन्धकार को दूर करने के लिए कृत-संकल्प हुए, दिल्ली के दानवीर उदारहृदय आदरणीय **बाबू श्री मुंशीराम सेठी जी**। आपने गुरुकुल में तीन सौर स्ट्रीट लाईट लगवाकर इस अन्धकार को दूर करने का सराहनीय प्रयास किया है। आप मात्र इतने से ही सन्तुष्ट

नहीं हुए बल्कि गुरुकुल में दो वाटर हीटर भी शीत ऋतु के लिए आपने लगवाये और सौर ऊर्जा पम्प निकट भविष्य में शीघ्र ही आपकी ओर से लगने वाला है। इस प्रकार गुरुकुल को समस्त सौर ऊर्जा संयन्त्रों से विभूषित करने वाले आद. श्री सेठी जी गुरुकुल के इतिहास में सदैव-सदैव के लिए अमर हो गये।

तृतीय विक्रमण— (क) गुरुकुल का वर्तमान परिसर (जिसमें आवास हेतु अनेक प्रकोष्ठ, यज्ञशाला आदि सभी व्यवस्थाएँ पूर्णता की ओर अग्रसर हैं) मात्र $3\frac{1}{2}$ बीघे का भूखण्ड है। निस्सन्देह यह भूखण्ड आर्य समाज आदर्शनगर की अपेक्षा विस्तृत एवं सुविधाजनक है, पुनरपि 70-80 कन्याओं के योग्य समस्त सुविधाएँ यहाँ भी संगृहीत नहीं की जा सकतीं। इस सीमित भूखण्ड में न तो ब्रह्मचारिणियों द्वारा धनुर्विद्या-तलवार-लाठी आदि का अभ्यास सम्भव है न ही फल-फूल सब्जी का उत्पादन, न गोशाला संवर्धन, अत: भूमि की न्यूनता प्रारम्भ से ही अनुभव की जा रही थी। गुरुकुल के एक ओर गंगनहर है, एक ओर राष्ट्रीय राजमार्ग और उत्तर पश्चिम भूभाग में खेत हैं। हमारा भूमिग्रहण कार्य पूर्ण सफल माना जाता यदि हम उत्तर पश्चिम की ओर फैलते किन्तु इस दिशा में रहने वाले कृषक गुरुकुल महिमा से अपरिचित और अज्ञानी हैं सो चाहकर भी इन दिशाओं में हम सफल नहीं हो पाये। सड़क के उस पार रहने वाले कृषकों का भी भूमि के प्रति अत्यन्त व्यामोह देखा गया। इन सब परिस्थितियों को देखते हुए गुरुकुल को ऐसे भूखण्ड की ओर प्रेरित होना पड़ा जो गुरुकुल से 1 किलोमीटर दूर था और अत्यन्त विवादग्रस्त था। स्थिति गम्भीर थी। ईश्वर ने यहाँ भी हमारी रक्षा की। सहारनपुर निवासी आदरणीय **श्री सुरेश भगत जी** ने इस भूखण्ड की प्राप्ति हेतु अत्यन्त मानसिक शारीरिक परिश्रम किया, जिसके कारण यह 13 बीघे का भूखण्ड गुरुकुल को प्राप्त हो सका। जमीन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने में श्रवणपुर ग्राम निवासी श्रद्धेय **बाबू रामकुमार चौधरी जी** ने विशिष्ट सहयोग दिया एतदर्थ हम आपके अत्यन्त आभारी हैं। आपके साथ ही आदरणीय **श्री कृष्णपाल सिंह जी,** गुरुकुल के उपप्रधान **श्री डॉ. ओमपाल आर्य** एवं **श्री विक्रमसिंह आर्य** का सद्भाव एवं पुरुषार्थ भी प्रशंसनीय रहा। कार्य चूँकि जटिल था अत: वास्तविक लागत से अधिक राशि गुरुकुल को इस हेतु व्यय करनी पड़ी। लगभग छ: लाख रुपये की भूमि गुरुकुल ने अर्थाभाव में कैसे ऋण लेकर क्रय की, बाद में किस प्रकार शनै: शनै: ऋण चुकाया इन सबके साक्षी मात्र प्रभुदेव हैं। भगवत्कृपा से आज गुरुकुल पर्याप्त भूमि वाला हो गया है। यह भूखण्ड पूर्व भूखण्ड से 1 किलोमीटर दूर रहते हुए भी गुरुकुल के लिए अत्युपयोगी सिद्ध होगा, इसमें यत्किञ्चित् भी सन्देह नहीं।

(ख) विद्युत् तार दिशा परिवर्तन— $3\frac{1}{2}$ बीघे के पूर्व भूखण्डके मध्यभाग में उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर जाती हुई ग्यारह हजार की विद्युत् लाईन प्रारम्भ से ही चिन्ता का विषय थी, इस समस्या का समाधान भी आदरणीय **श्री सुरेश भगत** सहारनपुर के सौजन्य से ही हुआ। आपने अपने व्यापक परिचय और अनुभव के आधार पर इस कार्य को विद्युत् विभागीय महानुभावों द्वारा तत्परता के साथ करवाया। आपके इन उपकारों के लिए यह संस्था यावज्जीवन आभारी रहेगी। इस प्रकार वामन से विराट् तक की संघर्षमयी यात्रा पूर्ण हुई।

❑ आन्तरिक प्रगति

मान्यवर! गुरुकुल हितैषियों द्वारा दी गईं प्रेरणाएँ तथा दानवीर ऋषिभक्तों द्वारा स्नेहपूर्वक दिया गया दान जिन ब्रह्मचारिणियों को उपलब्ध कराया जा रहा है वे अपने गन्तव्य के किस बिन्दु तक पहुँची हैं इस जिज्ञासा की पूर्ति हेतु सम्प्रति गुरुकुल की आन्तरिक प्रगति प्रस्तुत है।

सर्वप्रथम यह ज्ञातव्य है कि युग की आवश्यकताओं को देखते हुए अब गुरुकुलों में परीक्षा दिलाना अनिवार्य

बन गया है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली में एतादृश परीक्षाओं का कोई स्थान नहीं था। विद्वानों का निकष स्थल मात्र विद्वत् समाज होता था अन्य कोई प्रमाणपत्रादि नहीं। इतिहास में शलाका परीक्षा एवं क्रियात्मक परीक्षा का उल्लेख अवश्य आता है किन्तु ये परीक्षाएँ अब इतिहास के पृष्ठों में ही जीवित हैं। वर्तमान समय में परीक्षा हेतु गुरुकुलों के सामने दो विकल्प दिखाई देते हैं, स्कूल कॉलेजों का पाठ्यक्रम अपनायें या कोई अन्य। स्कूलों में निर्धारित पाठ्यक्रम को अपनाने पर वैदिक संस्कृति सभ्यता से ओतप्रोत विद्वान् विदुषियों का निर्माण असम्भव है अतः प्रायः सभी गुरुकुल उन विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम अङ्गीकार करते हैं जो पूर्णतया ऋषि दयानन्द पद्धति को अङ्गीकार करते हैं या अधिकांश रूपेण करते हैं। इस दृष्टि से सभी गुरुकुलों के सामने दो विश्वविद्यालय हैं– (प्रथम) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक, (द्वितीय) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी। गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ में सम्प्रति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी और उससे सम्बद्ध उत्तरांचल संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार की परीक्षाएँ दिलाई जा रही हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में वैदिक वाङ्मय के तलस्पर्शी विद्वान् पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु प्रभृति अनेक विद्रज्जनों के अथक प्रयासों के फलस्वरूप महर्षि दयानन्द निर्दिष्ट प्राचीन आर्ष पाठ्यक्रम भी 'क वर्ग' में वैकल्पिक रूप में स्वीकार किया हुआ है। इसलिए अष्टाध्यायी-प्रथमावृत्ति महाभाष्य-निरुक्त सहित सम्पूर्ण व्याकरण को सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय परीक्षाओं के माध्यम से हृदयंगम कराने में विशेष काठिन्य नहीं होता। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में उल्लिखित महर्षि दयानन्द के परीक्षा रहित विधि-विधान को जिन विद्यालयों या महाविद्यालयों ने अङ्गीकार किया हुआ है उनमें पढ़े छात्र या तो अन्य उपाधियों से पहले ही विभूषित होते हैं या उस गुरुकुल में पढ़ने के उपरान्त परीक्षाओं के लिए प्रयत्नशील देखे जाते हैं। अतः यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि डिग्रियों के बिना आज का विद्यार्थी विद्या ग्रहण करने को तत्पर नहीं। अस्तु।

गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ नजीबाबाद का शुभारम्भ जिन चतुर्थ कक्षा की कन्याओं को लेकर सन् 1996 में किया था, हर्ष का विषय है कि आज वे अपनी शक्ति-बुद्धि के अनुसार व्याकरण के अनेक सोपानों को पार करते-करते शास्त्री प्रथम वर्ष (बी. ए. प्रथमवर्ष) की परीक्षा देकर द्वितीय वर्ष की ओर उन्मुख हो चुकी हैं। इन कन्याओं के पीछे आने वाला द्वितीय कन्या समूह भी बड़ी योग्यता के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है। अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति पूर्ण करने के पश्चात् द्वितीया-वृत्ति अर्थात् काशिका की पूर्व तैयारियों में संलग्न रहते हुए ग्यारहवीं कक्षा के निष्क्रमण द्वार पर समुपस्थित है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार विद्या चार चरणों में जाकर उपयोगिता को प्राप्त होती है—आगमकाल, स्वाध्याय काल, प्रवचन काल, व्यवहार काल। अभी हमारी ज्येष्ठ कन्याओं का यद्यपि आगम काल (जिसमें विद्या का अधिक से अधिक अर्जन किया जाता है) ही चल रहा है। वह आगमकाल निरापद निश्चिन्त होना चाहिए, किन्तु आधुनिक युग में गुरुकुलों के आचार्यों एवं शिष्यों को अध्ययनाध्यापन हेतु निरापद जीवन मिलना कठिन है। गुरुकुल के आर्थिक पक्ष को सुदृढ़ करने हेतु, भवन निर्माण हेतु, विविध सुविधाओं की पूर्ति हेतु आचार्यों को प्रारम्भिक 20 वर्षों में बाहर की यात्राएँ युद्ध स्तर पर करनी ही पड़ती हैं। आचार्य के साथ-साथ शिष्यवर्ग का भी प्रदर्शन अपेक्षित रहता है। कन्याओं को व्याकरण, वेद-वेदाङ्गों के गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ बाहर के कार्यक्रमों में भाग लेकर अपनी विशिष्ट प्रतिभाओं का परिचय आर्य जगत् के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस क्षेत्र में हमारी कन्याओं ने सम्पूर्ण भारत तथा नेपाल आदि में जाकर शुद्ध सस्वर वेदपाठ, कण्ठवाद्य संगीत, संस्कृत-हिन्दी सम्भाषण,

परिचर्चा आदि के माध्यम से अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है और आर्य जगत् में विशिष्ट स्नेह एवं सम्मान प्राप्त किया है। छात्राओं की बौद्धिक शैक्षणिक अभिवृद्धि के साथ-साथ शारीरिक तथा मानसिक प्रगति के लिए भी यहाँ सतत प्रयत्न किये जाते हैं। एतदर्थ-लाठी भाला तलवार डम्बल्स लेजियम जोड़ी आदि क्रीडोपकरणों के साथ ताईक्वाण्डो (आत्मरक्षार्थ जापानी शारीरिक शिक्षाभ्यास) का प्रशिक्षण दिया जाता है। मानसिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा हेतु ध्यान योगासन प्राणायाम सन्ध्या-यज्ञ अग्निहोत्र आदि नियमित दैनिक दिनचर्या में सम्मिलित हैं। स्त्रीशिक्षा के आवश्यक अंग के रूप में सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, गृहोपस्कर सज्जा, स्वच्छता, मार्जन तथा पाक-कला की भी विशेष व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जाती है। वेदपाठ, मन्त्र-सूत्र-श्लोक-स्मरण, गीत-संगीत वाद्य तथा गान का नियमित अभ्यास कराया जाता है। कन्योचित क्रीडा खेलकूद भी गुरुकुलीय जीवनचर्या के अभिन्न अंग हैं। इन सभी गुरुकुलीय विशेषताओं को आत्मसात् करने के लिए अत्यन्त बुद्धिमती सुशील सुसंस्कारिणी ब्रह्मचारिणियों की आवश्यकता होती है जिससे गुरुकुलीय पद्धति का स्वप्न साकार हो सके। इस निमित्त संस्कारी आर्य भद्र पुरुषों अभिभावकों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके अभाव में अल्प बुद्धि वाली संस्कार रहित अविनीत कन्याओं का प्रवेश दिलाकर गुरुकुलीय लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता।

❑ *कृतज्ञता और आभार*

गुरुकुल के दशवर्षीय इतिवृत्त का यह विवरण अधूरा ही रहेगा यदि यहाँ सहयोगियों, दानदाताओं तथा आत्मीय भद्रपुरुषों तथा सम्माननीया माताओं द्वारा प्रदान किये गये सर्वविध सहयोग का उल्लेख न किया जाये। आप सबके कृपापूर्ण सहयोग एवं स्नेह का ही यह शुभ परिणाम है कि दश वर्ष की अल्पावधि में ही आपका यह प्रिय गुरुकुल आर्य जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है। सुविधाओं की दृष्टि से शून्य से प्रारम्भ होकर शिखर की ओर बढ़ रही गुरुकुल की कीर्ति-रश्मियाँ आपका यशोगान कर रही हैं।

गुरुकुल के दिशा निर्देशन एवं प्रेरक-महानुभावों में पूज्य आचार्य सत्यव्रत राजेश ज्वालापुर, माननीय श्री राजेन्द्रनाथ पाण्डेय मन्त्री आर्यसमाज काकड़वाड़ी मुम्बई, श्रद्धेय पं. आत्मानन्द शास्त्री तथा श्रीयुत पं. देवनारायण तिवारी-कोलकाता, आचार्य आर्य नरेश उद्गीथ साधना स्थली हिमाचल, श्री पं. रामकुमार वर्मा भरतपुर, श्री महेशचन्द्र आर्य अध्यक्ष वेदप्रचार मण्डल मुरादाबाद, श्रीमती मिथिलेश आर्या धर्मपत्नी-श्री महेश चन्द्र जी मुरादाबाद, माता रुक्मिणी आर्या प्रधान आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर, श्री प्रो. ओमकुमार आर्य जीन्द, श्री पं. सत्येन्द्र सिंह आर्य मेरठ, श्री पं. लक्ष्मीचन्द जी मेरठ, श्री पं. सत्यपाल जी मेरठ, श्री भूपाल सिंह आर्य करनाल, श्री डॉ० मुकेश अरोड़ा मुजफ्फरनगर, श्री ज्ञानेन्द्र गाँधी मुरादाबाद, श्री पं. ऋषिपाल जी मुरादाबाद, श्री पं. ओमप्रकाश शर्मा काँठ, श्री पं. रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय काँठ, श्रीमती सुधा सक्सेना हरदोई, श्री स्वामी निरञ्जनानन्द जी आर्यवानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर, श्री डॉ. रामकुमार शर्मा हीमपुर बजुर्ग बिजनौर, श्रीमती तिलका सिंह एवं श्री जे. पी. सिंह बिजनौर, बाबू श्री घासीराम जी भगवानपुर आदि अग्रगण्य हैं।

गुरुकुल के वर्तमान स्वरूप को अविरल गति प्रदान करने वाले हमारे कतिपय विशिष्ट दानदाता एवं धर्मार्थ संस्थाएँ (चेरिटेबिल ट्रस्ट) हैं जिनका उल्लेख करना हमारा पावन कर्त्तव्य है-

श्री लाला बहादुरचन्द मुञ्जाल फाउण्डेशन लुधियाना, श्री लीलावती आर्यभिक्षु परोपकारी न्यास ज्वालापुर; श्री कै. सुनील सेठ मेमोरियल ट्रस्ट मुजफ्फरनगर, विश्व कल्याण धर्मार्थ न्यास दिल्ली, फ्रन्टियर चेरिटेबिल सोसायटी दिल्ली; आर्यसमाज काकड़वाड़ी मुम्बई; श्री दीनदयाल गुप्त कोलकाता; श्री सत्यानन्द मुञ्जाल, हीरो सायकल्ज लुधियाना, श्री डॉ. ओ. पी. अग्रवाल बरेली; श्री दयाशङ्कर गुप्त शङ्कर दूध भण्डार मुरादाबाद; श्री डॉ. हेमन्त-करुणा मुरके अमरावती, श्री डॉ. गोविन्द-आभा लाहोटी अमरावती, श्री भ्राता यशपाल मित्तल पानीपत, श्री डॉ. ओमप्रकाश

अग्रवाल मथुरा, श्री डॉ. देवदत्त शर्मा एवं श्री डॉ. श्यामसुन्दर दूबे-बाष्टा; श्री पं. रामदेव डुडेजा आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर; श्रीमती सुरेन्द्र सुमन चाँदना गुड़गाँव; श्रीयुत रामभज मदान दिल्ली; श्री लाजपतराय चौधरी करनाल; श्रीयुत गौरव मदान करनाल श्री ज्ञानप्रकाश कुकरेजा करनाल, श्री सुभाष चौधरी करनाल, श्री नरेन्द्र कुमार अम्बहटा, श्रीमती राज मल्होत्रा- प्रधान स्त्री आर्यसमाज अशोक विहार दिल्ली, श्रीमती कान्ता बत्रा दिल्ली, श्रीमती कौशल आहूजा दिल्ली, श्री गुरुदत्त तिवारी दिल्ली, श्री सेठ हरिराम जी यमुनानगर, माता सुशीला जावा, श्रीमती सुलोचना जावा तथा श्री प्रेमप्रकाश चोपड़ा-बरवाला (हिसार), श्री पं. रामकुमार वीरेश एवं श्री सत्यप्रकाश आर्य बरेली, श्री पं० शशिभूषण आर्य देवरिया, श्रीमती आशा जैमिनि मुरादाबाद, श्री राजेश शर्मा दिल्ली, श्री नवीन रस्तोगी मुरादाबाद, श्री देवेन्द्र कुमार राणा मुजफ्फजर नगर, श्री सेठ रोशनलाल जी जीन्द, आर्य समाज अहमदाबाद आदि प्रमुख है।

अन्नसंग्रह के कार्य में— बिजनौर जनपद के प्रसिद्ध उपनगर किरतपुर के सभी उद्योगपतियों का तथा स्वाहेड़ी, झालू, पुण्डरी कला, बिचपड़ी, हुसैनपुर बुडगिरा भगवानपुर आदि ग्रामों का हमें प्रतिवर्ष सहयोग प्राप्त होता है। एतदर्थ सभी सहयोगियों का हम हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

अब मैं गुरुकुल के सन्निकट रहने वाले एवं छोटे बड़े सभी कार्यों में शारीरिक मानसिक बौद्धिक सहयोग प्रदान करने वाले कतिपय उन महानुभावों के नामों का उल्लेख करना चाहूँगी जो हमारी सबल भुजाएँ बनकर सभी प्रकार के कार्य सम्पन्न करते हैं, उनमें हैं— सर्वश्री गुरुमुख सिंह जी संरक्षक एवं सहायक अधिष्ठाता, श्री विक्रमसिंह जी हैबतपुर, श्री राजेश शास्त्री सावित्री आर्य विद्या मन्दिर ढाकीसाधो (बिजनौर), श्री विमलकुमार जी एडवोकेट हरदोई, श्री जगराम सिंह जी स्वाहेड़ी, डॉ. विद्यासागर जी स्वाहेड़ी; सुश्री डॉ. बानो भूतपूर्व मुख्य चिकित्साधीक्षिका इटावा, श्री डॉ. यज्ञदत्त शर्मा चाँदपुर श्री राजेन्द्र आर्य नजीबाबाद श्री देवीशङ्कर जी लखनऊ, आदरणीय बाबू रामकुमार जी ग्राम-श्रवणपुर; श्री बाबू बलवन्त सिंह श्रवणपुर; ग्रामप्रधान श्रीमती पुष्पा देवी उनके पतिदेव श्री ऋषिकुमार प्रजापति, पुत्र-श्री कृष्णकुमार जी; भैया आलोक कुमार एवं स्नातिका श्रीमती सुलभा शास्त्री दिल्ली आदि। गुरुकुल के सहयोगियों की नामावली सुविस्तृत है। उस सबका विवरण और आभार प्रकाश हम 1999, 2000, 2003 तथा 2006 में प्रकाशित चार विवरणिकाओं में कर चुके हैं अत: यहाँ संक्षेप के कारण जिनका भी नाम प्रकाशित होने से रह गया है, उन सबके प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हुए क्षमा चाहते हैं।

विगत एक दशक के गुरुकुल का प्रगति विवरण संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। गुरुकुल की कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्यों के आत्मीय सहयोग के विना हम इस स्थिति पर पहुँचने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। अत: कार्यकारिणी के सभी अधिकारियों एवं सदस्यों का हम हृदय से धन्यवाद देते हैं। विशेष रूप से बहिन सन्तोषबाला जी का सर्वात्मना सर्वविध सहयोग रहा है। उपप्रधान आदरणीय डॉ. ओम्पाल जी, मन्त्री आचार्य विष्णुमित्र वेदार्थी, कोषाध्यक्ष-श्री ओमप्रकाश रन्धर को कदापि विस्मृत नहीं किया जा सकता। सम्माननीय भ्राता श्री विजय गोयल की उत्साहपरिपूर्ण सेवाएँ भी श्लाघनीय हैं। कुलपिता पूज्यपाद स्वामी वेदमुनि परिव्राजक जी ने जाम्बवन्त बन कर हमारे अन्दर शक्ति का सञ्चार किया। पू. पितृवर्य श्री गोविन्दराम ध्यानी तथा पू. माता सरला देवी जी के ऋण से अनृण होने का प्रश्न ही नहीं उठता। गुरुकुल का सौभाग्य है कि श्रद्धेय श्री दीपचन्द जी आर्य जैसे उदार, विनम्र, यज्ञप्रेमी, दानशील पितृतुल्य छाया रखने वाले प्रधान इसे प्राप्त हैं। परमेश प्रभु से प्रार्थना है कि आप सबका आत्मिक सहयोग हमें हमेशा प्राप्त होता रहे जिससे हमारा गुरुकुल दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति के पथ पर बढ़ता रहे।

प्रस्तुति— आचार्या प्रियंवदा वेदभारती
उपाचार्या ऋतम्भरा शास्त्री

❑❑

गुरुकुल-वार्षिकोत्सव की संक्षिप्त रिपोर्ट

गुरुकुल आर्षकन्या विद्यापीठ नजीबाबाद जनपद बिजनौर का त्रिवार्षिक महोत्सव 24, 25, 26 नवम्बर 2006 ई. को सोल्लास सम्पन्न हुआ। नवनिर्मित यज्ञशाला के उद्घाटन हेतु 21 नवम्बर से समायोजित सामवेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति पूज्य आचार्य डॉ. सत्यव्रत राजेश जी के ब्रह्मत्व में महोत्सव के अन्तिम दिवस को की गयी। इस बृहद् यज्ञ के मुख्य यजमान माननीय कुलदीप सूरी श्रीमती प्रभा सूरी ऋषिकेश एवं माननीय श्री दीपचन्द आर्य किरतपुर थे।

महोत्सव के इस पावन अवसर पर आर्यजगत् के जिन तलस्पर्शी विद्वानों, चिन्तकों, महोपदेशकों एवं भजनोपदेशकों ने पधारकर इसकी शोभा को बढ़ाया उनमें सर्वप्रमुख हैं— माननीय श्री डॉ. भवानीलाल भारतीय जोधपुर (सपत्नीक) श्री आचार्य डॉ. सत्यव्रत राजेश ज्वालापुर, महोपदेशक डॉ. ज्वलन्तकुमार शास्त्री अमेठी, प्रो. महावीर गु. का. वि. वि. हरिद्वार, श्री पं. मदनमोहन आर्य गंगापुर सिटी राजस्थान, श्री डॉ. सुरेन्द्रप्रताप अमेठी, रेडियो सिंगर श्री पं. ओम्प्रकाश वर्मा यमुनानगर, श्री पं. व्रजपाल शर्मा 'कर्मठ' मुजफ्फरनगर आदि।

महोत्सव के प्रथम दिवस 24 नवम्बर के प्रातःकालीन यज्ञ एवं ओ३म् ध्वजोत्तोलन के पश्चात् आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध लेखक गवेषक डॉ. भवानीलाल भारतीय जी ने 'परम्परा और प्रगति का समन्वय' विषयक ऋषि दयानन्द के विचारों तथा उनके प्रिय मन्त्र और प्रिय श्लोकों की मार्मिक व्याख्या ऋषि जीवनी के विविध सन्दर्भों के साथ की, जिसे उपस्थित जनसमूह ने तल्लीन होकर सुना। गुरुकुल के कुलपिता स्वामी वेदमुनि परिव्राजक ने अपने अध्यक्षीय भाषण में गुरुकुल की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर दस वर्षों तक के गुरुकुलीय वृत्तान्त को भावपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किया तथा गुरुकुल की उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला। प्रातःकालीन सभा में कन्याओं ने सस्वर वेदपाठ, अन्त्याक्षरी, संस्कृत सम्भाषण और त्रैतवाद पर विचार रखे।

अपराह्णकालीन सभा में गुरुकुल की छोटी-छोटी कन्याओं के द्वारा आर्यसमाज के दस नियमों की व्याख्यान माला मनमोहक प्रस्तुति के साथ आयोजित थी। डेढ़ घण्टे तक चलने वाली इस व्याख्यान माला में प्रस्तुत वैदुष्यपूर्ण विचारों एवं परामर्श बिन्दुओं को समुपस्थित विद्वज्जगत् के द्वारा बहुत ही सराहा गया। गुरुकुल का. वि. वि. हरिद्वार से पधारे प्रो. महावीर जी ने अपने उद्बोधन में कन्याओं के इस कार्यक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए गुरुकुल के समुज्ज्वल भविष्य की कामना की। इस सभा की अध्यक्षता गुरुकुल को सौर ऊर्जा संयन्त्र उपलब्ध कराने वाले दिल्ली के माननीय श्री मुंशीराम सेठी जी कर रहे थे।

25 नवम्बर की प्रातः नवनिर्मित यज्ञशाला पुनः सामवेद के मन्त्रों से गुञ्जायमान हुई। आचार्य डॉ. सत्यव्रत राजेश जी ने महर्षि दयानन्द की परिधि में रहकर चलने पर विशेष बल दिया और ऋषिवर के यज्ञ सम्बन्ध में किये गये उपकारों पर वैदुष्यपूर्ण प्रकाश डाला। यज्ञीय उद्बोधन और प्रसाद वितरण के पश्चात् सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक पं. ओम्प्रकाश वर्मा जी एवं पं. व्रजपाल शर्मा 'कर्मठ' जी मञ्च पर पधारे जिन्होंने सुन्दर सुमधुर भजनों के साथ वैदिक सिद्धान्तों को परिपुष्ट किया। गंगापुर सिटी से समागत श्री पं. मदनमोहन जी ने ओजस्विनी शैली में ऐतिहासिक दस्तावेजों के साथ महिला जगत् के प्रति किये गये ऋषि के विशिष्ट योगदान का वर्णन किया। इसी सत्र में आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध महोपदेशक पं. ज्वलन्त कुमार शास्त्री ने अपनी चिर परिचित धाराप्रवाह शैली में आर्यजगत् की सुप्रसिद्ध

वेद-विदुषी आचार्या डॉ. प्रज्ञा देवी जी की अन्तेवासिनी इस गुरुकुल की आचार्या डॉ. प्रियंवदा वेदभारती जी और उपाचार्या ऋतम्भरा शास्त्री जी द्वारा बालिकाओं के निर्माण हेतु की जा रही साधना-समर्पण की और वैदुष्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। साथ ही आचार्य विश्वश्रवा व्यास एवं आचार्य विशुद्धानन्द मिश्र जैसे विद्वद्वरेण्यों द्वारा रचित श्लोकों की भी सन्दर्भ सहित चर्चा की।

अपराह्णकालीन सभा में श्री पं. ओमप्रकाश वर्मा के शास्त्रीय लय-ताल निबद्ध प्रेरणादायक गीतों के पश्चात् 'ईश्वरीयज्ञान वेद या बाइबिल कुरान' विषय पर कन्याओं द्वारा शास्त्रार्थ आयोजित था। शास्त्रार्थ हेतु विकासवादी, पौराणिक, ईसाई, मुसलमान अपनी-अपनी वेश-भूषा में मञ्च पर पधारे। सभी ने अपने-अपने पक्ष को प्रबल शब्दों में रखा किन्तु वैदिक पण्डितों, वेदविदुषियों के तर्कों और प्रमाणों के समक्ष वे खद्योत (जुगनू) सदृश ही प्रतीत हुए। शास्त्रार्थ की रोमाञ्चपूर्ण प्रस्तुति से पाण्डाल करतल ध्वनि से गूंज उठा। इस दृश्य को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो प्राचीन युग की गार्गी, सुलभा आदि तेजस्विनी वेद-विदुषी ब्रह्मचारिणियाँ पुनः महर्षि याज्ञवल्क्य आदि के साथ विदेहराज जनक की सभा में शास्त्रार्थ कर रही हों। शास्त्रार्थ के अन्त में सभा के अध्यक्ष विद्वद्वरेण्य पं. भवानीलाल भारतीय जी ने प्राचीन कालीन एवं मध्यकालीन शास्त्रार्थों का सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हुए इस युग में शास्त्रार्थ परम्परा को पुनः जीवित करने वाले ऋषि दयानन्द का सश्रद्ध स्मरण किया और वेद प्रामाण्य पर आक्षेप करने वाले आचार्य धर्मकीर्ति प्रभृति जैन बौद्ध दर्शनाचार्यों को मुहतोड़ उत्तर देने वाले उदयनाचार्य आदि सुप्रसिद्ध वैदिक पण्डितों के अवदान को भी सादर अङ्गीकार किया। शास्त्रार्थ देखने को आर्यवानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर से विशेष रूप से पधारे आचार्य विद्यारत्न जी ने और आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री विमल कुमार एडवोकेट ने सभीशास्त्रार्थ करने वाली ब्रह्मचारिणियों को आशीर्वाद दिया और अपनी ओर से पुरस्कृत भी किया।

26 नवम्बर सामवेद यज्ञ की पूर्णाहुति का दिन था, सो ब्र. विदुषी के पिता श्री बोल्ला सत्य साईंराम हैदराबाद द्वारा विशेषतः लाये गये शतशः नारिकेल फलों से सभी यजमानों ने और उपस्थित श्रद्धालु भक्तजनों ने पूर्णाहुति प्रदान की। पूर्णाहुति और विशिष्ट प्रसाद ग्रहण करने के अनन्तर समापन समारोह में कन्याओं ने पञ्च सन्धियुक्त जटापाठ एवं शिखापाठ और आधुनिक नेताओं पर हास्य व्यंग्य एवं काव्यालि प्रस्तुति की। काव्यालि के प्रथम बोल थे– "एक चेहरे पे कितने ही चेहरे जड़े सत्य क्या झूठ क्या जानना है कठिन।" आज के दिन खेल के कार्यक्रमों में विशिष्ट कार्यक्रम थे– ताईक्वाण्डो, डम्बल्स, लेजियम, स्तूप-प्रदर्शन, डाण्डिया आदि। एक महीने से विशिष्ट प्रशिक्षण ले रही छात्राओं ने ताईक्वाण्डो के अनेक चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन कर जनसमूह को स्तब्ध कर दिया। समारोह में भाग लेने के लिए अभिभावकगण एवं श्रोताजन बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, हरियाणा आदि सुदूर प्रान्तों तथा इलाहाबाद, मुरादाबाद, मेरठ, देहरादून, सहारनपुर, बदायूँ, शामली, मुजफ्फरनगर आदि नगरों-महानगरों से पर्याप्त संख्या में पधारे। जनपदीय एवं स्थानीय गणमान्य नागरिकों ने भी अपनी उपस्थिति से इस महोत्सव को गौरवान्वित किया।

इस समारोह को सफल बनाने हेतु जिन महानुभावों का हमें अतिशय सहयोग प्राप्त हुआ उनमें उल्लेखनीय नाम हैं– माननीय श्री दीपचन्द आर्य, सुश्री सन्तोषबाला आर्या, श्री विजय गोयल, डॉ. विष्णुमित्र आर्य, श्री विमलकुमार एडवोकेट, श्री राजेन्द्र आर्य मन्त्री आर्य समाज आदर्शनगर, श्री जगराम आर्य ग्रा. स्वाहेड़ी, श्री विक्रमसिंह आर्य बिजनौर आदि। इस प्रकार सबके धन्यवादज्ञापन और विद्वज्जनों के आशीर्वाद के साथ यह त्रिवार्षिक समारोह उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ।

प्रस्तुति– सुलभा शास्त्री
स्नातिका– गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ
नजीबाबाद, जि. बिजनौर

❑

गुरुकुल की कार्यकारिणी समिति

1. स्वामी वेदमुनि परिव्राजक	कुलपिता
2. श्री दीपचन्द आर्य	प्रधान
3. डॉ० ओम्पाल आर्य	उपप्रधान
4. श्री विष्णुमित्र वेदार्थी	मन्त्री
5. सुश्री सन्तोषबाला आर्या	प्रबन्धिका
6. ऋतम्भरा शास्त्री	उपाचार्या
7. श्री ओम्प्रकाश रन्धर	कोषाध्यक्ष
8. श्री गोविन्दराम ध्यानी	अधिष्ठाता
9. श्री विजय आर्य	सदस्य
10. श्री राजेश दरोगा	सदस्य
11. श्री ओम्प्रकाश भोला	सदस्य
12. श्रीमती उषा ध्यानी	सदस्य
13. श्री नानकचन्द आर्य	सदस्य
14. श्री नरेशदत्त आर्य	सदस्य
15. श्री राजाराम आर्य	सदस्य
16. ब्र० राजेन्द्र आर्य	सदस्य
17. डॉ. प्रियंवदा वेदभारती	आचार्या

ओ३म्

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद।।

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा।।

मे० दीपचन्द विजय कुमार

☎ Off : 01341-240249, 240975
Resi : 01341-240320, 240269

बसी किरतपुर, बिजनौर- 246731

गुड़ खाँडसारी मर्चेन्ट्स एण्ड कमीशन एजेण्ट्स

सम्बन्धित फ़र्म :—

दीप शूगर्स मंडावर

पोस्ट—मंडावर

सल्फ़र खाँडसारी के निर्माता

☎ 01342-276230

Rama Paper Mills Ltd.

MANUFACTURER OF :

High Quality Duplex Board
Writing, Printing Paper &
News Print Paper

* DELUXE DUPLEX BOARD (LWC)
* KRAFT
* CREAMOVE
* SUPER DELUXE NEWS PRINT

We meet the challenges of PRINTING AND PACKAGING INDUSTRIES by giving good quality of High Grade Paper with tailor made expertise.

WORK :
Najibabad Road,
Kiratpur- 246731
Distt. Bijnor (U.P.)
☎ : 01341-240300,301,302
Fax : 01341- 240302
Gram : "PAPER"

CORPORATE OCCICE :
12/22, IInd Floor,
East Patel Nagar,
New Delhi- 110008
☎ 011-25850503, 25851185, 25851746
Fax : 01125851429

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

Pramod Aggarwal
CHAIRMAN & MANAGING DIRECTOR

Arun Goel
EXECUTIVE DIRECTOR

॥ ओ३म् ॥

स्थापित- 1974 ट्रेड मार्क नं०- 1162926

बुद्धिमान किसानों की पहली पसंद

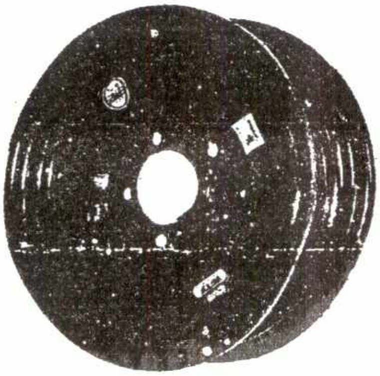

राज

ए० डी० वी० रिम व धुरे

ए० डी० वी० पशु गाड़ी के स्पेशल

कुशल कारीगरों द्वारा तैयार चलने में हलके व मजबूत

-: निर्माता :-

राज इण्डस्ट्रीज
विश्वकर्मा नगर, बुढ़ाना रोड, शामली
फोन : फैक्ट्री- 01398-250552

मै० राज रिम उद्योग
कैराना रोड, शामली (उ.प्र.)
फोन : फैक्ट्री- 01398-254349

संस्थापक : श्री रघुवीर सिंह आर्य